‘तमस’ उपन्यास में सांप्रदायिकता का अनुशीलन

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

सिक्किम विश्वविद्यालय

मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) उपाधि की आंशिक परिपूर्ति के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

कृष्ण कुमार साह

हिंदी विभाग
भाषा और साहित्य संकाय
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक - 737102

मई – 2018

‘तमस’ उपन्यास में सांप्रदायिकता का अनुशीलन

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

अनुसंधित्सु

कृष्ण कुमार साह

पं. सं. 16/M.Phil/HND/02, दिनांक 16/05/2017

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

‘तमस’ उपन्यास में सांप्रदायिकता का अनुशीलन

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

शोध- निर्देशक
डॉ. दिनेश साहू
साह

अनुसंधित्सु
कृष्ण कुमार

हिंदी विभाग
भाषा और साहित्य संकाय
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक - 737102

‘तमस’ उपन्यास में सांप्रदायिकता का अनुशीलन

अनुसंधित्सु

कृष्ण कुमार साह

पं. सं. 16/M.Phil/HND/02, दिनांक 16/05/2017

द्वारा

सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, के हिंदी विभाग में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

दिनांक : .....

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कृष्ण कुमार साह (पंजीकरण संख्या 16/M.Phil/HND/02, दिनांक 16/05/2017) द्वारा सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक में एम.फिल. (हिंदी) की उपाधि के लिए प्रस्तुत "'तमस' उपन्यास में सांप्रदायिकता का अनुशीलन" विषयक लघु शोध-प्रबंध उनके शोधकार्य का परिणाम है। जहाँ तक मेरी जानकारी है इस विषय के अंतर्गत किसी भी विश्वविद्यालय अथवा अन्य किसी संस्था में किसी भी उपाधि हेतु अद्यावधि कोई शोध-प्रबंध प्रस्तुत नहीं किया गया है। मैं इस लघु शोध-प्रबंध को सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक में एम.फिल.(हिंदी) की उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करने की संस्तुति देता हूँ।

शोध- निर्देशक

डॉ. दिनेश साहू
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक - 737102

दिनांक : .....

घोषणा

मैं कृष्ण कुमार साह (पंजीकरण संख्या 16/M.Phil/HND/02, दिनांक 16/05/2017) एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि "'तमस' उपन्यास में सांप्रदायिकता का अनुशीलन" लघु शोध-प्रबंध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किये गये कार्यों का परिणाम है। इस शोध-सामग्री के आधार पर न तो मुझे और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान नहीं की गयी है और न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध-उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/संस्थान में प्रस्तुत किया गया है।

इसे सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक के सम्मुख हिंदी विषय में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।

अध्यक्ष **शोध-निर्देशक** **अनुसंधित्सु**

(डॉ. बृजेश कुमार पाण्डेय) **(डॉ. दिनेश साहू)** **(कृष्ण कुमार साह)**

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन :	**i-vi**
प्रथम अध्याय : भीष्म साहनी : जीवन और रचना-संसार	**1-31**
1.क. जीवन परिचय	
1.ख. रचना-संसार	
द्वितीय अध्याय : भारतीय समाज और हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिकता	**32-65**
2.क. सांप्रदायिकता : अवधारणा एवं स्वरूप	
2.ख. भारत में सांप्रदायिकता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य	
2.ख.i. मध्यकालीन भारत और सांप्रदायिकता	
2.ख.ii. अंग्रेजी शासन और सांप्रदायिकता	
2.ख.iii. स्वातंत्र्योत्तर भारत और सांप्रदायिकता	
2.ग. हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिकता	
तृतीय अध्याय : 'तमस' में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता	**66-97**
3.क. सांप्रदायिक विचारधारा की पृष्ठभूमि पर तमस की कथावस्तु	
3.ख. भारतीय समाज में सांप्रदायिकता की समस्या और 'तमस'	
3.ग. 'तमस' में सांप्रदायिकता के विभिन्न रूप	
चतुर्थ अध्याय : 'तमस' के संदर्भ में सांप्रदायिकता की वर्तमान स्थिति	**98-138**
4.क. 'तमस' में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता और वर्तमान राजनीति	
4.ख. 'तमस' में सांप्रदायिकता के वर्तमान परिप्रेक्ष्य	

4.ग. 'तमस' का शिल्प विधान

उपसंहार **139-145**

संदर्भ ग्रन्थ सूची **146-148**

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम : कृष्ण कुमार साह

शिक्षा : एम. ए. (हिंदी)

विभाग : हिंदी

लघु शोध-प्रबंध का शीर्षक : **'तमस' उपन्यास में सांप्रदायिकता का अनुशीलन**

प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि : 25.06.2016

शोध प्रस्ताव की संस्तुति :

(i) पंजीयन संख्या : 16/M.Phil/HND/02

(iii) पंजीयन तिथि: 16.05.2017

अध्यक्ष
हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक

शोध-निर्देशक
हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय
गंगटोक

प्राक्कथन

सांप्रदायिकता हमारे समाज की जटिल और ज्वलंत समस्या है। 'सांप्रदायिक' विचारधारा का अपना एक अलग इतिहास है जो 'संप्रदाय' शब्द से विकसित हुआ है। संप्रदाय की जड़े वैदिक काल तक फैली हुई है, जो उसके तत्कालीन समय में धर्म की विभिन्न शाखाओं के लिए प्रयुक्त होती थी। सांप्रदायिकता को धर्म से जोड़ कर देखा जाता है, परंतु इस शब्द का धर्म से कोई संबंध नहीं है। यह पूर्णतः राजनीतिक स्वार्थ-सिद्धि के लिए प्रयोग किया गया। कुछ सांप्रदायिक विचारधारा के अनुयायियों ने मध्यकाल में हुए मुस्लिम आक्रमणों को धर्म से प्रेरित बताते हुए आम जनता की धार्मिक भावनाओं को उकसाने का प्रयास किया और काफी हद तक इसमें उन्हें सफलता भी मिली, परंतु यह आक्रमण धार्मिक न होकर धनलिप्सा एवं सत्ता विस्तार के लिए किया गया था। धर्म से अभिप्राय सत्कर्म या कल्याणकारी कर्म-सदाचार व आचरण की शुद्धता से था। कालांतर में यह शब्द देवी-देवताओं की पूजा के लिए रूढ़ हो गया। धर्म की प्रकृति पारलौकिक होती है, जबकि सांप्रदायिकता की प्रकृति राजनैतिक तथा आर्थिक होती है।

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् सांप्रदायिक विचारधारा का बीजारोपण हुआ। इस विचारधारा को आधार बनाते हुए अंग्रेजों ने हिंदू-मुस्लिम एकता के बीच दरार डालने के लिए सांप्रदायिकता को हथियार के रूप में प्रयोग किया। फलस्वरूप दोनों संप्रदाय एक दूसरे के विरोध में खड़े हो गए और अखंड भारत के विभाजन की नींव पड़ी। इस विभाजन में प्रमुख सांप्रदायिक संगठनों के साथ अंग्रेजों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। देश विभाजन और स्वतंत्रता के बाद भी सांप्रदायिक भावना लोगों के अंदर कायम रही। धर्म के नाम पर हिंदुस्तान और पाकिस्तान का निर्माण हो गया, मगर अंग्रेजों द्वारा बोया गया 'सांप्रदायिकता का बीज' लोगों के अंदर जिंदा रहा। हिन्दुओं और मुसलमानों के हृदय में स्थित सांप्रदायिक भावना ने दोनों के अंदर एक-दूसरे के प्रति द्वेष और घृणा को जागृत किया। विभिन्न राजनीतिक दल इस द्वेष और घृणा को कम करने के स्थान पर सत्ता के लोभ में इसे और बढ़ावा देते रहे। एक संप्रदाय को दूसरे संप्रदाय का भय दिखा कर वोट मांगते रहे। हिंदी साहित्य के लेखकों ने इस गंभीर समस्या को महसूस किया और इस विषय पर अपनी कलम चलाई। उन्होंने रचनाओं में सांप्रदायिकता की समस्या को न केवल उठाया, बल्कि लोगों को सांप्रदायिक भाव को जगाने वाले सूक्ष्म कारकों से परिचित कराया। ऐसे लेखकों में भीष्म साहनी का नाम बड़े आदरपूर्वक लिया जाता है।

भीष्म साहनी यथार्थवादी परंपरा के लेखक है। उन्होंने अपने समय के लोगों के अंदर व्याप्त सांप्रदायिक भावना को अपनी रचनाओं में उजागर करने का प्रयत्न करते हुए आगाह किया है कि अगर इसे

जल्द से जल्द खत्म नहीं किया गया तो भविष्य में यह मानवजाति के लिए सबसे बड़ी समस्या बनकर उभरेगी। उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज के मानवीय मूल्यों और सामाजिक यथार्थ का निरूपण अपने लेखन में करने का प्रयास किया है। लोगों के अंदर विद्यमान इसी सांप्रदायिक भावना को व्यक्त करता इनका उपन्यास 'तमस' है। 'तमस' के माध्यम से इन्होंने भारत विभाजन के परिणामस्वरुप देश में होने वाले भीषण सांप्रदायिक दंगों की निर्ममता की करुण गाथा को प्रस्तुत किया है। 'तमस' में उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि स्वतंत्रता के बाद भी भारत पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हुआ है। यहाँ के निवासियों में मानसिक परतंत्रता अभी भी व्याप्त है। भारतीय जनमानस के मष्तिष्क पर अभी भी सांप्रदायिकता का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है ।

सत्तर के दशक में लिखा गया 'तमस' उपन्यास आज भी उतना ही जीवंत और प्रासंगिक है क्योंकि 'तमस' के लेखन के समय जो सांप्रदायिकता की समस्याएँ थीं, वह आज भी जीवंत है। वर्तमान समय में इसका क्षेत्र और अधिक विस्तृत हो गया है। पहले यह हिंदू-मुस्लिम समुदाय से संबंधित व्यक्तियों तक ही सीमित थी, परंतु आज अधिकांश जाति विशेष में सांप्रदायिक भावना दिखाई पड़ रही है। यही कारण है कि आज धर्म जाति के नाम पर जगह-जगह दंगे हो रहे हैं। इस संबंध में सजगता और जागरूकता की आवश्यकता है। 'तमस' वर्तमान समय की इस प्रमुख समस्या को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। प्रस्तुत विषय में शोध कर सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने वाले तत्वों का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है।

मेरे शोध का विषय "'तमस' उपन्यास में सांप्रदायिकता का अनुशीलन" है जिसे चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। इन चारों अध्याय-संबंधित विवरण इस प्रकार है –

शोध का प्रथम अध्याय है – भीष्म साहनी : जीवन और रचना-संसार। इसके दो उपशीर्षक हैं- 'जीवन परिचय' और 'रचनावली'। इस अध्याय के अंतर्गत सर्वप्रथम भीष्म साहनी के जीवनवृत्त की चर्चा की गई है। किसी भी साहित्यकार का जिस परिवार में जन्म होता है, उसी परिवार के पालन-पोषण के वातावरण से उसका व्यक्तित्व बनता है और वह माहौल उसकी साहित्यिक रचना के लिए प्रेरक बनता है। प्रस्तुत शोध में इसी व्यक्तित्व का प्रभाव कैसे भीष्म साहनी के साहित्य पर पड़ा उस पर चर्चा की गई है। सबसे पहले उनके जन्म, सामाजिक परिवेश तथा परिस्थितयों पर विचार किया गया है। इसके बाद बचपन, प्रारंभिक शिक्षा एवं मित्रता का विवरण प्रस्तुत किया गया है। बचपन में वे किस प्रकार अपने बड़े भाई बलराज साहनी से हर क्षेत्र में कमजोर थे। वे बचपन में दब्बू थे और अकसर बीमार रहते थे। उनकी खेल-कूद में कम रुचि थी और माँ के मुँह

से कवित्त, गीत, कहानियाँ सुनना उनको अच्छा लगता था। पढ़ाई लिखाई में वे अच्छे थे। आगे साहित्य और अभिनय की ओर इनकी रुचि और युवावस्था और वैवाहिक जीवन को प्रस्तुत किया गया है। बचपन के दिनों से ही उपन्यास पढ़ना उन्हें पसंद था। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद और सुदर्शन उनके प्रिय लेखक थे और उनका प्रभाव उनके साहित्य पर पड़ा। उनकी पत्नी शीला के साथ शादी और उनके साथ जीवन के अनुभव को भी इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। उनके विदेशयात्रा और भारत आगमन पर भी प्रस्तुत शोध प्रबंध में चर्चा की गई है। उनका व्यक्तित्व उनके समकालीन रचनाकार कृष्णा सोबती, डॉ. नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, विष्णु प्रभाकर और डॉ. कमला प्रसाद के नजरों में कैसी थी, इस पर भी विचार किया गया है।

रचना-संसार में इनके कृतित्व को प्रस्तुत किया गया है। जिसमें इनके द्वारा लिखे गए सभी रचनाओं और प्राप्त पुरस्कारों का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत उपशीर्षक में सबसे पहले भीष्म साहनी एक कहानीकार के रूप में कैसे थे और उनकी प्रमुख कहानियां, जैसे – चीफ की दावत, मौका परस्त, वाङ्चू, पटरियाँ, अमृतसर आ गया आदि पर संक्षेप में चर्चा की गयी है। आगे एक उपन्यासकार के रूप भीष्म साहनी कैसे थे इस पर विचार किया गया है और इनके प्रमुख उपन्यास झरोखें, कड़ियाँ, तमस, बसंती, मैयादास की माड़ी, कुंतो, नीलू नीलिमा नीलूफर पर संक्षिप्त चर्चा की गई है। भीष्म साहनी एक नाटककार और अभिनेता भी थे। प्रस्तुत शोध प्रबंध में उनके प्रमुख नाटक हानूश, कबीरा खड़ा बजार में, माधवी, मुआवजे, रंग दे बंसती चोला, आलमगीर का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबंध का द्वितीय अध्याय 'भारतीय समाज और हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिकता' है। इस अध्याय को विभिन्न उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है- 'सांप्रदायिकता : अवधारणा एवं स्वरूप', 'भारत में सांप्रदायिकता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य' और 'हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिकता'। प्रस्तुत अध्याय में सर्वप्रथम सांप्रदायिकता की अवधारणा एवं स्वरूप पर चर्चा की गई है। इसके अंतर्गत सांप्रदायिकता शब्द की उत्पत्ति और उसके विकास पर प्रकाश डाला गया है। जिसके अंतर्गत धर्म, संप्रदाय, सांप्रदायिकता को स्पष्ट किया गया है। सबसे पहले 'धर्म' शब्द की उत्पत्ति और उसका अर्थ क्या है ? उसे शब्दकोश और विद्वानों द्वारा किस प्रकार परिभाषित किया गया है, इस पर चर्चा की गई है। 'धर्म' शब्द किस प्रकार मनुष्य के जीवन का प्रमुख अंग बना इसे भी शोध प्रबंध में प्रस्तुत किया गया है। धर्म से किस प्रकार 'संप्रदाय' का विकास हुआ 'संप्रदाय' शब्द का कोशगत अर्थ क्या है ? उसे विद्वानों ने किस प्रकार परिभाषित किया, इसे प्रस्तुत किया गया है। आगे

'सांप्रदायिकता' शब्द की व्याख्या की गई है। 'सांप्रदायिकता' शब्द के संदर्भ में विद्वानों के मतों को भी प्रस्तुत किया गया है और साथ ही 'संप्रदाय' और 'सांप्रदायिकता' के अंतर को भी स्पष्ट किया गया।

द्वितीय अध्याय में 'भारत में सांप्रदायिकता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य' शीर्षक को तीन और उपशीर्षकों 'मध्यकालीन भारत और सांप्रदायिकता', 'अंग्रेजी शासन और सांप्रदायिकता' और 'स्वातंत्र्योत्तर भारत और सांप्रदायिकता' में विभाजित किया गया है। 'मध्यकालीन भारत और सांप्रदायिकता' उपशीर्षक में भारत में मुगलों का आगमन, हिंदू-मुस्लिम संस्कृति का आदान-प्रदान और दोनों में भिन्नता को स्पष्ट किया गया है, साथ में यह भी स्पष्ट किया गया है कि उस समय लोगों के अंदर सांप्रदायिकता का भाव न के बराबर था। राजपूतों और मुगलों का संघर्ष केवल केंद्रीय सत्ता को लेकर था। मध्यकाल में अकबर की सारी सेना का नेतृत्व एक हिंदू राजा मानसिंह कर रहा था और राणा प्रताप के सैन्य दल का नेतृत्व एक मुस्लिम हाकिम खां सूरी कर रहा था। इन संदर्भों के माध्यम से मध्यकालीन समाज में सांप्रदायिकता वास्तविक रूप में क्या थी इसे प्रस्तुत किया गया है। आगे 'अंग्रेजी शासन और सांप्रदायिकता' उपशीर्षक में अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् देश की सांप्रदायिक स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो की नीति' को स्पष्ट किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि अंग्रेजों ने किस प्रकार भारत की एकता को खंडित कर हिंदू-मुस्लिम को आपस में लड़ाया और भारतीयों को सांप्रदायिकता का झूठा इतिहास पढ़ा कर दोनों के अंदर एक-दूसरे के प्रति घृणा का भाव पैदा किया। 'स्वातंत्र्योत्तर भारत और सांप्रदायिकता' उपशीर्षक में स्वतंत्र भारत के सांप्रदायिक स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। विभाजन के बाद भारत में रह रहे हिंदू-मुस्लिम के सांप्रदायिक संघर्ष और सांप्रदायिकता की राजनीति को भी प्रस्तुत किया गया है। इसी अध्याय के अंतिम उपशीर्षक 'हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिकता' में हिंदी साहित्य में सांप्रदायिकता की समस्या पर लिखे गए प्रमुख उपन्यासों को प्रस्तुत किया गया है। इनमें आधा गाँव, लौटे हुए मुसाफिर, टोपी शुक्ला, त्रिशूल, जिंदा मुहावरे, हमारा शहर उस बरस, अलग-अलग वैतरणी, सूखा बरगद, और इंसान मर गया, उपयात्रा, कितने पाकिस्तान आदि सांप्रदायिकता की समस्या-प्रधान उपन्यास पर संक्षिप्त चर्चा की गई है।

शोध प्रबंध का तृतीय अध्याय "'तमस' में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता" है। इसके तीन उपशीर्षक है 'सांप्रदायिक विचारधारा की पृष्ठभूमि पर तमस की कथावस्तु', 'भारतीय समाज में सांप्रदायिकता की समस्या' और "'तमस' में सांप्रदायिकता के विभिन्न रूप"। प्रथम उपशीर्षक में सर्वप्रथम 'तमस' उपन्यास के कथा सार को प्रस्तुत किया गया है साथ ही कथावस्तु पर विचार किया गया। तमस की कथावस्तु का आधार देश

विभाजन से कुछ समय पूर्व का है। जिसमें पाँच दिन की घटना का वर्णन है। यह पाँच दिन की घटना देश की सांप्रदायिक स्थिति को व्यक्त करने में सक्षम हैं। सूअर मारकर मस्जिद में फेंक दिया जाता है जिससे पूरे इलाके की स्थिति बिगड़ जाती है। जगह-जगह- लूटपाट, हत्या, आगजनी, बलत्कार जैसी हिंसा होने लगती है। कांग्रेस और मुस्लिम लीग जैसे राजनीतिक दल भी सांप्रदायिक माहौल बिगाड़ने में अहम भूमिका निभाते हैं। तृतीय अध्याय के दूसरे उपशीर्षक में भारतीय समाज में सांप्रदायिकता की समस्या और तमस के समय की सामाजिक स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। इस उपशीर्षक में भारतीय समाज के मध्यकाल से अंग्रेज काल तक के समाज में सांप्रदायिकता की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। शोध प्रबंध में हिंदू, मुस्लिम, सिख और उच्चवर्ग, निम्न वर्ग एवं मध्यवर्ग के परिवारों के सामाजिक रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, भावनाओं आदि के विस्तृत चर्चा की गई हैं। ''तमस' में सांप्रदायिकता के विभिन्न रूप" उपशीर्षक में सांप्रदायिकता के रूपों को स्पष्ट किया गया है। जिसके अंतर्गत हिंदू सांप्रदायिकता, मुस्लिम सांप्रदायिकता और सिख सांप्रदायिकता को प्रस्तुत किया गया। हिंदू सांप्रदायिकता में वानप्रस्थीजी देवव्रतजी जैसे कट्टरवादी हिन्दुओं द्वारा आम-जनों के अंदर घुल रहे सांप्रदायिकता के विष को प्रस्तुत किया गया है, साथ ही शोध प्रबंध में कट्टर मुस्लिम लीडर और नेताओं द्वारा फैल रहे सांप्रदायिकता की समस्या को प्रस्तुत किया गया है।

शोध का चतुर्थ अध्याय "तमस' के संदर्भ में सांप्रदायिकता की वर्तमान स्थिति" है। इसके भी कुल तीन उपशीर्षक है 'तमस' में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता और वर्तमान राजनीति, 'तमस' में सांप्रदायिकता के वर्तमान परिप्रेक्ष्य, और 'तमस' का शिल्प विधान। 'तमस में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता और वर्तमान राजनीति' उपशीर्षक में सांप्रदायिकता को फैलाने वाले राजनीतिक कारणों पर विचार किया गया है। प्रस्तुत उपशीर्षक में राजनीति में अस्थिरता एवं मूल्यच्युति, भ्रष्टाचार की समस्या, चुनाव एवं क़ानूनी समस्या, अवसरवादिता और मोहभंग के कारण बढ़ रहे सांप्रदायिकता पर चर्चा 'तमस' के संदर्भ में की गई है। 'तमस में सांप्रदायिकता के वर्तमान परिप्रेक्ष्य' उपशीर्षक में सांप्रदायिकता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा गया है। इन परिप्रेक्ष्य की चर्चा आर्थिक, भय और कुंठा, धर्म और सांप्रदायिकता, स्वायत्तशासी संस्थाओं का सांप्रदायिकरण और सांप्रदायिक दंगे के समय स्त्री की दशा के परिप्रेक्ष्य में की गई है।

'तमस का शिल्प विधान' उपशीर्षक में तमस उपन्यास के कला पक्ष को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत उपशीर्षक में शिल्प शब्द को स्पष्ट करते हुए 'तमस' के रचनात्मक संगठन पर विचार किया गया है। तमस के रचनात्मक संगठन के अपेक्षित गुण के अंतर्गत संवाद एवं नाटकीयता, भाषा, रचनात्मक कौशल पर

चर्चा की गई है, साथ ही 'तमस' उपन्यास के लेखन शैली को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अंत में उपसंहार शीर्षक से शोध के निष्कर्षों को शब्दबद्ध करने की कोशिश की गई है।

इस लघु शोध-प्रबंध को पूर्ण रूप देने में मुझे अनेक लोगों का सहयोग मिला जिनका मैं सदा आभारी रहूँगा। सर्वप्रथम मैं हिन्दी विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे इस शोध विषय पर शोध करने की अनुमति और अवसर दिया। मैं अपने आदरणीय गुरुवर तथा शोध निर्देशक डॉ. दिनेश साहू के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। जिन्होंने शोध-कार्य के दौरान मेरा मार्गदर्शन किया। मैं डॉ. बृजेश कुमार पाण्डेय सर का भी आभार व्यक्त करना चाहूँगा जिन्होंने शोध-विषय से संबंधित अपने बहुमूल्य सुझावों से मुझे लाभान्वित किया। साथ ही मैं विभाग के अन्य गुरुजन डॉ. चुकी भूटिया, प्रदीप त्रिपाठी और डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री का भी आभारी हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य में अपने सुझावों द्वारा मेरी सहायता की।

साथ ही, मैं मेरे मित्र बी आकाश राव को भी आभार ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने सुधार कार्य में मेरी सहायता की और साथ ही मुझे प्रोत्साहित किया। मैं अपने मित्र टिंकू छेत्री और मुकेश पोद्दार के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इस लघु शोध प्रबंध को पूरा करने हेतु टाइपिंग के लिए लैपटॉप देकर मेरी मदद की। इसके अतरिक्त मैं मेरी साथी गंगा चौहान और मेरे अनुजों का भी धन्यवाद करना चाहता हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से मेरी सहायता की। साथ ही पुस्तकालय एवं रिसर्च फ्लोर के समस्त पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने शोध-कार्य में यथासंभव सहायता की। मैं अपने पूरे परिवार का ह्रदय से धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने इस दौरान हर कमजोर और कठिन दौर में मेरी सहायता की और समय-समय पर जिनका महत्वपूर्ण सहयोग मुझे मिला।

प्रथम अध्याय

भीष्म साहनी : जीवन और रचना-संसार

1.क. जीवन परिचय

भीष्म साहनी का रचना-कर्म आधुनिक भारतीय लेखकों में सर्वाधिक व्यापक और विविधतापूर्ण कहा जा सकता है। उन्होंने मानव जीवन और संस्कृति का कोई भी जीवंत पक्ष अछूता नहीं छोड़ा है। धर्म, दर्शन, राजनीति, पुरातत्व, इतिहास, उपन्यास, कहानी, आलोचना, नाटक, और संस्मरण जैसे क्षेत्रों में अपनी मौलिक छाप छोड़ी है। किसी भी साहित्यकार का वास्तविक परिचय तो उसकी रचना ही होती है, फिर भी जिस परिवार में वह जन्म लेता है, उसी परिवार में उसका पालन-पोषण होता है, जिस वातावरण में उसका व्यक्तित्व बनता है, वह माहौल उसकी साहित्यिक रचना के लिए प्रेरक बनता है।

किसी भी लेखक व साहित्यकार के कृतित्व को उसके व्यक्तिगत जीवन एवं अनुभवों से पृथक करके देखा व परखा नहीं जा सकता है, क्योंकि साहित्यकार के विचार एवं भावनाएँ उसके जीवन से फूटकर निकलती है, बल्कि उसका कृतित्व उसके समूचे जीवन की प्रतिछाया होती है। वह अपने युग की राजनीतिक परिस्थितियाँ एवं समाजगत भावनाओं से मुँह मोड़कर साहित्य-सृजन की किसी भी विधा में सफल नहीं हो सकता है, भले ही उसका समूचा जीवन साहित्य-सृजन से भरा हो। उसके साहित्यिक जीवन को समझने के लिए उसके वास्तविक जीवन को समझना आवश्यक है। साहित्यकार का व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों एक दूसरे में मिले होते हैं। साहित्यकार के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब ही उसकी रचनाधर्मिता में दिखाई पड़ता है। रचनाकार जो कुछ करता है रचना की पृष्ठभूमि उसी से निर्मित होती है और वाणी उसे शब्द देकर प्रवाह में बदल देती है।

भीष्म साहनी जैसे सशक्त, निर्भीक एवं साहसी साहित्यकार का दोहरा व्यक्तित्व है। भीष्म साहनी जहाँ एक तरफ प्रतिष्ठित और सफल स्थापित लेखक है, वहीं रंगमंच की जिंदगी भी लगातार उनके रचनात्मक आदान-प्रदान का विषय रही है। अपने व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों को भीष्म साहनी ने कथा साहित्य में ढालकर हिंदी साहित्य को अत्यधिक समृद्ध किया है। भीष्म साहनी के एक मित्र का कथन उनके संदर्भ में द्रष्टव्य है – "जीने के स्तर पर भीष्म साहनी के पास सथुरा, सुरिक्षत, मजबूत चौखटा है। जिसने भीष्म के समूचे लेखन और काफी हद तक जीवन दृष्टि को भी प्रभावित किया है। उनकी अपनी राजनीतिक आस्थाएँ हैं। इंटरलैक्चुअल कमिटमेंट हैं। मोटे-तौर पर भीष्म को अपने साथियों से कहीं ज्यादा सुविधा और समग्रता जिंदगी

में मिली है। छोटी-मोटी सुविधाएँ, अच्छा घर, पढ़ी-लिखी बीबी, किताबों से भरी शेल्फें और रचनाओं को एकसाथ करती एक बंधी-बंधाई जिंदगी, जीवन के सुरक्षित पैटर्न ने जहाँ भीष्म को पनपने में मदद दी है, सिर्फ चुनौतियों से बनती-भीष्म के आगे से दूर कर दी है, हटा दी है। यही वजह है कि लेखन के स्तर पर भीष्म को यह लड़ाई कुछ दूसरे ढंग से लड़नी पड़ती है।"[1]

भीष्म जी स्वभाव के जितने गंभीर हैं, उतने ही मृदु भी, साथ ही उनकी सोच बहुत व्यापक है। भीष्म साहनी जी के संदर्भ में उनके बड़े भाई और सिनेमा जगत के मशहूर कलाकार बलराज साहनी का मत द्रष्टव्य है – "भीष्म के मिजाज में एक खुली मैंने यह देखी है कि उसमें जल्दबाजी नहीं है। कथावस्तु का चुनाव भी वह बड़े धीरज से करता है। सोचकर और थोड़ा बोलता है। साधारण लोगों के जीवन की छोटी-छोटी बातें, वह खुद अपनी आँखों से देखता है। उन लोगों की सामाजिक और व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है, पात्रों को कल्पना से नहीं, जीवन से खोजना और चुनना है। लिखते समय भी वह यथार्थ से ज्यादा और अपनी कल्पना से काम लेता है। वह कहता है कि इस यथार्थ छन्द्म में ही कही स्तम्भमणिक छिपा हुआ होता है, जो कलाकार या लेखक की प्यार भरी जोड़-तोड़ के कारण कभी भी नंगा होकर अपनी चमक दिखा जाता है। भीष्म न तो साहित्यिक वाद-विवाद में पड़ता है और न ही किसी सिद्धांत पर लिखता है। वह वही कुछ लिखता है, जो उसे खुद को अच्छा लगे। जो उसे खुद समझ में आए। जो कुछ भी उसने आज तक लिखा है, ईमानदारी से लिखा है। उसकी कुछ कहानियाँ किसी भी सर्वोत्तम कहानी संग्रह की शान बन सकती है।"[2]

उपर्युक्त सभी बातों का साहित्यकार के जीवन से अकाट्य एवं अविभाज्य संबंध है। अतः सभी को केंद्र में रखकर ही साहित्यकार जीवन की परिस्थितियों व वातावरण से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। इसी भांति भीष्म साहनी को भी अपने जीवनगत अनुभवों तथा परिस्थितियों से पूर्णरूपेण प्रेरणा प्राप्त हुई है। तरुणावस्था से ही संघर्षपथ पर चलनेवाला इस साहित्यकार का साहित्य आज भी प्रसिद्धि के अनंत पथ की ओर अग्रसर है। इस साहित्यकार के कृतित्व की विवेचना और व्याख्या करने से पूर्व इनके जीवन पर प्रकाश डालना अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

i. जन्म, सामाजिक परिवेश तथा परिस्थितियाँ

भारत के आजादी के पहले हिन्दुस्तान और पाकिस्तान अगल-अलग देश नहीं थे तब हिन्दुस्तान अंग्रेजों की गुलामी से आजाद होने के लिए आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार की लड़ाईयाँ लड़ रहा था। उस वक्त

हिन्दुस्तान की अपनी रीति-रिवाज एवं परम्पराएँ थी। वहीं पर कुछ-कुछ धार्मिक रूढ़िगत समस्याएँ भी थी। उन्हें दूर करने के लिए कई सुधारवादी आंदोलन चल रहे थे। कुछ ऐसी संस्थाएँ थी जो हिंदू धर्म में फैले अंधविश्वासों और कुरीतियों को सुधारने के कार्य करती थी, उनमें ब्रह्म समाज (राजा राममोहन राय, सन् 1829), प्रार्थना समाज ने समाज में फैले सती प्रथा, बहुविवाह, मूर्तिपूजा, धार्मिक कट्टरता, छूआछूत आदि कुप्रथाओं को दूर करने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किए थे। पश्चिमी भारत में स्वामी दयानंद सरस्वती ने काफी सुधारवादी कार्य किये थे और उनका काफी प्रभाव भी था।

उस समय पश्चिम भारत में रावलपिंडी अवस्थित था। अतः आज यह शहर पकिस्तान में है। सन् 1915 में इस शहर में साहनी परिवार रहता था। वे जाति के व्यापारी थे। पर कट्टर आर्य समाजी थे और समाज-सुधार का कार्य भी करते थे। भीष्म साहनी जी का जन्म उसी परिवार में 8 अगस्त, सन् 1915 में हुआ था। उस परिवेश का चित्र उनके शब्दों में कुछ इस प्रकार था – "उन दिनों घर का माहौल बेशक कट्टर आर्य समाजी था, लेकिन उग्र प्रकार की कट्टरता नहीं थी। पिताजी कट्टर आर्य समाजी थे, पर समाज सुधार में गहरी दिलचस्पी रखते थे। वे आर्य समाज द्वारा संचालित अस्पताल, वनित आश्रम, स्कूल-कॉलेज आदि में सक्रिय रूप से काम करते थे, जिसका असर अच्छा हुआ कि हम समाजोन्मुख हुए। आर्य समाज का आंदोलन उन दिनों जहाँ हिंदू संगठन चाहता था, वहाँ हिंदू समाज की कुरीतिओं का विरोध भी करता था जैसे – बाल-विवाह, छुआ-छूत, जात-पात और विधवा विवाह, अछूतोद्धार, स्त्री शिक्षा आदि का समर्थन करता था। मूर्ति-पूजा का खंडन करता था। उसके अतिरिक्त पिताजी की दृष्टि थी, जो अध्यवसायी है और आर्थिक दृष्टि से आगे भी बढ़ना चाहते हैं और जो यह समझता है कि उसके बच्चों का भविष्य आधुनिक शिक्षा के सहारे अधिक उज्ज्वल हो पाएगा। कुल मिलकार उनका दृष्टिकोण उदारवादी अधिक और कट्टरपंथी कम था।"[3]

जब भीष्म साहनी का जन्म हुआ उस समय पंजाब के आर्य-समाजी परिवारों में बच्चों के नामकरण रामायण, महाभारत से चुनकर रखने की परंपरा चल रही थी, इसलिए उनका नाम 'भीष्म' रखा गया। भीष्म साहनी ने अपने पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में लिखा है कि "मूलतः हम लोग पंजाब के शाहपुर जिले में स्थित भेरा नाम के कस्बे (जो आज पकिस्तान में है) के रहने वाले हैं, जिसे छोड़कर हमारे पूर्वज रावलपिंडी में जाकर बस गए थे। भेरा जेहलम नदी के तट पर स्थित, सदियों पुराना कस्बा है जो उस जमाने में वाणिज्य और व्यापार का केंद्र हुआ करता था।"[4]

भीष्म साहनी ने अपने पारिवारिक जीवन के बारे में लिखा है कि "जब मेरा जन्म हुआ तो मैं भारतीय नागरिक ही था और जब 1947 ई. में भारत आया तो भारतीय नागरिक के नाते आया था। इसमें हिन्दुस्तान को अपना वतन न मानने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है ?"[5]

भीष्म साहनी ने अपने पारिवारिक जीवन के बारे में लिखा है कि "पिताजी ने जिंदगी गरीबी में शुरु की। वह आशावादी, पुरुषार्थी प्रेमी, आर्यसमाजियों में से जो उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण की उपज माने जाते हैं, जिन्हें विश्वास था कि मनुष्य का चरित्र अच्छा हो, वह कर्मशील हो तो अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करता है, घर के अंदर संध्या के मन्त्र गूँजते थे, ईश्वर-स्तुति के भजन गूँजते थे। घर के अंदर सदाचार के नियम टँगे रहते थे –

"सादापन जीवन, सजावट मृत्यु है,

सदाचार जीवन, दुराचार मृत्यु है"[6]

भीष्म साहनी के जीवन में उनके पिता के संस्कार का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा उन्होंने स्वयं कहा है – "बहुत कुछ है जो अपने बचपन से हम संस्कार स्वरूप ग्रहण करते हैं, ज्यों-ज्यों बालक अपने परिवेश पर आँखें खोलता है, जो-जो कुछ देखता सुनता है, वही संस्कार बनता जाता है। आकाश की नीलिमा, ठंडी हवा के झोंके, गली में घूमते भिखारियों की आवाजें जहाँ कहीं कोई छोटी सी घटना दिल की अथक चेतना को छू जाती है, वहीं अपनी छाप-छोड़ जाती है। इसके अतरिक्त बचपन में माता-पिता और घर के परिवेश का असर बहुत गहरा पड़ता है। मैंने जिस माहौल में आँख खोली वह 'ठहरा' हुआ दौर नहीं था। उसमें हलचल थी। नए-नए विचार समाज को आंदोलित कर रहे थे। मेरे पिता जी आर्य समाजी विचारों के थे घर के अंदर सदा समाज सुधार की चर्चा चलती रहती। दूसरी ओर स्वतंत्रता आंदोलन भी जोर पकड़ रहा था। जलसे-जुलूसों का जमाना था। भावात्मक से भरा वातावरण हमारे चारों ओर था उसका प्रभाव मुझ पर और मेरे लेखन पर जरुर पड़ा है।"[7]

भीष्म साहनी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर देशकाल और वातावरण का असर देखने को मिलता है। भीष्म साहनी के जन्म के समय प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका चारों ओर व्याप्त थी। उसी समय वैश्विक परिदृश्य में पूँजीवाद और सामंतवाद के विरुद्ध सोवियत साम्यवाद का उत्थान होता है। उस वक्त महात्मा गांधी का प्रभाव सारे हिन्दुस्तान में व्याप्त था। इन्हीं घटनाओं से भीष्म साहनी विचलित, प्रभावित और प्रोत्साहित हुए।

कोई भी साहित्यकार समाज और वातावरण से प्रभावित हुए नहीं रह सकता है, क्योंकि लेखक युग की उपज होता है।

ii. बचपन, प्रारंभिक शिक्षा एवं मित्रता :-

भीष्म साहनी जी, सात भाई-बहन थे। जिनमें पाँच बड़ी बहनें और एक बड़े भाई बलराज साहनी थे। बलराज साहनी से भीष्म साहनी मात्र दो वर्ष छोटे थे। भीष्म साहनी अपने बचपन को याद करते हुए कहते हैं कि "मेरे भाई ने अपने संघर्ष द्वारा मेरा रास्ता साफ किया। लेकिन यह संघर्ष उसके विकास का संघर्ष था, विद्रोह का नहीं था। मेरे मन में भाई के प्रति गहरा आदरभाव था। साथ में मैं उसके साहस, पहल कदमी, निर्भीकता से ईर्ष्या भी करता था। यह भी सही है कि बचपन में यह बात भी मेरे अंदर घर कर गई थी कि वह एक उत्कृष्ट व्यक्ति है और मैं उसकी तुलना में निकृष्ट हूँ घर वालों ने भी इसे दूर नहीं किया। वह गोरे रंग का था, मैं साँवला था, वह बड़ा स्वस्थ और हष्ट-पुष्ट था, जबकि मैं बहुत दुबला था और अक्सर बीमार रहता था। वह पढ़ने में बहुत तेज था। जबकि मैं साधारण। स्कूल के उस्ताद भी हमारी तुलना करते हुए कहते थे कि लाला जी के दोनों बेटों में नार्थ पोल और साउथ पोल का अंतर है। हिन्दुओं के घरों में बड़े बेटे का स्थान और भूमिका भी कुछ अलग होती है, विशेषकर पाँच बेटियों के बाद एक बेटा हुआ हो। ऐसा नहीं कि मैं दब्बू स्वभाव का था। काफी शरारती था। खेल-कूद का शौकीन, गली-मुहल्ले में से टप्पे और गालियाँ सीख-सीखकर आता था, लेकिन बाद में असर भी मेरे मन पर उलटा हुआ। भाई शरीफ कहा जाने लगा और मैं आवारा। और जब होश संभाली तो मैं दब्बू स्वभाव का बन गया।"[8]

बालक भीष्म साहनी बचपन के दिनों में अक्सर बीमार रहते थे। उन्हें दोपहर का समय काटना बहुत मुश्किल हो जाता था क्योंकि पिताजी के जाते ही घर में एक प्रकार का सन्नाटा छा जाता था। माँ सत्संग में चली जाती थी और भाई-बहनें सभी स्कूल जाते थे, पर जब भाई लौटकर आता तो भीष्म साहनी उछलने-कूदने लगते थे। उनके मन में कभी-कभी अपने भाई के प्रति ईर्ष्या जागृत होती थी। इनका बालकपन एक साधारण गली या मुहल्ले के बच्चों के तरह ही था। भीष्म साहनी ने स्वयं लिखा है "भाई को देखकर दोनों बहनें खिल-खिलाकर हँसने लगी है पर माँ ने उसे छाती से लगाकर चूम लिया है। भाई को मिलने वाले हर चीज में एक प्रकार का नयापन होता है। जब मेरी बारी आती है तो वह पहले से जानी पहचानी होती है। उसमें कोई नयापन नहीं होता। भाई जैसे भविष्य की ओर मैं नई-नई चीजें उठाकर ले आता है। मुझ से दो वर्ष बड़ा होने की वजह से सारा वक्त मेरे आगे-आगे चलता हुआ जैसे नए-नार दरवाजे खोलता रहता है। वह अभी से मुझे एक

विलक्षणसा व्यक्ति नजर आने लगा है, जो पिली धोती पहन कर गुरुकुल में जा सकता है, जो गणित के सवाल करता है, इतनी मोटी कापी में लिखता है, जिसे एक ऐसे मास्टर जी पढ़ाते हैं, जिनका नाम मित्रविलास है, मुझे इस नाम वाला आध्यापक क्यों नहीं पढ़ता है।"[9]

भीष्म साहनी के जन्म के समय गुरुकुल की परंपरा चल रही थी। पर घर में पंजाबी, संस्कृत और हिंदी का माहौल था। घर में माता-पिता से ज्यादा बड़े भाई बलराज का ध्यान भीष्म की पढ़ाई पर था। भीष्म साहनी ने प्रारंभिक शिक्षा गुरुकुल से आरंभ की परंतु स्कूल में अध्ययन का माध्यम उर्दू थी। इसलिए भीष्म जी को बचपन से ही पंजाबी, संस्कृत, हिंदी और उर्दू भाषाओं का ज्ञान प्राप्त हो गया। फलस्वरूप उन्होंने विभिन्न साहित्य को जाना और अध्ययन किया। बड़े भाई बलराज, भीष्म साहनी तथा उनके मित्रों को लिखाना, पढ़ाना तथा परीक्षा लेना आदि कार्य करते थे। तरह-तरह के परीक्षा उपयोगी प्रश्न पत्र तैयार कराकर उनकी परीक्षा कराते तथा जाँच कर उन्हें अंक देकर परिणाम घोषित करते थे। ये सब कुछ हँसते खेलते किया जाता था एवं पढ़ाई भी हो जाती थी। उनके घर के माहौल में पढाई के लिए कोई समझौता नहीं था। पढ़ाई की जगह पर खेल-कूद या प्यार-दुलार नहीं था। अतः भीष्म साहनी की प्रारंभिक शिक्षा एक सुयोजित ढंग से चली।

किसी भी व्यक्ति का बचपन शरारती तथा खेल कूद आदि में गुजर जाता है पर भीष्म साहनी का बचपन ऐसा नही था। भीष्म साहनी कहते हैं- "बचपन का माहौल अँधेरी गुफा-जैसा लगता है। मैं अक्सर बीमार रहता था और उस खेल-कूद से वंचित था, जो बचपन का अधिकार है। खाट पर पड़ा सरकती धूप को देखता रहता, गली में गुजरते फकीरों, भिखमंगों, खोमचे वालों की आवाजें सुनता रहता, शाम के झुटपुटे में माँ के मुँह से सुने कवित्त, गीत, कहानियाँ, जिनमें अक्सर गहरा अवसाद भरा रहता था, मेरे रोग के साथी थे।"[10]

भीष्म साहनी की शिक्षा-दीक्षा बचपन से ही एक सही और उचित तरीके से हुई। भीष्म साहनी अपनी पढ़ाई के बारे में कहते हैं कि "मैं पढ़ाई में अच्छा था, हालाकि उत्कृष्ट नहीं था। आठवीं जमात में जिले में चौथी नंबर पर आया, जिसके लिए मुझे मैडल मिला। हमारे नगर में साल में एक बार घोड़ों की मंडी लगती थी, जिसमें फौज के लिए अच्छे नस्ल के घोड़े ख़रीदे जाते थे। अच्छे पले हुए घोड़ों को इनाम दिया जाता था। हुजूर डिप्टी कमिश्नर इनाम देते थे। ऐसे ही एक समारोह में मुझे एक मैडल से विभूषित किया गया। अंग्रेज बहादूर साहिब ने एक बढियाँ खच्चर के गले में मैडल डाला फिर मेरे गले में।"[11]

iii. साहित्य और अभिनय की ओर रूचि :-

भीष्म साहनी को अध्ययन का शौक तो बचपन से था ही उनके पिताजी को भी साहित्य के प्रति रूचि थी और उन्हें शेर-औ-शायरी का बड़ा शौक था। भीष्म साहनी बचपन से उर्दू साहित्य के प्रति रूचि रखते थे। कलाकार में दो प्रकार के गुण होते हैं – 1. जन्मजात गुण, 2. अर्जित गुण। कुछ कलाकारों में कला या प्रतिभा पैदाशयी होती है। उसे जन्मजात गुण कहते हैं। अगर उसे समय, वातवरण मिल जाए तो वह अनायास विकसित होता है। और जो कलाकार अभ्यास के द्वारा अपने गुण को निखारते हैं उसे अर्जित गुण कहा जाता है। यह बात सच है कि कला के बीज इंसान के साथ पैदा होते हैं भले ही उनके उभरने का समय कभी भी हो।

भीष्म साहनी के साथ ऐसा ही हुआ। बचपन के दिनों से ही उनके प्रिय लेखक हिंदी साहित्य के उपन्यास सम्राट प्रेमचंद और सुदर्शन थे। क्योंकि उस जमाने में ये दो लेखक बहुत ही लोकप्रिय थे। भीष्म साहनी पर प्रेमचंद का गहरा प्रभाव पड़ा है। उन्होंने खुद इस बात को स्वीकार किया है – "प्रेमचंद का मेरे ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा है। अब भी है। उनकी कहानियों के कुछ पात्र या स्थितियाँ मुझे हर्ट करती है। जैसे उनकी एक कहानी, जिसमें एक गरीब क्लर्क साहब की कोठरी पर जाता है। वहाँ उस पर साहब का कुत्ता झपटता है। प्रेमचंद ने इस घटना का बयान इतने सशक्त तरीके से किया है कि उसकी छाप देर तक मेरे मन पर रही।"[12] इसी तरह वे प्रेमचंद जैसे महान कहानीकार से प्रभावित होकर कहानी सृजन की ओर प्रवृत्त हुए।

उनके पिताजी के पास मेहर साहिब का कलाम था। उनके पिताजी बालक भीष्म को नज्में पढ़-पढ़ कर सुनाया करते थे। शेख शादी के शेर भी सुनाया करते। भीष्म साहनी का बचपन से उर्दू साहित्य के प्रति एक आकर्षण था। उन्होंने बचपन में ही पंचतंत्र तथा हितोपदेश की कहानियाँ पढ़ ली थी और अनेक कहानियाँ अपने माता-पिता से सुन चुके थे। उनके घर का वातावरण साहित्यिक और अध्ययन का था। उसका प्रभाव धीरे-धीरे भीष्म जी पर पड़ा। भीष्म साहनी ने प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाने में काफी योगदान दिया है। हिंदी त्रैमासिक पत्रिका 'आलोचना' के संपादक रहे परमानंद श्रीवास्तव ने भीष्म साहनी के विषय में कहा है कि "लेखन, अभिनय और प्रगतिशील लेखक संघ के संगठन के क्षेत्र में भीष्म साहनी ने जितना किया है वह अकेले की लड़ाई नहीं है, उसमें जनता की सीधी भागीदारी है। प्रेमचंद के सच्चे वाहक है भीष्म साहनी।"[13]

भीष्म साहनी एक अभिनेता के रूप में काफी परिचित भी थे। वे अपने स्कूल-कॉलेज के दिनों से लेकर आजीवन अभिनय करते रहे। भीष्म साहनी ने कई नाटकों में अभिनय किया है और उसके साथ कुछ खास

फिल्में भी की। भीष्म जी इप्टा से लंबे समय तक जुड़े रहें। उन्होंने चर्चित फिल्मों व सीरियल्स जैसे – 'तमस' में सरदार हरनाम सिंह, 'मोहन जोशी हाजिर हो' में मोहन जोशी के पात्र का अभिनय किया है। भीष्म साहनी एक सच्चे अभिनेता थे और वे बखूबी अभिनय कर सकते थे। इस संबंध में एम.के. रैन. का कहना है कि – "मैं क्या कहूँ। हिज फेस वाज सो ब्रिलियंट- उनके व्यक्तित्व में ही अभिनय की क्षमता प्रकट थी। वे एक-एक रेखा उभारने में कामयाब थे।"[14]

निर्देशक गोविन्द निहलानी भीष्म साहनी के संदर्भ में कहा है कि "जहाँ भीष्म जी द्वारा 'तमस' में अभिनय करने की बात है, तो जब मैंने उपन्यास पढ़ा और सरदार हरनाम सिंह का चरित्र पढ़ा तो मुझे लगा कि भीष्म जी इस किरदार को बखूबी निभा पाएँगे। क्योंकि उस चरित्र में एक सादापन था, जिसे कहते हैं न पैदाईशी ईमानदारी। वो मुझे उनमें दिखी। इसलिए मैंने उन्हें चुना। जब हम शूटिंग कर रहे थे, तो मेरा अंदाजा सही निकला। बेहद स्वभाविक अभिनय किया उन्होंने। उनकी 'परफॉरमेंस' ऐसी थी कि पूरी यूनिट को 'टच' करते थे।"[15]

भीष्म जी के परिवार में कुछ ही लोग हिंदी लिखना-पढ़ना जानते थे। उन्हें बचपन में घर पर शिक्षक हिंदी और संस्कृत पढ़ाने आते थे। उनके जीजा जी और बड़े भाई की कहानियाँ हिंदी में छपती थी तथा बुआजी की बेटी भी जो कविताएँ लिखती थी, वह हिंदी भाषा में थी। अतः उनके परिवार में हिंदी का व्यवहार ज्यादा हुआ करता था, परिणामस्वरूप भीष्म साहनी का भी लगाव हिंदी के प्रति बढ़ गया था। जब भीष्म साहनी अंगेजी विषय में एम.ए खत्म करके रावलपिंडी वापस आए तब वे पिताजी के व्यापार में हाथ बँटाने लगे थे। उस वक्त की एक आँखों देखी घटना ने उन्हें कहानी लिखने को प्रेरित किया। एक दिन जब भीष्म साहनी अपने व्यापार से घर वापस आ रहे थे तब उन्होंने कुछ लोगों द्वारा लड़की को छेड़-छाड़ करते हुए देखा था। वह लड़की बहुत सुन्दर थी और उसकी आँखें बहुत आकर्षक भी थी। भीष्म साहनी ने इसी आँखों देखी घटना को केंद्र बनाकर एक कहानी लिखी, जिसका नाम था 'नीली आँखें'। उस कहानी को 'हंस' पत्रिका में अमृतराय ने छाप दिया था। यहाँ से भीष्म साहनी का हिंदी साहित्य में पदार्पण हो गया था। इस कहानी के लेखन से भीष्म साहनी को एक नई दृष्टि और आलोक प्राप्त हुआ था।

iv. युवावस्था और वैवाहिक जीवन :-

भीष्म साहनी लाहौर से एम.ए (अंग्रेजी) में करने के बाद पुनः अपने जन्मस्थान रावलपिंडी आ गए थे। एक साधारण युवक की भाँति वे भी भविष्य को लेकर चिंताग्रस्त रहते थे। उनके परिवार में व्यापार विरासत से चला आ रहा था। परंतु भीष्म साहनी भविष्य में क्या करेंगे इसे लेकर सब चिंतित थे। पर उनके बड़े भाई बलराज पढ़ाई पूरी करके अपने पिताजी के साथ व्यापार में लग गए। मगर बाद में पूरे परिवार की अनिच्छा के बावजूद बलराज व्यापार और व्यवसाय से अलग हो गए। तब भीष्म अपने पिता के कार्य में हाथ बँटाने लगे थे। इनके व्यापार से जुड़ जाने पर पिताजी व्यापार से अलग हो गए। भीष्म साहनी कला प्रेमी थे। व्यापार के साथ कितना जुड़ सकते थे। व्यापार करना उनकी मज़बूरी थी। इससे छुटकारा पाने के लिए कोशिश करते थे।

भीष्म साहनी ने एक नाटक मंडली की स्थापना की थी। हमेशा वे इसकी तैयारी में लगे रहते थे। तभी उन्हें डी.ए.वी. कॉलेज में अंग्रेजी पढ़ाने के लिए आमंत्रित किया गया। यह उनके लिए सुखद अवसर था। अतः अब भीष्म साहनी व्यापार के साथ कॉलेज में अंग्रेजी पढ़ाने लगे। उन्होंने अब व्यापार करना, पढ़ना और नाटक खेलना प्रारंभ कर दिया था। नाटक के शौक को अब साकार करने का सुअवसर मिल गया था।

भीष्म साहनी को साधारण नागरिक की तरह ही युगानुकूल चलना पड़ा। इसलिए उनको विभिन्न प्रकार के कठिनाइयों से गुजरना पड़ा। परिवार और माता पिता को लेकर उन्होंने कहा है "मैं व्यापार करता रहा पर साथ ही साथ स्थानीय कॉलेज में आनरेरी तौर पर पढ़ाने भी लगा। थोड़ा बहुत कांग्रेस में काम करने लगा पर व्यापार का तौक भी दस साल तक गले में लटका रहा। इससे निजात तब मिली जब देश का बँटवारा हो गया। तब मैंने सचमुच बड़ा आजाद महसूस किया। इससे पहले भी छोड़ सकता था पर न तो विरोध करने की हिम्मत ही थी और न ही मन मानता था। क्योंकि भाई घर से निकले तो लौट कर नहीं आए। हम केवल दो भाई थे और दोनों ही माँ-बाप को छोड़कर घर से निकल जाए, यह सही नहीं लगता था। फिर व्यापार की घुटन, नाटक खेलना, कांग्रेस में काम करने और कॉलेज में पढ़ाने से बहुत कुछ कम हो गई थी।"[16]

भीष्म साहनी ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में खुलकर भाग लिया। उन्होंने सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने कांग्रेस में योगदान दिया था। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम दंगें और अंग्रेजों का दमन स्वयं अपनी आँखों से देखा था। इसलिए इन अनुभवों को अपने उपन्यास 'तमस' में उजागर किया। भीष्म साहनी के पिताजी ने अपने मित्र के अनपढ़ लड़की से उनकी सगाई तय कर दी। भीष्म जी ने

इसका विरोध किया और अपने तर्क प्रस्तुत किये और पिताजी मान गए। शीला जी भीष्म की जीवन-संगिनी बनकर कैसे आई, इस अतीत के बारे में शीला जी कहती है कि रावलपिंडी में मेरे पिताजी पुलिस में थे। एक बार भीष्म जी के 'भूतगाड़ी' नामक नाटक को दिखाने ले गए। इसी नाटक में भीष्म जी को मैंने पहली बार देखा। यह नाटक मुझे काफी अच्छा लगा इसमें भीष्म जी ने अभिनय काफी अच्छा किया था।

मैं रावलपिंडी डी.ए.वी. कॉलेज में बी.ए (तृतीय वर्ष) की छात्रा थी। वहीं अंग्रेजी की क्लास में पढ़ते हुए उनसे पहली मुलाकात हुई। उन्होंने बहुत अच्छा पढ़ाया था। अंग्रेजी के नाटक को पहले उन्होंने सारांश बता दिया, फिर रोचक ढंग से नाटक पढ़ाया। इससे मैं काफी प्रभावित हुई। उन दिनों मैं साइकिल से कॉलेज जाती थी। भीष्म जी बहुत सीधे-साधे, बहुत चुप और गंम्भीर रहने वाले अध्यापक थे, जबकि मैं काफी चंचल थी। सन् 1944 में मैं बीस बरस की थी और भीष्म जी 28 वर्ष के थे। एम.ए के परीक्षा देने के पाँच दिन बाद मेरी शादी हुई। हालांकि भीष्म जी की सगाई उनके माता-पिता ने बचपन में ही किसी और लड़की के साथ तय कर दी थी। वह लड़की काफी मोटी-तगड़ी थी। वह पढ़ी-लिखी नहीं थी। भीष्म जी ने मुझे पसंद किया था।"[17]

भीष्म साहनी अपनी पत्नी शीला से बहुत प्यार करते थे एवं शीला उनके जीवन एवं साहित्य का हिस्सा बन गई थी। जब शीला की मृत्यु हुई तो उनको बहुत बड़ा झटका लगा था इसी दर्द को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि "ऐसा कुछ नहीं था कि वह अचानक ऐसे चली जाएगी। जाना तो सभी को है। परंतु अकस्मात हुई उनकी मृत्यु ने झकझोर अवश्य दिया।"[18]

v. विदेश यात्रा और भारत आगमन :-

भारत सरकार की ओर से 1957 ई. में भीष्म साहनी को अनुवादक के रूप में मोस्को जाने के लिए चुना गया। इससे वे दुविधा में पड़ गए, उनके माता-पिता वृद्ध थे और उन्हें अकेले छोड़कर जाना पड़ेगा। फिर भी भीष्म साहनी ने अवसर को इन्कार न करते हुए मोस्को गए। उसी समय भीष्म साहनी ने यूरोप के विभिन्न देशो का भ्रमण किया। यहाँ पर भीष्म साहनी ने प्राग की एक बहुचर्चित लोककथा को आधार बनाकर सुविख्यात नाटक लिखा। जिसका नाम 'हानूश' था। भीष्म साहनी यहाँ सात वर्ष रहें। उन्होंने रूसी भाषा के पुस्तकों का हिंदी अनुवाद किया साथ ही भारतीय लेखकों की रचना का भी अंग्रेजी अनुवाद किया।

भीष्म साहनी एफ्रोएशियाई लेखक संघ के महासचिव रहे थे। वे राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव भी थे। 1963 ई. में भीष्म साहनी मोस्को से लौटकर पुनः दिल्ली कॉलेज में पढ़ाने लगे और

प्रगतिशील लेखक संघ में पुनः जुड़ गए थे। 'नई कहानियाँ' के संपादक कमलेश्वर के इस्तीफा के बाद 1965 ई. में भीष्म साहनी इसके संपादक बने।

भीष्म साहनी का व्यक्तित्व उनके समकालीनों के नजर में -:-

कृष्णा सोबती :- प्रसिद्ध लेखिका कृष्णा सोबती ने भीष्म साहनी के विषय में कहा है कि "भीष्म वह चेहरा है जो आप में से किसी का बेटा हो सकता है, किसी का भाई किसी का भतीजा और हर किसी का दोस्त। कहने का मतलब यह है कि आप किसी भी कबीले में भीष्म जैसे बरखुरदार को मजबूती से बंधा देख सकते हैं। भीष्म जी जो हैं वह सामने हैं। जितनी आँख और सब्र आपके पास हैं उतना ही सहजपन आप भीष्म साहनी के इर्द-गिर्द देख सकते हैं, पा सकते हैं। भीष्म के पास कोई हाशिया नहीं है। कोई पर्दा नहीं। वह सादगी पसंद सादा मिजाज इंसान हैं।"[19]

डॉ. नामवर सिंह :- भीष्म साहनी वर्तमान हिंदी जगत के उन थोड़े से लेखकों में हैं, जो सच्चे अर्थों में धर्म-निरपेक्ष और प्रतिबद्ध हैं। ख़ास बात यह है कि वे अपनी रचनाओं में इस आस्था का ढोल नहीं पीटते। यह विशेषता उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग हैं कि इसे उन्हें दिखावे की जरूरत नहीं पड़ती। उनके सौम्य, शालीन, सहज और विनम्र व्यक्तित्व के साथ विचारों की दृढ़ प्रतिबद्धता इतना घुलमिल गई है कि कभी-कभी उसके बारे में भ्रम भी होता है। बिना आक्रामक हुए भी कोई लेखक प्रतिबद्ध हो सकता है, इसकी सर्वोत्तम मिसाल भीष्म साहनी है।"[20]

राजेन्द्र यादव :- "भीष्म में एक ख़ास तरह का ठंडापन है जिसे कुछ लोग आलोचना करते वक्त एकयांत्रिक एप्रोच कहते हैं। इस बात पर मुझे शिकायत है भीष्म से कि वे बहुत तीव्र आवेशों के कथाकार नहीं हैं, चाहे वह प्रेम भावना या मानवीयता हो। यही कारण है कि इस स्तर पर 'तमस' की माँ भी सामान्य, निरीह और असहाय बूढ़ी औरत है। इसलिए उसमें अलग से कुछ नहीं है, वे टाइप्ड ज्यादा हैं व्यक्ति कम।"[21]

विष्णु प्रभाकर :- "भीष्म साहनी बहुत ही संवेदनशील व्यक्ति है। इसका असर भी उनके साहित्य में देखने को मिलता है। उनके इस सरल और सौम्य व्यक्तित्व के कारण ही उन पर मार्क्सवाद उस रूप में हावी नहीं हैं, जैसा अन्य वामपंथी लेखकों में देखने को मिलता है।"[22]

डॉ. कमला प्रसाद :- "भीष्म जी स्वभाव से बेहद नम्र हैं। मैंने उन्हें गुस्से में बहुत कम देखा है। अकारण गुस्से में रहनेवाले साथी उन्हें गांधीवादी कहते हैं। हमें मालूम है कि यह नम्रता, न कायरता है और न नाटकीयता, वह स्वभाव की निर्भयव्यक्तिकता है। वह ज्ञानात्मक संवेदना की झलक है।"[23]

भीष्म साहनी मध्यवर्ग की खरोंचें, जख्म, उसके दर्द और उसके उपरी खोल को छू-छू कर अपने को उस भीड़ से अलग खड़ा कर लेते हैं और नए तरीके से अपना अतीत चिरपरिचित क्षेत्र में उन्हें अंकित करने के लिए निष्पत्ति करते हैं। यह अकारण नहीं कि भीष्म के रचनाकार की आंतरिक जमीन बाहर के उपकरणों की मोहताज नहीं। भीष्म साहनी अपने आस पड़ोस के अलगाव से दूर रहकर समाज के यथार्थ से हमेशा एक कोण बनाए रखने में सफल रहे हैं। भीष्म साहनी का व्यक्तित्व सादगी पसंद हैं। उनमें बनावटीपन कहीं नहीं है। यही वजह है कि भीष्म युवा और बुजुर्ग दोनों में लोकप्रिय हैं।

1.ख. रचना-संसार

भीष्म साहनी का कृतित्व :-

कहानी संग्रह :-
1. भाग्यरेखा (1953)
2. पहला पाठ(1953)
3. भटकती राख(1966)
4. पटरियाँ(1973)
5. वाड़चू (1978)
6. शोभा यात्रा (1989)
7. निशाचर (1983)
8. पाली (1989)
9. डायन (1998)

भीष्म साहनी के कहानी संग्रहों में से कुछ चुनी हुई कहानियों के तीन संग्रह प्रकाशित हुए हैं –

1. प्रतिनिधि कहानियाँ (1993)
2. मेरी प्रिय कहानियाँ (1993)
3. चर्चित कहनियाँ (1997)

उपन्यास :-
1. झरोखे (1967)
5. मैयादास की माड़ी (1988)

2. कड़ियाँ (1970)
3. तमस (1973)
4. बसंती (1980)
6. कुंतो (1993)
7. नीलू नीलिमा निलोफर (2000)

नाटक :-
1. हानूश (1977)
2. कबीरा खड़ा बाजार में (1981)
3. माधवी (1989)
4. मुआवजे (1993)
5. रंग दे बसंती चोला (1998)
6. आलमगीर (1999)

बाल साहित्य :- 1. गुलेल का खेल (1980) 2. वापसी (1989)

निबंध संग्रह :- अपनी बात (1989)

आत्मकथा :- आज के अतीत।

पुरस्कार और सम्मान :-

भीष्म साहनी का साहित्य और कला के क्षेत्र में विशेष योगदान रहा है। जिसके फलस्वरूप उन्हें कई पुरस्कार एवं सम्मान से नवाजा गया है जो इस प्रकार है –

1. भाषा विभाग, पंजाब द्वारा – 1975 ई. में 'शिरोमणि' लेखक पुरस्कार।
2. 'तमस' उपन्यास पर 1976 ई. में 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार।
3. आफ्रोऐशीय लेखक संघ की ओर से 1980 ई. में 'लोटस' पुरस्कार।
4. 1979-80 ई. में दिल्ली साहित्य कला परिषद द्वारा सम्मानित।
5. 1980 ई. हिंदी-उर्दू साहित्य पुरस्कार (लखनऊ)
6. 1975 ई. में उपन्यास 'बसंती' पर उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान से प्रकाशित।
7. 1990 ई. में 'मैयादास की माड़ी' उपन्यास के लिए हिंदी अकादमी, दिल्ली से पुरस्कृत।
8. 1992 ई. में तीसरी बार साहित्य अकादमी की जरनल कौंसल में सम्मिलित।
9. 1998 ई. में राष्ट्रपति की ओर से 'पद्मभूषण' सम्मान।

भीष्म साहनी हिंदी साहित्य के प्रगतिशील लेखकों की परंपरा के सुप्रसिद्ध एवं समृद्ध लेखक है। उनके साहित्य में आज के समाज का यथार्थ वर्णन है। उनके कथा के केंद्र में भारत के नगरों और महानगरों में रहने वाले मध्य वर्ग हैं। इस समाज में वर्णभेद, जातीय भेदभाव और साम्प्रदायिकता का मूल कारण क्या है ? धर्म के नाम पर कौन फायदा उठा रहा है ? संप्रदाय के नाम पर सामुदायिक कत्ल के कारण क्या है ? सभी धर्म भाई-भाई क्यों नहीं रह पाते हैं ? आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर चिंता भीष्म साहनी के कृतित्व में झलकती है। भीष्म साहनी सामाजिक जीवन यथार्थ को महत्त्वपूर्ण ढंग से उद्घाटित करते हैं। उनके साहित्य में सहानुभूति और वास्तविकता की झलक मिलती है। उनकी रचनाएँ भी उन्हीं की तरह शांत और शालीन व्यक्तित्व के समान है। भीष्म साहनी ने अपनी रचनाओं के बारे स्वयं कहा है "साहित्य के क्षेत्र में भी अनुभव वैसे ही सपाट और सीधे-सादे ही रहे जैसे जीवन में। मैं समझता हूँ अपने से अलग नाम की कोई चीज नहीं होती। जैसा मैं हूँ वैसी ही रचनाएँ रच पाऊँगा, मेरे संस्कार, अनुभव, मेरा व्यक्तित्व, मेरी दृष्टि सभी मिलकर रचना की सृष्टि करते हैं। इनमें से एक भी झूठी हो तो सारी रचना झूठी पड़ जाती है। प्रत्येक रचना, मेरी समझ में एक इकाई होती है, संश्लिष्ट और अटूट, जिसमें से कुछ अलग नहीं किया जा सकता। न विचार, न शिल्प, न शब्द- सभी के सामंजस्य से ही उसका अस्तित्व बनता है। इसमें न कोई साध्य होता है न कोई साधक। पर यह इकाई मूलतः जीवन के कोख से निकल कर आती है, भले ही लेखक के संवेदन के रास्ते से आये, इसलिए जीवन की ही बात कहती है।"[24]

भीष्म साहनी का साहित्य जीवन का साहित्य है जो सत्य है, स्वभाविक है। उनकी दृष्टि मानवतावादी थी। भाव, भाष्य, आचार-विचार, अभिव्यक्ति की प्रभावाविन्ति आदि पर उनका व्यक्तित्व छाया हुआ है। इस दृष्टि से भीष्म साहनी जी एक सफल और महान साहित्यकार है।

क. कहानीकार के रूप में भीष्म साहनी :-

भीष्म साहनी प्रगतिशील कहानी जगत के बहुत ही चर्चित और बहुप्रतिष्ठित हस्ताक्षर है। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों में भीष्म साहनी का नाम बड़े ही आदरपूर्वक लिया जाता है। उन्होंने अपने साहित्यिक लेखन का आरंभ कहानी से ही किया। मानव जीवन की विडम्बनाओं को इन्होंने कहानी का विषय और समाज के मध्यवर्ग को कहानियों का आधार बनाया। उनकी कहानियों में मध्यवर्ग की मानसिकता विविध रूपों का वर्णन हुआ है। उनकी रचना मध्यवर्ग की जीवन शैली को विश्लेषित करती है। उन्होंने भारत पकिस्तान के बँटवारे के समय और उसके बाद की त्रासदी को बहुत करीब से देखा और अनुभव किया था। उनकी कहानियों में सांप्रदायिकता

के कारणों तथा परिणामों को स्थान दिया गया है। जिसमें वर्तमान समय की शासन व्यवस्था एवं भ्रष्टाचार आदि का विश्लेषण भी किया गया है।

भीष्म साहनी की कहानी की मूल प्रेरणा जीवन से मिलती है वही आगे चलकर कला में ढलती है। हर कला की तरह कहानी भी जीवन से जुड़ी होती है। उससे जुड़कर ही कहानी में प्रमाणिकता भी आती है। उनकी कहानियाँ जीवन के यथार्थ को पकड़ पाने में सक्षम है और वह जीवन के दर्शन से अवगत कराती है तथा दायित्वबोध को जगाती है। यह भीष्म साहनी की कहानियों की सार्थकता है और यही उनकी उपलब्धि है।

भीष्म साहनी की कहानियों में मध्यवर्ग की कुंठा, पीड़ा, घुटन, बिखराव, रूढ़ियों एवं झूठी मान्यतायें आदि बड़े प्रभावशाली ढंग से अभिव्यंजित हुई है। दलित, शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति के लिए इनकी कहानियों में वर्तमान जीवन की विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य मिलता है, तो कही सामाजिक परिवर्तन के अभाव में होने वाली कस्माहट और कुंठा को मुखरित किया है। कहानी के मूल संवेदना के विषय में भीष्म साहनी कहते हैं – "जिसमें अधिक व्यापक स्तर पर सार्थकता पाई जाए, व्यापक सार्थकता से मेरा मतलब है कि अगर उनमें कोई सत्य झलकता है तो वह सत्य मात्र किसी व्यक्ति का निजी सत्य ही न रहकर बड़े पैमाने पर पूरे समाज के जीवन का सत्य बन कर सामने आए, जहाँ वह अधिक व्यापक संदर्भ ग्रहण कर पाए किसी एक की कहानी न रहकर पूरे समाज की कहानी बन जाएँ, जहाँ वह हमारे यथार्थ के किसी महत्त्वपूर्ण पहलू को उजागर करती हुई अपने परिवेश में सार्थकता ग्रहण कर ले।"[25]

भीष्म साहनी जीवन के कथाकार हैं। उनके लिए जीवन से बढ़कर और कुछ नहीं है। जीवन की सरल जटिलताओं की तरह उनकी कहानियाँ है। उनको साहित्यिक वातावारण विरासत में मिला था। फुफेरी बहन सत्यवती मल्लिका हिंदी की चर्चित कहानीकार थी। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार जैसे प्रसिद्ध कहानीकार उनके रिश्ते में थे। हिंदी फ़िल्म के महान अभिनेता तथा बड़े भाई बलराज साहनी का उन पर गहरा प्रभाव था। प्रेमचंद और यशपाल से वे काफी प्रभावित थे। भीष्म साहनी ने 1943 ई. में पहली कहानी लिखी थी, जो कॉलेज की पत्रिका 'रीवा' में प्रकाशित हुई थी। उनकी कहानी जीवन के गहरे अर्थों में जुड़ा है। अभी तक भीष्म साहनी के दस संकलन प्रकाशित हैं, जिनमें कुल कहानियों की संख्या 120 हैं। सवा सौ से अधिक अपनी कहानियों में भीष्म साहनी ने भारतीय यथार्थ के विविध पक्षों को बड़े यथार्थ और सूक्ष्म रूप से रेखांकित किया है।

भीष्म साहनी की कुछ प्रमुख कहानियों पर संक्षेप में विवरण

चीफ की दावत :- 'चीफ की दावत' कहानी में मध्यवर्गीय व्यक्ति का अंतर्विरोध बहुत ही सूक्ष्म रूप से सामने आया है। यहाँ शामनाथ के मन में अपनी माँ के प्रति अंतर्विरोध विद्यमान है। मध्यवर्गीय मानसिकता पर प्रहार किया गया है। जहाँ संबंधों में अमानवीयता और उदासीनता है। जिसके कारण स्थितियाँ त्रासद बन जाती है। इस कहानी में माँ के प्रति पुत्र के बदलते हुए व्यवहार का संवेदनात्मक और व्यंग्यात्मक चित्र खींचा गया है।

मौका परस्त :- 'मौका परस्त' कहानी में राजनीतिक नेताओं के पाखंड और धूर्तता को बेबाकी और क्रूरता से उजागर किया गया है। मौत को भी अपने हक़ में इस्तेमाल करने के कौशल में निपुण वे उन लड़कों से भी ज्यादा मौका परस्त, चालक और धूर्त है, जो बूचड़खाने में ले जाती हुई निरीह बकरियों के दूध दूहते हैं। शुरू से अंत तक बूचड़खाने के प्रसंग कहानी की व्यंजना संवेदना को अनेक स्तरों पर खोलती है। इस कहानी में राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं पर व्यंग किया गया है। इस कहानी पर टिप्पणी करते हुए अमरकांत कहते हैं – "आज के राजनीतिक जीवन खास करके चुनाव बाजी की मासिकता के विरोध में सशक्त टिप्पणी चुनावबाजी के चक्र में हमें सारी मानवीय संवेदनाओं से शून्य कर दिया है। चुनावबाजी के इस माहौल में त्याग, कुर्बानी आदि का कोई महत्त्व नहीं। महत्त्वपूर्ण है पैसे के बल पर दादा किस्म के नेताओं का विकास और कुर्सी हथियाने के लिए होड़।"[26]

वाङ्चू :- इस कहानी में वाङ्चू एक व्यक्ति के रूप में जितना सभ्य है उतना ही एक प्रतीक के रूप में भी। वह सार्वभौमिकता की भावना का प्रतीक है। दूसरे शब्दों में वह मुट्ठी भर लोगों का प्रतिनिधि है, जो सार्वभौमिकता की भावना को जीने के कारण सब जगह निर्वासन भोगता है। ऐसे लोगों के बीच देशकाल की एक सतत और अविछिन्न धारा में जीनेवाले इक्के-दुक्के अपने आप को इतना अकेला महसूस करते हैं और अकेलेपन की पीड़ा कैसी होती है, इसकी अभिव्यक्ति ही इस कहानी की मूल संवेदना है।

पटरियाँ :- यह कहानी एक ओर नव-धनाढ्य वर्ग की चारित्रिक कमजोरियों और मरती मानवता को उद्घाटित करती है, तथा दूसरी ओर केशोराम का वर्ग-चरित्र जिन्होंने पूंजीपति-वर्ग के उत्थान और अपनी गलाजत-भरी जिंदगी को नियति मान लिया है। यह वर्ग ऐसा है जिसे स्वयं को काटने के लिए हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

अमृतसर आ गया है :- भारत पकिस्तान की विभाजन की घटना को लेकर लिखी गई कहानी 'अमृतसर आ गया है' की कथा 'तमस' जैसे उपन्यास की आधारशिला है। 'अमृतसर आ गया है' कहानी में ट्रेन के एक कंपार्टमेंट का चित्रण है, जिसमें हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख बैठे हैं। जगह कम है, लोग ज्यादा है, इसलिए जो पहले से आसन जमाए बैठे हैं, वे आनेवालों को कंपार्टमेंट में चढ़ने ही नहीं देते और अगर कोई चढ़ जाता है तो उसे बैठने नहीं देते। ऊपर के बर्थ में एक पठान लेटा हुआ है जो कुछ भी बोल जाता है। नीचे बैठे एक हिंदू बाबू उसका व्यवहार देखते रहते हैं। तभी पठान एक हिंदू औरत जो गर्भवती रहती है, निचे उतरकर उसके पेट में लात मारता है। और वह तिलमिला के बैठ जाती है। बाबू अंदर ही तमतमा जाता है, क्योंकि उस वक्त वहाँ पर पठान की संख्या ज्यादा रहती है। परंतु जैसे ही अमृतसर आता है, बाबू शेर हो जाता है। चीख-चीख कर गलियाँ देता है। उसमें न जाने कहा से शक्ति आ जाती है। भीष्म साहनी ने बाबू के माध्यम से एक सहज मानवीय प्रवृत्ति जो अपने परिवेश में प्रकट हो जाती है, चित्रित करते हैं।

पहला पाठ :- इस कहानी में सांप्रदायिक मानसिकता अपने क्रूरता स्वरूप में सामने आती है। जहाँ वानप्रस्थी जी बालकों को सांप्रदायिक संस्कार देते हैं और अछूतों से घृणा करने, उनसे दूर रहने का पाठ पढ़ाते थे। उनकी चिंतन और सोच में अछूत तो फिर भी स्वीकार है लेकिन मुसलमान नहीं। यह घातक मानसिकता और अपनी क्रूरता के साथ इस कहानी में व्यक्त होती है।

सागमीट :- इस कहानी में पात्र की सहजता, सरलता और जीवंतता के बीच में से अमानवीय हो रहे जीवन संदर्भों को रेखांकित किया गया है। इस कहानी में संवेदनहीनता दिखाई देती है। सागमीट कहानी में महीन रूप से व्यंग किया गया है। यह कहानी बिना किसी सैद्धांतिक आवेग के समकालीन सामाजिक यथार्थ को सामने रखती है।

निशाचर :- इस कहानी में रद्दी चुनने वाली औरतें है। वे रद्दी की दुकान के बाहर कतराने बेचती है। कोयला बीनने वाली औरतें भी हैं। केसरों और उसकी बेटी दोनों मिलकर रद्दी चुनती हैं। कहानी में इन दोनों की दयनीय स्थिति को दर्शाया गया है।

त्रास :- यह कहानी भीष्म साहनी की एक मार्मिक कहानी है। इस कहानी में एक मोटरवाला साइकिल वाले को टक्कर मारकर घायल कर देता है। गरीब साइकिल वाला उसे अपना मददगार तथा हितैषी समझता है, जबकि मोटरकार वाला मुआवजे के रूप में पाँच रूपये देने में भी सोचता है। इस कहानी में सत्यता को रेखांकित किया

गया है कि आधुनिक महानगरों में पलने वाली घृणा कितनी अमानुषिक है और आधुनिक अमूर्त घृणा पुराने जमाने के सरल घृणा से कितनी अलग है।

आवाजें :- यह कहानी ऐसे भाग्यहीन मनुष्यों की कहानी है जो पकिस्तान से विस्थापित होकर हिन्दुस्तान आते हैं। भारत सरकार उन्हें दिल्ली की एक कॉलोनी में बसाती है। परंतु वर्तमान समय में अपनी आगामी पीढ़ी उन्हें उपेक्षा से ठुकरा देती है। वे समूचे विस्थापित लोग अपने अतीत और वर्तमान में एक साथ विस्थापन की पीड़ा झेलते हैं।

भटकती राख :- यह कहानी भविष्य के परदे पर आज की तस्वीर हैं और बीते हुए कल के संदर्भ में आज की तात्कालिक ध्वनियाँ भी वही मुखर होती है। फिर उनकी सबसे बड़ी ताकत इनकी सादगी है, एक पारदर्शी सहजता है जो इस कहानी में लगातार विरल होती जाती है।

राधा-अनुराधा :- इस कहानी में गौरी की स्थिति में धोबी की लड़की राधा है, जो घरों का काम करके साठ-सत्तर रुपये की कमाई करती है और वकील साहब के पत्नी की स्थिति कुछ परिष्कृत रूप में श्यामा है। राधा घर से भागकर पड़ोस के हॉस्टल में काम करने वाले एक पहाड़ी लड़के से विवाह कर लेती है। राधा जब श्यामा बीबी से मिलने आती है तो वह उसे घर से निकाल देती है। इस कहानी में श्यामा बीबी दुविधा की स्थिति में नजर आती है।

भगोड़े :- इस कहानी में एक नया रूप देखने को मिलता है। जिसमें तापस साधना की अमनोवैज्ञानिक असलियत को व्यक्त किया गया है। गजानन किस तरह जीवन की पुकार सी साधना-विरत हो जाता है ? मरते हुए और बाद में मरे हुए बच्चे के लिए माँ बाप की तड़प से पीड़ित हो उसे लगा जैसे मनुष्य का सत्य मनुष्य के ह्रदय में ही मिलेगा। इस तरह भीष्म साहनी सांप्रदायिक दर्शन की जड़ तक पहुँचे हैं और उसके विरोध में अपना वैज्ञानिक तर्क दे सके हैं।

खंडहर :- यह कहानी अपने दुहरे आयाम और शिल्पगत विशेषता के कारण भी विशेष संदर्भ की अपेक्षा रखती है। शिल्प की दृष्टि से इस कहानी से एक कहानी निकलती है – बुआ की कहानी। यह सवाल किया जा सकता है कि बुआ की कहानी स्वतंत्र रूप से क्यों नहीं लिखी गई। इसका कारण संभवतः यह हो सकता है कि बुआ की कहानी भी एक दूसरी तरह का अतीत है जिसमें से उपजती है मानवीय संवेदना-रिश्तों के सहज संवेदना, जो कथा-नायक को उसके जीवन का आधार प्रदान करती है, उसके वर्तमान और अतीत को जोड़ती है।

उपन्यासकार के रूप में भीष्म साहनी :-

भीष्म साहनी एक सफल और सुप्रसिद्ध उपन्यासकार भी हैं। इनका साहित्य मार्क्सवाद से प्रभावित हैं, जिसमें मार्क्सवादी जीवन दर्शन परिलक्षित होता है। इसके फलस्वरूप भी भीष्म साहनी प्रेमचंद, यशपाल, कमलेश्वर आदि साहित्यकार के निकट थे। मध्यवर्गीय जीवन के विस्तृत अनुभवों को व्यक्त करने के लिए भीष्म साहनी ने उपन्यासों की रचना की। इनके उपन्यासों में मध्यवर्गीय, निम्नवर्गीय, दर्द, पीड़ा आदि का यथार्थ और सूक्ष्म रूप मिलता है। भीष्म साहनी के उपन्यासों में द्वंदात्मक संघर्ष का प्रभावी चित्रण है। पूँजीवाद, भौतिकवाद, सामन्तवाद को तार्किक दृष्टिकोण से चित्रित किया गया है। जिसके द्वारा सांस्कृतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक भूमि का भी वर्णन किया है। इन्होंने उपन्यासों का कथ्य- व्यक्तिगत समस्या को बनाया है। भीष्म साहनी के कुल मिलाकर सात उपन्यास प्रकाशित हुए हैं।

भीष्म साहनी प्रगतिशील लेखक थे। उनके उपन्यासों में प्रेमचंद और यशपाल की तरह सामाजिक यथार्थ मिलता है। भीष्म साहनी ने अपने सातों उपन्यासों में नए-नए पात्रों को गढ़ा है और इस नए-नए पात्रों की सृष्टि अलग-अलग परिवेश में एक समाजवादी वैज्ञानिक दृष्टि से की है। भीष्म साहनी के उपन्यासों की संक्षिप्त चर्चा निम्नलिखित है –

झरोखें(1967) :- यह भीष्म साहनी का प्रथम उपन्यास है जो 1967 ई. में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में भीष्म साहनी ने एक छोटे से बालक के माध्यम से परिवार में घटने वाली छोटी-छोटी घटनाओं को देखने और उनका उल्लेख करने की अविस्मरणीय कथा प्रस्ततु की है। यह उनका आत्मकथात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास में उन्होंने अपने बचपन का वर्णन किया है। इस उपन्यास में जिस परिवार का वर्णन है वह भीष्म साहनी का अपना परिवार है।

'झरोखें' उपन्यास में आर्य समाजी सस्कारों की सीमा, उपदेश और आचरण के अंतर्विरोधों को बहुत सूक्ष्म ढंग से अंकित किया गया है। यह समूचा परिवेश किस सीमा तक जकड़न भरा, बुद्धि विरोधी और पुस्तकीय होकर स्वयं जीवन के विरुद्ध खड़ा है उसके अनेक संकेत उपन्यास में मौजूद हैं।

प्रभा खरे के अनुसार "सहज और सादगी के साथ 'झरोखें' उपन्यास में भीष्म साहनी ने मध्य वर्ग के वातवरण का यथार्थ चित्र बनाया है। छोटे-छोटे अनुभवों को पूरी संवेदनशीलता के साथ उभारा गया है और यह

स्पष्ट किया गया है कि इतिहास, संस्कृति मूल्य के यथास्थितिवादी भ्रमों से मुक्त तभी हुआ जा सकता है जब मनुष्य को सामाजिक और यथार्थवादी दृष्टिकोण से परिचित कराया जाए।"[27]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी का प्रथम उपन्यास 'झरोखें' सचमुच ही अतीत के किसी झरोखें में झांककर लिखा गया है। भीष्म साहनी के बचपन के यादों का एक सिलसिलेवर व्यौरा इस उपन्यास में देखने को मिलता है।

कड़ियाँ (1970) :- 'कड़ियाँ' भीष्म साहनी का द्वितीय उपन्यास है। इसमें भी मध्यवर्गीय परिवार की अनमेल विवाह जैसे एक ज्वलंत समस्या को लक्ष्य बनाया गया है। इस उपन्यास में उन्होंने एक ऐसे दंपत्ति का चित्रण किया है, जिनके आपसी संबंध टूट चुके है। इस उपन्यास का नायक महेंद्र है। उसका विवाहेत्तर यौन संबंधों की कथा इस उपन्यास की मुख्य कथा है। इन दोनों के दांपत्य जीवन की कड़ियाँ एक बार टूट जाती है, फिर जुड़ नहीं पाती।

भीष्म साहनी 'कड़ियाँ' में स्त्री की आर्थिक आत्मनिर्भरता के अभाव में पुरुष की बढ़ती हुई निरंकुशता के परिणाम स्वरूप पारिवारिक विघटन को रेखांकित करते हैं। प्रमिला बहुत साधारण सी शिक्षा प्राप्त आर्य समाजी पिता की छत्र-छाया में पली निहायत घरेलू ढंग की स्त्री है। महेंद्र भीतर से कायर और बाहर से शरीफ इंसान है। वह आधुनिक जीवन से अत्यंत प्रभावित है। लेकिन उसकी पत्नी प्रमिला प्राचीन मान्यताओं को मानने वाली भारतीय गृहिणी है, जो पति से ज्यादा बेटे का ख्याल रखती है। उपन्यास में मध्यवर्गीय पति-पत्नी के बनते-बिगड़ते संबंधों को यथार्थ की भूमि पर बड़े ही प्रभावशाली ढंग से चित्रित करते हुए लेखक ने बताने का प्रयास किया है कि "पारिवारिक जीवन को बाँधने वाली कड़ियाँ चाहे जितनी मजबूत हों, उनका टूटना आधुनिक जीवन की नियति है। इसलिए उन्हें जोड़ने की असफल चेष्टा करने की बजाय उनका समाधान ढूँढना ही उचित होगा।"[28]

तमस(1973) :- 'तमस' साहित्य अकदमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास है। 'तमस' भारत विभाजन के परिणाम स्वरूप देश में होने वाली सांप्रदायिक दंगों की करुण गाथा को प्रस्तुत करने वाला अत्यंत महत्त्वपूर्ण और चर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में विभाजन से पूर्व हमारी सामाजिक मानसिकता और परिणामस्वरूप होने वाले दंगों का बड़ा स्वभाविक सूक्ष्म और यथार्थ चित्रण किया गया है। स्वयं उपन्यासकार के शब्दों में – "यह सिलसिला देश के बँटवारे तक चलता रहा। देश के बँटवारे के समय जो सांप्रदायिक दंगे हुए तो मैं कांग्रेस की

रिलीफ कमेटी में काम करता था और आंकड़े इकट्ठे करता था कि वहाँ कितने मरे, कितने घायल हुए, कितने घर जले आदि। तभी गाँव-गाँव घुमने और सांप्रदायिक दंगों के वीभत्स दृश्य देखने का अवसर मिला। 'तमस' इसी अनुभव पर आधारित है।"[29]

अंग्रेज जैसे ही इस देश में आये, उन्होंने सांप्रदायिकता के विष को फैलाने की कोशिश की। उन्होंने हिंदू और मुसलमान इन दोनों को तोड़ने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने कभी मुसलमानों को तो कभी हिन्दुओं को अपनी तरफ खींच लिया और सांप्रदायिकता की आग को भड़काया। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि एक मुसलमान आदमी मुराद अली ने नत्थू चमार द्वारा एक सूअर को मरवाया और उसे मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंकवा दिया। इस घटना के कारण तत्कालीन जनता पर पाँच दिन तक लगतार फसाद चलता रहा, जिसका वर्णन इस उपन्यास में किया गया है। इन पाँच दिनों में एक सौ तीन गाँव जल गए कई लोग मारे गए और लाखों का नुकसान हुआ। इस तबाही का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में किया है।

बसंती (1980) :- भीष्म साहनी का चौथा उपन्यास 'बसंती' एक सामाजिक उपन्यास है। जिसमें मानवीय जीवन के टूटते-जुड़ते रिश्तों का सूक्ष्म चित्रांकन है। निम्नवर्गीय जीवन के यथार्थ को अंकन करने वाला यह उपन्यास एक अलग ही तरह का परिवेश हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। 'बसंती' स्त्री प्रधान उपन्यास है लेकिन इसमें प्रत्यक्ष स्त्री वादी विमर्श नहीं मिलते। फिर भी इसमें यह सूत्र मिलता है कि स्त्री वादी विचार की मजबूती के लिए ज्यादा शक्तिशाली और सार्थक स्रोत बसंती जैसी निम्न और कमजोर तबकों की स्त्रियाँ हो सकती है, श्यामा बीबी जैसे पुरुषवादी मूल्य व्यवस्था की सूक्ष्मता में जीने वाली स्त्री नहीं। उपन्यासकार ने "उपन्यास में एक ऐसी लड़की का चित्रण किया है जो मेहनत मजदूरी करने के लिए महानगर में आए ग्रामीण परिवार की कठिनाइयों के साथ-साथ बड़ी होती है।"[30] इस लड़की का नाम बसंती है। लेखक ने उजड़े हुए लोगों की एक पूरी दुनिया ही उपन्यास में बसा दी है। हालांकि उपन्यास अस्थायी बस्ती के उजड़ने से शुरु होता है, लेखक ने ऐसी अवस्था पर भी प्रत्येक पात्र और उससे जुड़ी घटना को अलग पहचान दी है। यानी सभी पात्र अलग-अलग व्यक्ति वाचक की संज्ञाएँ हैं। 'बसंती' उपन्यास की नायिका है। वह अपने परिवार और समाज के नैतिक मूल्यों का विरोध करती है। उसका यह विद्रोह उसे शारीरिक और मानसिक शोषण तक ले जाता है। पर उसके स्वभाविक को कोई भी घटना तोड़ नहीं पाती। जाहिर है, उसके जीवन की कहानी में जन सभ्यता के विनाश की कहानी सबसे ज्यादा है। वह चौदह वर्ष की होती है। उसका एक वर्ष का जीवन उपन्यास में चित्रित हुआ है

। बसंती के भीतर 'पक्षी' की आत्मा है। उसका मानवीय स्वभाव हँसने का है। उसे विकसित होने के लिए बहुत छोटी सी जगह की जरूरत है। इसके बावजूद जल्द ही वह कुचल दी जाती है। उसके आत्मा के पंख को नोच दिया जाता है, उसकी निरंतर खिल-खिल हँसी 'एक धीमी' अंतर्मुखी सी मुस्कान भर जाती है।

मैयादास की माड़ी(1988) :- यह भीष्म साहनी की पाँचवी महत्त्वपूर्ण कृति है। यह औपन्यासिक रचना की दृष्टि से बड़ा ही रोचक उपन्यास है, लेकिन रोचकता के साथ-साथ यह सोद्देश्य रचना है, जो एक प्रबुद्ध विश्व-दृष्टि से रची गई है। यह उपन्यास पंजाब के अतीत को एक माड़ी अथवा हवेली और उसके आस-पास के कस्बे जीवन को हमारे सामने खोलकर रख देता है। अंग्रेज के आगमन के पहले साहूकार, जमींदार और दीवान अपने स्वार्थ के लिए राजाओं की खुशामद किया करते हैं और सनद लेकर दीवान बन जाते हैं और जब अंग्रेजी हुकूमत आती है तब धनपत राय जैसा सनकी आदमी भी तीन गाँवों की सनद लेकर दीवान बन जाता है । जैसे-जैसे परिस्थितियाँ परिवर्तित होती है, धनपत राय परिवर्तित नहीं होता इसी वजह से वह पागल होकर मर जाता है। इन सभी घटनाओं को भीष्म साहनी ने बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

उपन्यासकार ने इस उपन्यास के द्वारा भारतीय समाज की विशेषताओं के माध्यम से खालसा राज्य व्यवस्था से ब्रिटिश औपनिवेशिक राज्य व प्रशासनिक व्यवस्था में संक्रमण की कथा पंजाब के एक कस्बे के जीवन की कथा द्वारा कही है। मानवीय स्तर पर उपन्यास में कई मार्मिक व भावनात्मक प्रसंग है, किंतु समूचे रूप से उपन्यास सामाजिक जीवन के यथार्थ को चित्रित करने पर केन्द्रित है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद द्वारा भारत के आर्थिक शोषण से दोहन दस्तावेजी प्रमाण भी उपन्यास में इस ढंग से संयोजित किया गया है कि उपन्यास की सृजनात्मकता उससे प्रभावित नहीं होती। एक तरह से किसी समय के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक इतिहास को कैसे सृजनात्मक रूप दिया जा सकता है, 'मैयादास की माड़ी' इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

कुंतो (1993):- 'कुंतो' भीष्म साहनी का पारिवारिक जीवन के संबंध पर आधारित उपन्यास है। यह उपन्यास एक सामान्य,सीधे-साधे कथानक को प्रस्तुत करता है। यह कथा संपूर्ण नारी-जाति की नियति को परिभाषित करती है और अपने अतीत का विहंगावलोकन करती है। इस उपन्यास के केंद्र में जयदेव, कुंतो, गिरीश और सुषमा की कहानी है। कुंतो के बड़े भाई 'प्रोफे स्साब' मध्यम मार्ग अपनाने वाले हैं। वे बाहर से आधुनिक और अंदर से रुढ़िवादी हैं। यह उपन्यास पारिवारिक माहौल से शुरू होते हुए अंत तक आते-आते देश विभाजन, सांप्रदायिकता जैसी कई समस्याओं को प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। भीष्म साहनी के उपन्यास में दुःख का मूल कारण स्त्री गामिता है। इस मानवीय प्रवृत्ति को भी स्त्रियों के दुःख की तरह ही किसी वृहत्तर सामाजिक

संदर्भों से जोड़कर नहीं देखा जा सकता है। विद्या के संदर्भ में इसे किसी हद तक अशिक्षा और अज्ञान से भी जोड़ा जा सकता है। सुषमा के रूप में अंततः स्त्री की आत्म सजगता और आत्मनिर्भरता की बात कही जा सकती है, लेकिन ये सारे सूत्र इतने अस्पष्ट और बिखरे हुए है कि उन्हें उपन्यास की केन्द्रीय अंतर्वस्तु, यदि वह कोई है तो उसे जोड़ पाना कठीन है।

नीलू नीलिमा निलोफर(2000) :- यह भीष्म साहनी का अंतिम उपन्यास है। इस उपन्यास में भीष्म साहनी ने पुनः सांप्रदायिकता को अपना विषय बनाया है। इस उपन्यास में विभाजन के पचास साल बाद अर्सें से साथ-साथ रह रहे हिंदू-मुस्लिम संप्रदाय के लोगों में विकसित मानवीय संबंधों की वस्तु स्थिति की पहचान कराना चाहते हैं। इस उपन्यास का प्रारंभिक कथा-सूत्र भी इसी बात की गवाही देता है। अंतर्जातीय प्रेमविवाह के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं को उजागर प्रेम के माध्यम से किया गया है। लेकिन उपन्यास एक प्रेम कथा नहीं प्रेम यहाँ ज्वलंत रसायन की तरह आता है। स्त्री और पुरुष के बीच हुए प्रेम को सामन्यतः स्थापित और प्रभावशाली संस्थाओं को चकित और विचलित करने वाला माना जाता है।

इस उपन्यास का प्रारंभिक कथा-सूत्र भी इसी बात की गवाही देता है। मुस्लिम परिवार की निलोफर को हिंदू सुधीर से प्रेम हो जाता है। उपन्यास की प्रारंभिक स्थिति इतनी अस्वभाविक योजनाबद्ध और गड़ी हुई है, जिससे लगता है कि मूल आधार ही कमजोर पड़ गया है। वीरेंद्र मेंहदीस्ता ने कहा है "धर्म निरपेक्षता तथा सांप्रदायिकता के मुद्दे को उठाकर लिखे गए उपन्यास में अनजाने ही जीवन के व्यापक अनुभव ने उनके पात्रों को दूसरी दिशा दी। परिणाम स्वरूप यह दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी के एक दूसरे के व्यक्तित्व को संपूर्णता के साथ स्वीकारने और उसके प्रति आदर का भाव रखने वाले बारीक़ सूत्र की ओर संकेत करने वाला महत्त्वपूर्ण उपन्यास बनाया गया है।"[31]

नाटककार के रूप में भीष्म साहनी :-

भीष्म साहनी हिंदी साहित्य जगत में एक नाटककार के रूप में भी जाने जाते हैं। नाटककार के रूप में वे एक सफल रंगमंचीय दुनिया में उभरे हैं। भले ही उन्होंने बहुत कम नाटक की रचना की हो, फिर भी सफल नाटककारों के मध्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं। भीष्म साहनी को नाटक की दुनिया बड़ी हृदयग्राही लगी और उन्होंने नाटक लिखा। भीष्म साहनी रंगमंच और फ़िल्म में सफल अभिनय भी करते थे। उनका गहरा रचना दायित्व तथा सामाजिक परिस्थितियों की भयावहता, जिसे वे प्रत्यक्ष रुप से नाटक के माध्यम से

उद्घाटित करने की आवश्यकता महसूस करते थे। कथा साहित्य और नाटक के अंतर में भीष्म साहनी का यह मानना है कि "कहानी में कोई पात्र धुँधला रह सकता है, लेकिन नाटक में नहीं रह सकता। उसमें प्रत्येक पात्र का अपना स्पष्ट व्यक्तित्व होना जरुरी है।"[32]

भीष्म साहनी ने अपने नाटकों का आधार रूप समाज, पुराण और इतिहास से लिया। उन्होंने कुल मिलाकर छः नाटक लिखे। बहुत कम साहित्यकारों में यह दृष्टिगोचर होता है कि वह सभी विधाओं में उच्चकोटि का स्थान प्राप्त किए हो पर भीष्म साहनी कहानी, उपन्यास और नाटक तीनों विधाओं में सिद्धहस्त हैं। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी है। उनके नाटकों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है :-

हानूश(1977) :- 'हानूश' नाटक भीष्म साहनी का पहला नाटक है। यह एक उत्कृष्ट नाटक है, जो धर्म और शासन के गठबंधन में व्यक्ति संघर्ष को दर्शता है। साथ ही यह मध्ययुगीन परिवेश में एक कलाकार की मानवीय स्थिति का निरूपण भी है। सन् 1960 के आस-पास भीष्म साहनी चेकोस्लोवाकिया की राजधानी घूमने गए थे। 'प्राग' शहर में घूमते हुए संयोग से उन्होंने वहाँ की वह ऐतिहासिक मीनारी घड़ी देखी जिसके संबंध में वहाँ कई कथाएँ प्रचलित हैं। उसका सारांश यह था कि घड़ी के निर्माता कलाकार, घड़ीसाज-कारीगर को तत्कालीन बादशाह द्वारा अजीब तरीके से पुरस्कृत किया गया। बादशाह ने उस कलाकार-कारीगर की आँखें निकलवा ली थी, शायद इसलिए की वह पुनः दूसरी घड़ी न बना सके। इसी किंवदंती को भीष्म साहनी ने नाटक के ताने-बाने में बुनकर 'हानूश' के रूप में प्रस्तुत किया है। नाटककार ने मध्ययुग का एक भरा-पूरा परिवेश गढ़ा, काल्पनिक घटना विन्यास द्वारा कथावस्तु का निर्माण किया और कथा का भार ढोने के लिए उपयुक्त चरित्र गढ़े। उन्होंने यह स्वीकार किया कि इस नाटक में एक मानवीय स्थिति को मध्ययुगीन परिवेश में प्रस्तुत करना है।

'हानूश' एक इतना गरीब ताला मिस्त्री है कि घड़ी के पुर्जे बनाने के लिए उसे कभी चर्च से तो कभी नगर के दस्तकार व्यपारियों से आर्थिक सहायता माँगनी पड़ती है। वह समाज के निम्न एवं शोषित वर्ग का ही एक पात्र है जो अपनी आवश्यकता और इच्छा की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर है। समाज के निम्न वर्ग के कारण व्यवस्था और समाज से सीधा संघर्ष कर प्रताड़ित होता है।

'हानूश' नाटक का आयाम द्वंद्व जनित परिस्थितियों में अन्वेषक और वैयक्तिक संघर्ष है। वह अन्वेषण में इतनी एकाग्रता से डूबा है कि अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह तक नहीं कर पाता। उसकी पत्नी

कात्या विपन्नता का त्रास झेलते हुए क्षीण हो गई है। अलबत्ता बेटी यांका जरूर पिता के स्वप्न से साझा किए हुए हैं। जब यह स्वप्न साकार होता है तो परिवार पर दूसरा कहर टूट पड़ता है।

'कबीरा खड़ा बाजार में'(1989) :- 'कबीरा खड़ा बाजार में' नाटक की पृष्ठभूमि अपेक्षाकृत अधिक विशद, बहुस्तरीय तथा बहुआयामी है। यह नाटक एक स्तर पर कबीर के तत्कालीन समाज व्यवस्था, उसमें कबीर के निर्भय, सत्यभाषी और अन्याय के विरुद्ध लड़नेवाले अक्खड़ व्यक्तित्व का पुनर्सृजन करता है। जो दूसरे स्तर पर वह हमारे समकालीन समाज उसमें संघर्षरत संप्रदाय विरोध और बाह्याचार विरोधी शक्तियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका की ओर स्पष्ट करना है। इस प्रकार कबीर के अक्खड़, लापरवाह, विद्रोही और मस्तमौला, सुदृढ़ और तेजस्वी सामाजिक व्यक्तित्व को उद्घाटित करने वाली यह एक गंभीर नाट्यकृति है।

'कबीरा खड़ा बाजार में' नाटक की कथावस्तु कबीर का समूचा जीवन है। इस नाटक में कबीर का सामाजिक भेदभाव और जाति-वर्ग भेद के विरोध में आवाज उठाने और उसके परिणामस्वरूप उन्हें मिलने वाला दंड ही कचोटता है। इस नाटक में दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी हैं। सिकंदर लोदी आज की निरंकुश और तनाशाही सत्ता का प्रतीक है। इस नाटक में, नाटक कायस्थ का चरित्र आज के दोगली नीति की ओर इशारा करता है। अंधा और भिखारी वह अभागा आधुनिक जन है, जो आए दिन किसी-न-किसी जोर-जुल्म का शिकार होता है। मठ का महंत सांप्रदायिकता, धर्मांधता, विचारांधता और भावोन्माद का प्रतीक है। यह महंत नये और पुराने चोले पहनकर आज भी उसी तरह का खेल खेल रहे हैं, जैसे कभी कबीर के जमाने में होता था। वही तद्युगीन मौलवी हैं, पंडे हैं, पुजारी हैं और वही धार्मिक दुष्चक्र हैं। सच्चे, ईमानदार और पाखंड-विरोधी, सहज, स्वाभाविक, फक्कड़ और फकीर इंसान के लिए चुनौतियाँ हैं, जिनका मुकाबला कबीर को करना पड़ा था।

सामाजिक मूल्यहीनता की स्थितियों का दर्शन नाटक का उद्देश्य रहा है। यद्यपि कथा का परिवेश कबीर के समय का है, मध्यकालीन परिवेश से संबद्ध है। तथापि आज का सामाजिक जीवन भी उन विकृतियों और रूढ़ियों से ऊपर उठ नहीं पाया। कबीर के साथ रैदास, सेना, पीपा, बशीर की टोली ऐसी ही आधुनिक प्रतिबद्ध प्रगतिशील इंसानों के अग्रिम दस्ते की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, जो सब कुछ दाँव पर लगाकर मौजूदा व्यवस्था के संपूर्ण पाखण्ड तंत्र का भंडाफोड़ करने के लिए कमर कसे हुए हैं। ऐसी कमर जो सदियों से कोड़े खाते आ रही हैं, फिर भी उसके कसाव में कोई कसर या कमी नहीं है। व्यंजना के स्वरों पर

इन्हीं सारे सन्दर्भों को यह नाटक गुंजायमान कर देती है। यही इसकी शक्ति और यही उसका प्रभाव है। इसलिए वह ऐतिहासिक होते हुए भी अत्यंत आधुनिक है।

माधवी(1981) :- माधवी नाटक में इतिहास और पुराण की पीठिका पर यथार्थ की कल्पना प्रस्तुत की गई है। इस नाटक में स्त्री के प्रति पुरुष के व्यवहार को लेकर शोषण और दमन की परंपरा और सामंतवादी मनोवृत्ति का यथार्थ चित्रण किया है। प्रेम करने वाले दो निष्कलुष जीवन किस प्रकार मनुष्य द्वारा बनाये गये धर्म, नीति और व्यवस्था पर बलिदान हो जाते हैं, इससे उपजी करुणा का अनुभव और मानवीय नियमों की सार्थकता पर पुनर्विचार करना ही माधवी नाटक का जीवनानुभव है जिसे संप्रेषित करने के लिए पौराणिक पात्र एवं परिस्थिति का विधान किया गया है।

यह नाटक महाभारत की कथा पर आधारित है। इसमें महाभारत के उस प्रसंग को उद्घाटित किया गया है, जब महाराज ययाति अपना राज-पाठ त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम में आ जाते हैं। उस वक्त गालव विश्वामित्र का शिष्य था। गालव अपनी शिक्षा समाप्ति के समय गुरु -दक्षिणा देने की हठ करता है और विश्वामित्र उसके हठी स्वभाव से क्रोधित होकर आठ सौ अश्वमेघी घोड़े मांग लेता है। अश्वमेघी घोड़े की खोज में वह भटकता हुआ दानवीर राजा ययाति के आश्रम पहुँचता है। लेकिन उनके पास एक बेटी माधवी के अलावा कुछ था ही नहीं। ययाति ने अपने दैवी गुणों से युक्त अपनी एकमात्र पुत्री माधवी को यह कहकर उसे सौंप देता है कि जहाँ कहीं कोई भी राजा के पास आठ सौ अश्वमेधी घोड़े मिलें, उनके बदले वह माधवी को राजा के पास देकर घोड़े ले ले। यही से माधवी की करुण कथा आरंभ होती है। ययाति गालव से बताते हैं कि माधवी से जो पुत्र प्राप्त होगा वह राजा चक्रवर्ती होगा। तुम इसे ले जाओ और जिस राजा को माधवी के बारे में बताओगे वह माधवी के बदले में तुम्हें अश्वमेध के लिए आठ-सौ घोड़े दे देगा। जबकि मूलकथा और नाटक में भीष्म साहनी ने कुछ बुनियादी अंतर किए हैं, नाटक में गालव और माधवी एक-दूसरे को प्रेम करने लगते हैं, हालांकि अंत में यह प्रेम भंग हो जाता है। मूलकथा में माधवी तपोवन में जाकर साधना करने लगती है जबकि नाटक में उसका लोकाचार से मोह भंग हो जाता है और वह आश्रम छोड़कर चला जाती है।

मुआवजे(1993):- इस नाटक में भीष्म साहनी ने भ्रष्टाचार के कारण जर्जर हो गयी सामाजिक और राजनैतिक स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। 'मुआवजे' नाटक मानवीयता के मूल्यों के ह्रास का संकेत भी करती है। उत्तरदायित्वहीनता और कर्त्तव्यहीनता आज की गंभीर समस्या है जिसका समाधान शासन से संभव नहीं है। भीष्म सहनी ने देश की दुर्व्यवस्था, नैतिक पतन, जर्जर सामाजिक संरचना, भ्रष्टाचार की व्यापकता और

राजनीतिज्ञों एवं सरकारी कर्मचारियों की उत्तरदायित्वहीनता को रेखांकित करते हुए आम आदमी की करुण नियति, करुण व्यथा-कथा और उसकी विशेषताओं की सीमाओं को दिखाने की कोशिश की है। आज के व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की भीषण विसंगतियों को उजागर करना ही इस नाटक का मूल प्रयोजन, उद्देश्य या कथ्य है। जिसे दृश्यत्व देने के लिए ऐसी घटनाओं का आयोजन किया गया है, जिससे पूरे परिवेश और सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन की रोग ग्रस्तता स्पष्ट हो जाती है।

'यह नाटक गिरी हुई नैतिकता, वैचारिक पतन, राजनीति का भ्रष्ट तथा विदूषकीय चरित्र और साधारण आदमी के जीवन में गहराता जा रहा भ्रष्टाचार जैसा असामान्य तत्व अपनी समस्त विकृतियों की यथार्थता के साथ उजागर हुए हैं। आज समाज में व्यक्ति का पारंपरिक व्यक्तित्व संबंध और उनके बीच आदर्श टूट रहे है। जिसका सीधा प्रभाव सामाजिक मूल्यों पर पड़ा है जिनमें स्त्री-पुरुष के दाम्पत्य जैसे आत्मीय घनिष्ठ तथा एकांत संबंध भी इन विद्रूपताओं से नहीं बचे हैं।

रंग दे बसंती चोला(1998):- भीष्म सहनी का यह नाटक देश विभाजन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और पराधीन भारत की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करता है। यह नाटक आधुनिक संवेदना और समकालीन जीवन में परिव्याप्त अस्थिरता को चित्रित करता है। जलियाँवाला बाग़ की घटना से जुड़ा यह नाटक अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किये गये अत्याचारों तथा अमानुषिक व्यवहारों को दृश्यत्व देता है। भारतीय लोगों की देश-भक्ति, अहिंसा, त्याग और बलिदान को सामने रखनेवाला यह नाटक उन अत्याचारों के प्रति आक्रोश उत्पन्न करता है। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों और संग्राम के बलिदान के इतिहास को प्रत्यक्ष प्रस्तुत करता है।

'रंग दे बसंती चोला' की त्रासदी यह है कि यह नाटक साम्राज्य के दायरे की पैरवी करता है और साम्रज्य के विपक्ष में शहीद उधम सिंह की ओर दोनों फर्जों की टकराहट में 'सांग एंड ड्रामा डिवीज़न' के लिए लिखे गए किसी आलेख की तरह फना हो जाता है, हालांकि यह अकेला नाटक है जिसमें भाषा की रवानगी, गतियाँ और मुद्राएँ दृश्यात्मक भी है। नाटकीय कार्य-व्यापार दृश्यबंध भाषणबाजी, कुटिल योजनाओं के कुचक्र, हत्याएँ मारपीट, गोली चलाना, ड्रामा मेलोड्रामा सब है। सबसे ऊपर इस नाटक में गांधी है जो अनुपस्थित रहकर भी उपस्थित है, लेकिन नाटक दृष्टिकोण के स्तर पर स्पष्ट हैं।

आलमगीर(1999) :- 'आलमगीर' नाटक औरंगजेब को केंद्र में रखकर लिखा गया है। इस नाटक से स्पष्ट होता है कि मुगलकालीन भारतीय इतिहास भयानक राजनीतिक अस्थिरता, उठा-पटक और षड्यंत्र, हिंसा,

कूटनीति, हत्या तथा विश्वासघात का समय रहा है। अपने उद्देश्य की पूर्ति स्वार्थ-सिद्धि और सत्ता हथियाने की दुर्भावना से ग्रस्त अपने ही सगे-संबंधियों को नजरबंद करवाना अथवा निर्ममतापूर्वक उनकी हत्या तक करवा देना पूरे मुग़ल साम्राज्य की सामान्य घटना है। शाहजहाँ, औरंगजेब और दारा शिकोह के परम नाटकीय जीवन, जटिल मानवीय स्वभाव के अन्तर्विरोध को पकड़ते हुए भीष्म साहनी ने उनकी जीवन त्रासदी, कूटनीतिक दाँव-पेंच एवं सत्ता हथियाने के लिए बाप-भाई तक की हत्या करने वाले क्रूर शासक का चारित्रिक उद्घाटन भी किया है।

भीष्म साहनी का यह नाटक वस्तुतः मुग़लकालीन परिस्थिति एवं परिवेश का चित्रण ही नहीं करता, बल्कि ऐतिहासिक पात्र, परिवेश एवं संदर्भ का आधुनिक चेतना के धरातल पर मूल्यांकन भी करता है और समसामयिक राजनीतिक यथार्थ चित्रण करता है।

बाल-साहित्यकार के रूप में भीष्म साहनी :-

भीष्म साहनी ने बच्चों के लिए भी अपनी लेखनी चलाई थी। उन्होंने छोटे-छोटे बच्चों के लिए बाल-साहित्य की रचना की। इनसे संबंधित कृतियाँ हैं – 1. गुलेल का खेल(1980) 2. वापसी(1989)

भीष्म साहनी के अपने व्यक्तित्व अनुभव-बोध कराने वाली ये दोनों कृतियाँ 'मैं' शैली में लिखी गई है।

1. 'गुलेल का खेल' में सदाचार की सद्वृत्ति के उपदेश विषय में लिखा गया है। इसमें मनोवैज्ञानिक तथ्य का भी उद्घाटन किया गया है कि बुरे से बुरे व्यक्ति में भी विकास की संभावनाएँ हैं।

2. 'वापसी' में पशुओं का उल्लेख किया गया है। इन पशुओं के माध्यम से मानवीय प्रवृत्तियों को बताया गया है।

निबंधकार के रूप में भीष्म साहनी :-

भीष्म साहनी ने एक कहानीकार, उपन्यासकार तथा नाटककार होने के साथ-साथ आत्मपरख लेख, आलोचना, निबंध, संस्मरण, सामाजिक विषयों पर वैचारिक लेख तथा साहित्यिक लेख भी बहुत बार लिखे हैं। उनका 'अपनी बात' शीर्षक निबंध (सन् 1990) में प्रकाशित हुआ था। सन् 1947 से सन् 1987 तक उनके द्वारा लिखे गए सभी निबंधों का संकलित रूप ही 'अपनी बात' है।

आत्मकथा लेखक के रूप में भीष्म साहनी :-

भीष्म साहनी ने 'आज का अतीत' नाम से आत्मकथा लिखी। इस पुस्तक के संदर्भ में भीष्म साहनी ने स्वयं कहा है "मेरी आत्मकथा 'आज का अतीत' शीर्षक से हाल में राजकमल प्रकाशन द्वारा छपकर आई है। उसमें मेरे संस्कारों, मान्यताओं आदि का सविस्तार वर्णन है। उसे देख जाएँ आपके लिए बहुत-सी बातें साफ हो जाएँगी।"[33]

भीष्म साहनी सात पर्तों वाली सादगी के लेखक हैं। आत्मकथा में वह कुछ छिपाते नहीं, पर कुछ छूट गया है यह आभास अनेक आत्मीय स्थलों पर अनुभव होता है। इसमें तथ्यों और आँकड़ों के स्थान पर जीवन अनुभव खंड दृश्य चित्रों की तरह आते हैं। उनके उपन्यास से यदि परिवार का कोई बच भी गया तो आज के अतीत से तो कोई नहीं बचा। इस चित्रवी में ही वे सूचनापरक इबारतें आती हैं, जिनमें भीष्म साहनी के जीवन से जुड़ी बहुत सी बातें बयां की जाती है। पर वे अपनी नाटकीयता के साथ आती है। इस आत्मकथा को पढ़ना एक चित्रदीर्घा से गुजरने जैसा है जिसमें आठ दशकों के इतिहास की कुछ आत्मीय छवियाँ हैं जिनकी प्रतीकात्मकता उन्हें आज के संदर्भ में एक अर्थ प्रदान करती है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि भीष्म साहनी बहुआयामी प्रतिभा से संपन्न साहित्यकार थे। जिन्होंने साहित्य का आधार अपने अनुभव से ग्रहण किया। भीष्म साहनी को बचपन से ही घर का साहित्यिक वातावरण, माता-पिता के आर्य समाजी संस्कार, अभिनय तथा नाटक में रूचि, व्यापार का अनुभव, बड़े भाई बलराज का आकर्षक व्यक्तित्व और विभाजन त्रासदी का माहौल मिला। जिस कारण उनके साहित्य में इन सब का प्रभाव देखने को मिलता है। उनके जीवन में प्रेमचंद, यशपाल और सुदर्शन जैसे महान साहित्यकार का भी प्रभाव पड़ा था। इनका आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व एक जैसा ही था। उन्होंने एक साथ ही हिंदी साहित्य के कई विधाओं में सृजन कार्य किये। भीष्म साहनी के साहित्य को पाठकों का भरपूर प्रेम मिला है। इस संबंध में अरुण कमल ने कहा है "मैंने अपने जीवन में जिन लेखकों के लिए हिंदी जन में, सर्वसाधारण में, निःसंकोच प्रेम देखा है उनमें नागार्जुन, परसाई, रामविलास शर्मा के साथ भीष्म जी भी है। अपने लेखन से और साथ-साथ अपने जीवन से जो लेखक जन को प्रभावित करता है वही उसके हृदय में स्थान प्राप्त कर पाता है। जन को लगना चाहिए कि वह हमारा लेखक है, हमारा आदमी है, हमारी बात करता है और हमारे लिए जोखिम उठता है। भीष्म साहनी हिंदी जाति के अपने लेखक थे और हैं।"[34]

भीष्म साहनी ने अपने जीवन में व्यापार, पत्रकार, लेखक, प्राध्यापक, अभिनेता, रंगकर्मी हाकी खेलना आदि सबकुछ किया। परंतु उनमें उन्हें सबसे प्रिय हाकी खेलना तथा सबसे नीरस व्यापार करना था। हिंदी साहित्य संसार को समृद्ध करने वाले साहित्यकार भीष्म साहनी का निधन 11 जुलाई 2004 को दिल्ली के एस्कोर्ट अस्पताल में हो गया। जिसके साथ ही हिंदी साहित्य का एक चमकता हुआ सूरज डूब गया। मगर उनके द्वारा लिखी गई रचनाओं की रोशनी आज भी संसार को प्रकाशमान कर रही है।

संदर्भ :

1. भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, राजेश्वर सक्सेना, पृ. सं.- 9
2. सारिका के अगस्त अंक 1965 में, पृ. सं.- 26
3. भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, राजेश्वर सक्सेना, पृ. सं.- 30
4. मेरे भाई बलराज, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 2
5. आलोचना, अप्रैल-सितंबर -2004, पृ. सं.- 34
6. अपनी बात, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 10
7. भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, राजेश्वर सक्सेना, पृ. सं.- 11
8. वही, पृ. सं.- 18
9. वही, पृ. सं.- 49
10. अपनी बात, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 17
11. भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, राजेश्वर सक्सेना, पृ. सं.- 33
12. वही, पृ. सं.- 30
13. आलोचना, अप्रैल-सितंबर, 2004, पृ. सं.- 5
14. आलोचना, अप्रैल-सितंबर 2004, पृ. सं.- 253
15. केवल गोस्वामी, सारिका, वर्ष-1990, पृ. सं.- 39
16. बात-चीत-तीन : भीष्म साहनी, केवल गोस्वामी, पृ. सं.- 31
17. सारिका, वर्ष- 1990, पृ. सं.- 18
18. आलोचना, अप्रैल-सितंबर 2004, पृ. सं.- 8
19. भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, राजेश्वर सक्सेना, पृ. सं.- 69

20. सारिका, वर्ष 1990, पृ. सं.- 44

21. वही, पृ. सं.- 44

22. वही, पृ. सं.- 44

23. भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, राजेश्वर सक्सेना, पृ. सं.- 71

24. अपनी बात, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 26

25. मेरे प्रिय कहानियाँ : भीष्म साहनी, पृ. सं.- 6

26. भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना, राजेश्वर सक्सेना, पृ. सं.- 103

27. वही, पृ. सं.- 114

28. समकालीन साहित्य : एक नई दृष्टि, इंद्रनाथ मदान, पृ. सं.- 126

29. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 228

30. बसंती, भीष्म साहनी, फ्लैप से

31. पल प्रतिपल, मार्च-जून- 2009, पृ. सं.- 150-151

32. भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, राजेश्वर सक्सेना, पृ. सं.- 15

33. आलोचना, अप्रैल-जून- 2004, पृ. सं.- 36

34. आलोचना, अप्रैल-सितंबर- 2004, पृ. सं.-15

द्वितीय अध्याय

भारतीय समाज और हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिकता

2.क. सांप्रदायिकता : अवधारणा एवं स्वरूप

सांप्रदायिक विचारधारा बहुत लंबे समय से हमारे जीवन में मौजूद रही है, जो हमें बहुत ही साधारण और साफ सी लगती है लेकिन वास्तविकता में यह इसके विपरीत है। 'संप्रदाय' बहुधा 'धर्म' से जुड़कर आता है, जिससे यह भ्रम पैदा होता है कि दोनों एक दूसरे के पर्याय है, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। धर्म में जहाँ विस्तृत, व्यापक एवं विशाल विचारधारा समाहित होती है, वही संप्रदाय सीमित संकुचित और खंडित विचारधारा के लिए प्रयुक्त होता है। धर्म संघ का समर्थन करता है और संप्रदाय संगठन की हिमायत। संप्रदाय का संबंध और आधार धर्म में ही केंद्रित होता है, परंतु जब इसमें राजनीति का प्रवेश हो जाता है तो राष्ट्र और समाज में उसका दुष्प्रभाव पड़ने लगता है और धर्म की आड़ लेकर स्वार्थ लोलुप लोग उथल-पुथल मचाने लगते हैं। धर्म की ऐसी सीमित संकुचित और खंडित विचारधारा 'सांप्रदायिकता' कहलाती है। एक प्रश्न हमेशा यह उठता है कि क्या धर्म या धार्मिक प्रचलन में निष्ठा रखना सांप्रदायिकता है? इस प्रश्न का उत्तर निश्चित रूप से ही नकारात्मक होगा। धर्म से मनुष्य को आध्यात्मिक अनुशासन और जीवन जीने की सम्यक पद्धति प्राप्त होती है, लेकिन सांप्रदायिकता इस जीवन पद्धति और अनुशासन को छिन्न-भिन्न करने का कार्य करती है। धर्म जहाँ मानवीय मूल्यों को शीर्ष पर ले जाती है वही सांप्रदायिकता दलदल में। सांप्रदायिक दल का व्यक्ति धर्म को संकीर्ण परिवेश में ही स्वीकारता है, क्योंकि इस संकुचित परिवेश में चलकर ही उसकी स्वार्थ सिद्धि संभव है। ऐसे दल के लोग अपने संप्रदाय तक ही सीमित रहते हैं। 'सांप्रदायिकता' एक ऐसी विचारधारा है जो खुद को सांप्रदायिक संज्ञा देना पसंद नहीं करती है। सांप्रदायिकता वर्तमान समय में एक गंभीर समस्याँ के रूप में उभरी है। सांप्रदायिकता को समझने के लिए हमें धर्म और सम्प्रदाय को समझना आवश्यक है।

धर्म

धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है 'धारण करना'। इसकी विशेषता है शक्ति एवं गुण को धारण करना। जो किसी व्यक्ति तथा वस्तु में सदैव विद्यमान रहती है। जैसे अग्नि का गुण है जलना और जल का गुण है शीतल करना। 'तुलसी शब्द कोश' में धर्म की परिभाषा दी गई है "धरम-धर्म शास्त्रविहित आचरण के अनुरूप कर्म"[1] अर्थात् शास्त्रों में वर्णित आचरण के अनुरूप कर्म का पालन ही धर्म है। धर्म शब्द का

अंग्रेजी रूपांतरण है रिलिजियन (Religion)। इस शब्द की उत्पत्ति 'रिलिजियो' (Religio) से हुई है जिसका अर्थ है 'एक साथ जोड़ना' (To Bind with)

'दि इन्साइक्लोपिडिया ऑफ रिलीजियन' के अनुसार "धर्म जीवन के विविध अनुभवों की गहराई का वह संगठन हैं जो अपने आस-पास की संस्कृति में मौजूद रीति-रिवाज, शुद्धता, पूर्णता के अनुरूप बदलता रहता है।"[2] प्राचीन काल से धर्म का प्रभाव आचार विचार एवं व्यवहार पर अत्यधिक रहा है , वह अगोचर शक्तियों के सत्य का खोज दैवीय शक्ति पर विश्वास करने के लिए बाध्य करती है। प्राचीन युग से ही मनुष्य की यह धारणा रही है कि धार्मिक क्रियाकलापों एवं आचरण से वह विशेष लाभ प्राप्त कर सकता है जैसे :- स्वास्थ्य, दीर्घायु, बच्चे विशेषकर पुत्र, भौतिक संसाधन, समृद्ध जीवन, धन, अच्छी फसल आदि।

हम धर्म की उत्पत्ति पर विचार करें तो पायेगें कि धर्म आदि मानव की देन है। आदिम युग में जब मनुष्य ने समूह में रहने की आवश्कता को महसूस किया। तब इन कबीलों की उत्पति हुई होगी। इन कबीलों ने प्राकृतिक आपदाओं से जूझना शुरू किया होगा और वैज्ञानिक चिंतन के अभाव में इन आपदाओं में मानवीकरण का आरोपण कर उस अगम, अगोचर सत्ता को परम शक्तिशाली कह कर पारिभाषित किया। जिससे ईश्वर की उत्पति हुई। वह ईश्वर जिसने इस सृष्टि का निर्माण किया और इस सृष्टि का संचालन भी करता है। भूकंप, बाढ़, वर्षा, बादल गरजना, बिजली के कड़कने से जंगल में लगी आग को भी पारिभाषित करने का प्रयास किया गया जो क्रमशः ईश्वर के आसूँ, उनका क्रोध एवं उनके क्रोध से उत्पन्न प्रकोप बना। फिर यह प्रयास किया गया कि ईश्वर के इस प्रकोप को शांत कैसे किया जाए। इसके लिए यज्ञ, आहुति, पशुबलि, नरबलि जैसे कर्मकांड अपनाये गए। कबीले में रहने के कुछ नियम-कानून बने। जो धीरे-धीरे कर्म काण्ड से जुड़ते गए और ज्यादा नियम कानून बनते गए। इन नियमों को धर्म की संज्ञा देकर विभूषित किया गया। किसी ईश्वर में विश्वास रखना ही एक मात्र धर्म नहीं है बल्कि उन कबीलों या समाज द्वारा बनाये गये तमाम नियम कानून, कर्मकांड एवं बाह्याचारों को इसके साथ ही धार्मिक क्रिया कलापों एवं समारोहों में शिरकत करना भी अनिवार्य था। आर्यों या हिंदू धर्म को इस रूप में देखा जा सकता है। प्रत्येक धर्म की उत्पत्ति इसी रूप में हुई, यह नहीं कहा जा सकता।

मानव सभ्यता के इतिहास के आधार पर कहा जा सकता है कि कई बार एक कबीले में मौजूद किसी व्यक्ति, उसकी विद्वता, उसकी मेधा से पूरे काबिले के लोग प्रभावित हुए हो। उस व्यक्ति ने स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधित्व घोषित किया और कहा कि ईश्वर ने उसे मानव मात्र के कल्याण के लिए भेजा है, पतितों के उद्धार के लिए भेजा है और इस प्रकार उस व्यक्ति ने अपने कुछ अनुयायी बना लिया। धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ती

गई और अंततः एक नये धर्म की स्थापना हुई। इस्लाम, ईसाई, बौद्ध एवं जैन धर्म को इस रूप में देखा जा सकता है। पैगंबर साहब, ईसा मसीह, गौतम बुद्ध और महावीर जैन ने स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधित्व घोषित किया एवं उनके द्वारा कही गई बातों को सभी मान कर चलने लगे। धीरे-धीरे ये बातें रूढ़ होती गई और इसने धर्म का रूप धारण कर लिया जिसका मूल भाव मनुष्य का कल्याण था।

धर्म में विकृति तब आई जब उसने मनुष्य के विवेक पर भी कब्ज़ा ज़माना शुरू किया। अपने प्रति पूर्ण समर्पण की व्यक्ति मांग स्वतंत्र होकर न कुछ सोच सकता था न ही कर सकता था। जो कुछ उसे करना था वह धर्म के दायरे में रहकर ही किया। जन्म से मृत्यु तक वह धर्म से जकड़ा हुआ है। चाहे कोई भी धर्म हो उसकी उत्पति मानव कल्याण के लिए ही हुई है। समाज को एक श्रृंखला में पिरोने के लिए धर्म का आविर्भाव हुआ है। कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने धर्म पर विचार करते हुए कहा हैं "धर्म हमारी रक्षा और कल्याण के लिए है अगर वह हमारी आत्मा को शांति और देह को सुख नहीं प्रदान कर सकता तो मैं उसे पुराने कोट की भांति उतार फेंकना पसंद करूंगा। जो धर्म हमारी आत्मा का बंधन हो जाए, उससे जितनी जल्द हम अपना गला छुड़ा ले, उतना ही अच्छा है।"[3]

प्रत्येक धर्म में दूसरे धर्म के प्रति आदर, उसके अनुयायियों के प्रति समानता का भाव, पशु-पक्षी प्राणियों के प्रति दयाभाव, दुखियों-पीड़ितों के प्रति सेवाभाव जैसे बातें कही गई। धर्म का आविर्भाव इसलिए हुआ कि मनुष्य के स्वभाव में गुणात्मक सुधार आये तथा उसमें एक जीवंत रूपांतरण हो। मूल बात यह है कि धर्म की उत्पत्ति के पीछे मानव कल्याण का एक महत्तम उद्देश्य था। समस्या तब खड़ी हुई जब यह पुरोहितों एवं पाखंडियों के हाथ में पड़ा। जब कोई स्वयं को धर्म और 'परमात्मा' का विशेष ज्ञाता मानता है और अपने विचार, अपनी आस्था और अपने मत को दूसरे को थोपना चाहता है, समाज पर लादना चाहता है तो समस्या खड़ी हो जाती है। देवतावाद या पैंगम्बरवाद तथा पुरोहित से जुड़ने के लिए सुझाए गए कर्मकांड को भी 'धर्म' की संज्ञा दे दी गई। धर्म अनेक आस्थाओं, मतों, मतांतरों व विश्वासों में विभाजित किया व प्रत्येक विभाजन को एक पृथक धर्म की संज्ञा दे दी। अपने कर्मकांड को धर्म कहकर संबोधित करना आरम्भ कर दिया। इससे धर्म शब्द में विकृति आ गई। पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन को वास्तव में धर्म नहीं कहा जा सकता, ये समस्त कर्म, मात्र कर्मकांड है, धर्म की वास्तविक शक्ति की परख केवल मात्र कर्म के माध्यम से ही हो सकती है। कर्म ही उस व्यवस्था का निर्माण कर सकता है जिससे धर्म और पाखंड के बीच अंतर किया जा सकता है। यदि धर्म को कर्म रूप में ढाला नहीं जा सकता तो वह पाखंड ही होगा। अगर धर्म मनुष्य को कर्मकांडी, रुढ़िवादी, नवीन

विरोधी, प्रतिगामी सोच का बनाता है तो ऐसे किसी धर्म की आवश्यकता हमें नहीं । धर्म तो सतत् है, सर्वकालिक है, सार्वदेशिक है और प्रत्येक प्राणियों के लिए उपलब्ध है ठीक उसी प्रकार जैसें सूर्य का प्रकाश सभी को मिलता है। प्रसिद्ध कथाकार डॉ राजेंद्र यादव ने 'अन्यथा' नामक पत्रिका द्वारा आयोजित '21 शताब्दी में धर्म की प्रासंगिकता' विषय पर चर्चा के दौरान कहा है "धर्म ईश्वर-मनुष्य के बीच का संवाद है और चूँकि यह संवाद है इसलिए यह व्यक्तिगत नहीं रह कर आगे तक भी जाता है और इसमें तरह-तरह के कर्मकांड, तरह-तरह के पाखंड और तरह-तरह के तौर-तरीके इस्तेमाल किए जाते हैं।....धर्म एक विचार है। वह आज अपना तत्व खो चुका है। अब सिर्फ उसका कर्मकांड रह गया है। उसमें सांप्रदायिकता रह गई है बिना विचार के कोई नहीं रह सकता, यह मेरा मानना है। कई लोग कहते हैं कि धर्म के बिना कोई रह नहीं सकता। यदि धर्म एक विचार है तो मैं कहता हूँ कि आज हमें एक ऐसे विचार की जरुरत हो जो ज्यादा वैज्ञानिक, ज्यादा रैशनल, ज्यादा भविष्यदर्शी हो, धर्म हमेशा आतीतदर्शी होता है। वह वर्तमान तक नहीं आता, वह पीछे देखता है। जो जितना पीछे है वह उतना ही महान है। वेदों तक में लिखा है कि जो इससे पहले थे, वे हमसे भी महान थे। यह सभी को अतीत में ही देखता है, यह अतीतवादी है। अतः आज हमें ऐसे धर्म की जरूरत है जो वर्तमान में जिए, आज के वातावरण के साथ तालमेल बिठा सके और वैज्ञानिक सोच को अपने में पिरों सकें।"[4]

धर्म एक ओर चिंतन प्रधान है तो दूसरी ओर कर्म प्रधान है। जहाँ यह एक ओर लौकिक जगत से संबंधित है, वहीं दूसरी ओर यह परलौकिक या आध्यात्मिक जगत से भी उतना ही जुड़ा हुआ है। धर्म जहाँ प्रकृत स्वभाव है, वहीं वह अर्जित गुण भी है। परंतु धर्म मुख्य रूप से वैयक्तिक ही होना चाहिए। जहाँ विवेक को स्वतंत्रता बाधित होती है। वहाँ कट्टरता धीरे-धीरे पैर पसारने लगती है और धर्म में विकृति लाती है।

संप्रदाय

धर्म के कई प्रमुख अंग है जिनमें से एक प्रमुख अंग है संप्रदाय। 'प्रमाणिक हिंदी कोश' में संप्रदाय को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि "संप्रदाय - 1. कोई विशेष धार्मिक मत 2. किसी मत के अनुयायियों की मंडली 3. किसी विषय या सिद्धांत के संबंध में एक ही विचार या मत रखने वाले लोगों का वर्ग, शाखा।"[5] अतः स्पष्ट है कि एक समान मत या विचारधारा में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों के समूह को सम्प्रदाय कहा जाता है।

संप्रदाय का अंग्रेजी रूपांतरण 'कम्युनिटी' है, विभिन्न ग्रंथों में संप्रदाय संबंधी विचार किए गए हैं। 'दि इनसाइक्लोपिडिया ऑफ रिलीजियन' में लिखा गया है "कम्युनिटी शब्द की उत्पत्ति वेबस्टर्स (websters) के

अनुसार लैटीन शब्द 'कम्यूनिटास' (communitas) से हुई है जिसका अर्थ है जैसे- 1. कुछ लोगों का समूह जो किसी एक संगठन या जिनके हित एक समान हो या एक स्थान पर रहने वाले लोग जिनके नियम-कानून समान हो। 2. वृहत स्तर पर ऐसा समाज जो एक राष्ट्र या राज्य के रूप में हो। 3. साझा संबंध या स्वात्मित्व और 4. एक समान सार्वजनिक चरित्र।"[6]

आम्बर्न और निम्कॉफ के अनुसार " संप्रदाय का तात्पर्य एक क्षेत्र विशेष के समाज में मौजूद अलग-अलग संगठनों से लिया जा सकता है।"[7] सी.एच कोले के अनुसार "दूसरी ओर संप्रदाय का अर्थ एक स्थायी सामाजिक समूह को कहा जा सकता है। जो एक क्षेत्र विशेष में निवास करता हो या स्थायी राजनीतिक प्रजातांत्रिक शक्ति से संपन्न हो और कुछ प्राथमिक संस्थाओं जैसे स्कूल और चर्च आदि की मदद कर रहा हो।"[8]

इन परिभाषाओं में संप्रदाय की दो विशेषताएँ उभर कर आती है-

1. स्थान विशेष के आधार पर भौगोलिक, भाषिक, वेशभूषा, खान-पान आदि।

2. समुदाय की भावुकता के आधार पर चिंतन, सोच, विचारधारा, सार्वजनिक क्रियाकलाप इत्यादि के आधार पर।

संप्रदाय और सांप्रदायिकता

संप्रदाय से ही जुड़ा एक शब्द है सांप्रदायिकता। संप्रदाय शब्द से जोड़ने का तात्पर्य यह नहीं कि सांप्रदायिकता से इसका सीधा संबंध है। किसी संप्रदाय का अनुयायी होने का तात्पर्य यह नहीं कि वह सांप्रदायिक है लेकिन हर सांप्रदायिक व्यक्ति किसी न किसी संप्रदाय में विश्वास अवश्य रखता है। प्रमाणिक शब्द कोश में सांप्रदायिकता को परिभाषित किया गया है- "सांप्रदायिकता- 1. सांप्रदायिक होने का भाव 2. केवल अपने संप्रदाय की श्रेष्ठता और हितों का विशेष ध्यान रखना और दूसरे संप्रदायों से द्वेष रखना।(कम्यूनलिज्म)"[9]

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि जब एक व्यक्ति केवल अपने संप्रदाय अथवा समुदाय के हित-अहित के संबंध में सोचता है एवं अपने संप्रदाय या समुदाय को श्रेष्ठ समझता है और दूसरे समुदाय से द्वेष रखता है तो इस स्थिति को सांप्रदायिकता के दायरे में रखा जाता है।

नरेंद्र मोहन इस संबंध में कहते हैं – "कोई मानव जब अपने आपको 'धर्म' और 'परमात्मा' का ज्ञाता मानता है और अपने विचार, अपनी आस्था और अपनी व्याख्या तथा मत को समाज पर थोपना चाहता है तो उससे ही संप्रदाय का जन्म होता है। यह स्थिति सामान्य व्यक्ति को, जो उसके अनुगामी है, दुराग्रही तक बना देती है। हठवादिता और अंधविश्वास का जन्म भी इसी मानसिकता के कारण होता है। यह अति प्रतिबध्दता ही समाज को रुढ़िवादी बनाती है और रूढ़ता तथा अतिवाद से सम्मोहित मन नए विचार, तर्क अथवा समाधान के लिए अपने दरवाजें बंद कर लेती हैं।"[10]

स्पष्ट है कि जब धर्म के अनुयायियों में श्रेष्ठता बोध का भाव आ जाता है एवं जब वे दुराग्रही बन जाते हैं तब सांप्रदायिकता जन्म लेती है क्योंकि वहाँ किसी बहस या नये विचारों का कोई स्थान नहीं रहता वहाँ हठवादिता एवं अंधविश्वास अपनी जगह बना लेते है।

स्वातंत्रोत्तर में एक प्रमुख समस्या के रूप में उभरी सांप्रदायिकता वर्तमान समय में भी अपना वर्चस्व बनाए हुए है। बल्कि आज वह और ज्यादा प्रबल और तीव्र हो गई है। इसमें राजसत्ता के लोभी राजनीतिज्ञों का बहुत बड़ा हाथ है जिन्होंन अपने स्वार्थ के लिए सांप्रदायिकता को और बढ़ावा दिया है। इतिहासकार असगर अली इंजीनियर सांप्रदायिकता दंगों के सामान्य एवं विशिष्ट कारणों के विश्लेषण के क्रम में सांप्रदायिकता को परिभाषित करते हुए कहते हैं – "सांप्रदायिकता का जन्म मुख्यतः अपने संप्रदाय के लोगों की धार्मिक भावनाओं के दोहन के माध्यम से राजनीतिक या आर्थिक शक्ति को नियंत्रित करने जैसे धर्म निरपेक्ष मुद्दों से हुआ। सांप्रदायिकता को आमतौर पर धार्मिक संगठन और मान्यताओं ने प्रोत्साहित नहीं किया, बल्कि राजनीतिक पार्टियों के धर्मनिरपेक्ष नेताओं ने किया।"[11] अली साहब की परिभाषा से दो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकल के आते हैं। पहला यह कि सांप्रदायिकता के पीछे धर्म ही एक मात्र कारण है यह धारणा गलत है। दूसरी बात यह कि धर्म का इस्तेमाल एक हथियार के रूप में किया जाता है क्योंकि धर्म में विशाल जन समुदाय को आकृष्ट करने की क्षमता होती है। आगे अली साहब कहते हैं " यह समझना जरुरी है कि सांप्रदायिकता आधुनिक काल की परिघटना है और इसका मूल कारण राजनीतिक सत्ता व सरकारी नौकरियों में हिस्सेदारी है, न कि धर्म। धर्म इसका मूल कारण नहीं है, लेकिन लोगों को एकत्रित करने की क्षमता के कारण धर्म का हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है।"[12] ध्यान देने वाली बात यह है कि राजनीतिज्ञ सांप्रदायिकतावादी मुद्दा उठाकर दंगें करवाते है मगर उनका मंशा सत्ता को अपनी मुठ्टी में ही करना होता है।

कथा सम्राट प्रेमचंद जी सांप्रदायिकता पर विचार करते है "हमारी समझ में नहीं आता कि यह कौन सी संस्कृति है, जिसकी रक्षा के लिए सांप्रदायिकता इतना जोर बांध रही है। वास्तव में संस्कृति की पुकार केवल ढ़ोंग है, निरा पाखंड है, और इसके जन्मदाता भी वही लोग है, जो सांप्रदायिकता की ओर घसीट लाने का केवल एक मंत्र है और कुछ नहीं। इन सस्थाओं को जनता के सुख-दुःख से कोई मतलब नहीं उनके पास ऐसा कोई सामाजिक या राजनैतिक कार्यक्रम नहीं है, जिसे राष्ट्र के सामने रख.....दोनों ही सांप्रदायिक संस्था मध्यवर्ग के धनिकों, जमींदारों, ओहदारों और पद लोलुपों की है। उनका कार्य अपने लिए ऐसे अवसर जनता से प्राप्त करना है, जिससे वह जनता पर शासन कर सके, जनता पर आर्थिक और व्यावसायिक प्रभुत्व जमा सके। साधारण जनता के सुख-दुख से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं।"[13]

प्रेमचंद ने सांप्रदायिकता को संस्कृति का पयार्य बनाकर ढोने वालों एवं संस्कृति के नाम पर सांप्रदायिक का प्रचार करने वालों का विरोध किया है। संस्कृति की दुहाई देने वालों का न तो साधारण जनता के साथ कुछ लेना-देना है और न ही राष्ट्र निर्माण के साथ उनकी प्रतिबद्धता। उनका एक मात्र उद्देश्य है इन मामलों को हवा देकर अपना राजनीतिक और आर्थिक उल्लू सीधा करना। विद्वानों के सांप्रदायिकता संबंधी विचारों से यह बात तो साफ हो जाती है कि सांप्रदायिकता केवल धर्म से ही उत्पन्न नहीं होता है। बल्कि राजनीतिक, आर्थिक और अन्य पहलू भी इसके उत्पन्न होने के कारण है। सांप्रदायिकता किसी एक कारण की वजह से नहीं बल्कि अनेक कारणों के मिल-जुलकर ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करती है जिससे सांप्रदायिकता फलती-फूलती है और हिंसा तक पहुँच जाती है।

जब दो अन्य धर्माविलम्बियों के बीच यह विचार उत्पन्न हो कि न केवल उनके धर्म अलग है उनकी पूजा पद्धितियाँ अलग है बल्कि प्राथमिकताएँ भी अलग है एवं उनके बीच किसी भी प्रकार की समानता नहीं है। जिसके कारण वे या तो अलग व्यवस्था की माँग करते हैं या फिर राष्ट्र की मुख्यधारा से स्वयं को अलग रखते हैं तब ऐसी विचारधारा धार्मिक सांप्रदायिकता की कोटि में रखा जा सकता है। धर्म के कारण ही सांप्रदायिकता फैलती है ऐसा सोचना गलत है परंतु सांप्रदायिकतावादी धर्म का उपयोग एक हथियार के रूप में करते हैं। वर्तमान समय में धर्म अपनी सहिष्णुता को त्याग कर इतना अधिक कट्टर बन चुका है कि मनुष्य की स्वतंत्र वैचारिकता को भी बाधित करता है। धर्म अपने अनुयायियों से अपने प्रति पूर्ण समर्पण की माँग करता है जहाँ किसी भी नवीन विचार का कोई स्थान नहीं होता है। जिसके कारण उस धर्म के अनुयायी में असहिष्णुता बढ़ जाती है। सांप्रदायिकतावादी तत्त्व अपने-अपने समूहों के सदस्यों की भावना को यह कह कर भड़काते हैं कि

उनके प्रतिद्वंदी संप्रदाय के लोगों ने अपने आर्थिक हितों के कारण इन लोगों को छला, संसाधनों पर एकाधिकार बनाये रखा एवं इनके संप्रदाय के लोगों को विकसित होने का मौका नहीं दिया। सांप्रदायिकतावादी दो संप्रदाय के बीच के अंतर के आधार पर खड़ा करते हैं। सत्य यह है कि दो संप्रदायों के बीच शत-प्रतिशत समानता हो ही नहीं सकती। प्रत्येक सांप्रदायिकतावादी अपने हितों को पूरा संप्रदाय का हित बता कर या तो अपना हित साधता है या फिर भविष्य में अपना हित साध सके इसकी चेष्टा करता है। अक्सर ऐसा आरोप अल्पसंख्यकों के सुमदाय के सांप्रदायिकतावादी बहुसंख्यक समुदाय के लोगों पर लगता है। वही बहुसंख्यक समुदाय से भयभीत रहता है कि अगर कहीं इनका विकास हो गया तो देश के संसाधनों पर ये हक़ जमा बैठेंगे जिसका परिणाम बहुसंख्यक समुदाय के लोगों को उठाना पड़ेगा। दोनों ही संप्रदाय के सांप्रदायिकतावादी ऐसे तर्कों को गढ़ कर लोगों को भड़काते हैं।

वर्तमान समय की परिस्थितियों का आकलन करे तो यह प्रमाणित हो जाता है कि उत्तरोतर बढ़ती हुई सांप्रदायिकता के मूल में राजनीतिक कारण भी मौजूद रहे हैं। विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ अपने हितों को साधने के लिए लोगों को भड़काती है। कई पार्टी स्वयं को अल्पसंख्यकों का पार्टी घोषित करती है वही दूसरे पार्टी स्वयं को बहुसंख्यक की पार्टी के रूप में घोषित करती है। ऐसी मानसिकता ही वह उपजाऊ जमीन है जिस पर सांप्रदायिक तत्व अपनी फसल बोते हैं एवं काटते हैं। धर्म और संप्रदाय इन नेताओं के लिए वह साधन है जिसका उपयोग ये हथियार के रूप में करते हैं। अलग-अलग धर्म, भाषा, रीति-रिवाज, संस्कृति राजनेताओं के लिए औजार हैं, जिसका प्रयोग ये सांप्रदायिकतावादी समाज को विभाजित करने के लिए करते हैं।

आज के समय की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि राजनीति ने धर्म से अपना नाता बना रखा है, लेकिन गौर से देखें तो राजनीति और धर्म का खेल काफी पुराना है। सांप्रदायिकता फैलाने वाले हमेशा यह कहते हैं कि अमुक धर्म में विश्वास रखने वाले हमारे शत्रु हैं लेकिन क्या एक ही धर्म के अनुयायियों में वर्चस्व के लिए संघर्ष नहीं होता ? यदि भारत के मध्यकालीन इतिहास की ओर ध्यान दें, तो मध्यकाल से ऐसे कई उदाहरण निकाल कर प्रस्तुत किये जा सकते हैं। उदाहरणस्वरूप हुमायूँ और शेरशाह के बीच हुए युद्धों को लिया जा सकता है। इसे इस रूप में देखा जाना चाहिए। दोनों इस्लाम के अनुयायी थे परंतु दोनों के बीच सत्ता पर वर्चस्व की होड़ लगी थी जिसे धर्म के साथ किसी भी रूप में जोड़ कर देखना गलत है।

आधुनिक भारत के इतिहास से भी उदाहरण के तौर पर कई घटनाओं को ले सकते हैं जिनमें से एक बड़ी घटना है भारत और पकिस्तान का विभाजन। यह विभाजन सर्वप्रथम भाषा के आधार पर खड़ा किया गया

और बाद में धर्म के आधार पर इसे विभाजित किया गया। औपनिवेशिक सत्ता ने अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिए भारत के दो महान धर्मों के अनुयायियों के बीच धर्म को मुद्दा बनाकर वैमनस्य खड़ा किया। आगे चलकर इस मनमुटाव ने विशाल आकार धारण कर लिया। अंततः भारत को इसका खामियाजा विभाजन के रूप में भुगतना पड़ा। यह विभाजन धर्म को केंद्र में रखकर किया गया था, परंतु इसके पीछे मंशा राजनीतिक वर्चस्व एवं शक्ति हासिल करने की थी। आज के समय में भी विभिन्न राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर की पार्टियाँ अपने राजनीतिक वर्चस्व को कायम करने के लिए धर्म का सहारा लेती है, क्योंकि धर्म का पैठ समाज में सबसे गहरी और प्रभावशाली है। कोई अल्पसंख्यकों का शुभचिंतक है, तो कोई बहुसंख्यकों का हिमायती। यहाँ तक कि वे पार्टियाँ जो किसी धर्म के साथ नहीं है वे भी किसी धर्म की आलोचना करने से बचना चाहते हैं, क्योंकि ऐसा करने से किसी ख़ास धार्मिक भावना को चोट पहुँच सकती है और जिसका परिणाम उस पार्टी को सत्ता खोकर चुकाना पड़ सकता है।

पूरे विश्व की अलग-अलग संस्कृतियाँ है। सांस्कृतिक विविधता भी कई बार सांप्रदायिकता का रूप ले लेती है। संस्कृति के तहत भाषा, वर्ग, जाति जैसे चीजें आती है। स्वयं की संस्कृति को श्रेष्ठ समझना एवं दूसरों की संस्कृति को हेय दृष्टि से देखने के कारण भी सांप्रदायिकता जन्म लेती है। भारत जैसे बहु सांस्कृतिक देश में भी सांप्रदायिकता के जन्म लेने का कारण यही है।

अगर हम वर्तमान में देखे तो धर्म अपना मूल मर्म खो चुका है। एक समय था, जब धर्म की स्थापना समाज में सुव्यवस्था कायम करने के लिए की गई थी। एक समय था जब धार्मिक चिंतन हुआ करते थे, लेकिन आज के समय में ऐसे किसी चिंतन की गुंजाइश नहीं बची है। मानव मात्र का सम्मान करना, हर धर्म का आदर करना जैसी बातें कमोबेश हर धर्म में कही गयी है, लेकिन व्यवहार के स्तर पर ऐसा देखने को नहीं मिलता। धर्म ने संकीर्ण रास्ता अपनाते हुए संप्रदायों को जन्म दिया है जिसका परिणाम यह निकला कि दिनोंदिन असहिष्णुता बढ़ती गई। स्वयं को श्रेष्ठ समझना और दूसरों को हेय दृष्टि से देखना जैसी बातें समाज में फैलने लगी। अपनी तुच्छ लालसा को पूरा करने के क्रम में सांप्रदायिक विचारधारा का प्रसार करने वाले बड़ी चीजों की बलि चढ़ाने में परहेज नहीं करते। यह हमारे समय की सबसे बड़ी त्रासदी है। अब तक सांप्रदायिकता की समस्या के मूल में धर्म को ही माना जाता था, लेकिन अब इसका विस्तार जाति, उपजाति, भाषा, संस्कृति, क्षेत्रीयता, भौगोलिकता आदि के रूप में भी तेजी से हो रहा है। सर्वप्रथम सांप्रदायिकता की समस्या धार्मिक कारणों से ही पनपी थी। दरअसल धर्म तो एक जरिया था जिसके माध्यम से स्वार्थी लोगों ने अपने स्वार्थों की

सिद्धि की । कालान्तर में सांप्रदायिकता की समस्या ने दूसरे रूप भी धारण किये । आज के समाज में सांप्रदायिकता की विभिन्न कोटियाँ मिलकर सांप्रदायिकता की विचारधारा को और भी पुष्ट करती है। समाज में विभाजन के कई कारण मौजूद है, परन्तु इन कई कारणों से विभाजन हो ही जाए यह आवश्यक नहीं है। ऐसा भी हो सकता है कि किसी विशेष क्षेत्र के निवासियों के बीच धर्म, जाति, भाषा इत्यादि के आधार पर आपसी मनमुटाव हो, लेकिन अपने क्षेत्र-विशेष के विकास के मुद्दे पर उनमें एकता हो। ऐसे में अपने धर्म, जाति, भाषा, वर्ण आदि को भुलाकर अलग राज्य की माँग तथा इसके लिए मरने-मारने पर भी उतारू हो सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि सांप्रदायिकता एक विचारधारा है। सांप्रदायिक विचारधारा उन लोगों को अपने चंगुल में तो फँसाती ही है, जो उस विचारधारा में विश्वास करते हैं लेकिन उन लोगों को भी उस विचारधारा में विश्वास रखने के लिए भी बाध्य करती है जो इस विभाजनकारी मानसिकता के खिलाफ है । इसके कारण जहाँ एक जीविकोपार्जन से जुड़ा है। वही दूसरी ओर जीवन और मृत्यु का भय भी इसका मुख्य कारण है।

2.ख. भारतीय सांप्रदायिकता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

प्राचीन काल से ही भारत में अनेक जातियाँ आती रही है तथा राज करती रही है। ऐसे में उनके अंदर धर्म को लेकर कुछ न कुछ पक्षपात की भावना रही ही होगी । दिनकर लिखते हैं – "अगर ईसाइयों और मुसलमानों को छोड़ दे, तब भी इस देश में एक के बाद एक ग्यारह जातियों के आगमन और समागम का प्रमाण मिलता है।"[14] प्राचीन काल में आर्यों तथा द्रविड़ों के बीच विवाह संबंध स्थापित होने के कारण द्रविड़ की परंपरा तथा रीति-रिवाज आर्यों की परंपरा तथा रीति-रिवाज के साथ घुल-मिल गये। इस नए समाज को 'हिंदू' के नाम से अभिहित किया गया। यह संबंध इतना प्रगाढ़ हो गया कि सारे देश में आर्य और द्रविड़ एक दिखाई देने लगे, उनका साहित्य और संस्कृति, रस्म-रिवाज, इतिहास-पुराण सब कुछ एक हो गया। आर्य बहुत मात्रा में द्रविड़ और द्रविड़ बहुत मात्रा में आर्य हो गए और इन्हीं दोनों जातियों ने मिलकर उस संस्कृति, जाति या समाज का निर्माण किया, जिसे हम हिंदू समाज कहते हैं।

किसी भी प्रकार का विद्रोह या क्रांति अचानक शुरू नहीं होती, उसकी नींव वर्षों पहले पड़ चुकी होती है। वैदिक धर्म के विरुद्ध बौद्ध तथा जैन धर्म का विरोधी रूप खड़ा होना इस बात का प्रमाण है। वैदिक धर्म में कर्मकांड का आधिक्य हो गया था, ब्राह्मण वर्ग का समाज में हस्तक्षेप अधिक बढ़ गया था, जिसके कारण अन्य जातियों का स्थान समाज में कुछ कम हो गया था । लोक तथा परलोक ही विचार के केंद्र में आ गया था,

सामाजिक प्रगति अवरुद्ध होने लगी थी, जिससे लोगों के अंदर द्वेष पैदा हुआ और धीरे-धीरे हिंसा का रूप लिया ।

विश्व में उत्पन्न होने वाली हिंसा का मुख्य कारण विभिन्न प्रकार के संप्रदायों का जन्म होना है । एक संप्रदाय वाले अपने से अलग संप्रदाय को बिना किसी कारण या उचित तर्क के गलत मानते हैं । सांप्रदायिकता का आरंभ मुख्य रूप से मुग़ल काल से माना जाएगा लेकिन इसकी पृष्ठभूमि वैदिक युग से ही जान पड़ती है । वैदिक काल में कर्मकांड के विरोध में अनेक धर्मों का उदय हुआ जिसके बाद अनेक संप्रदाय का विकास हुआ । बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव, शाक्त आदि संप्रदाय इसी की परिणति है । छठी शताब्दी ई.पू. का भारत दार्शनिक, धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक उथल-पुथल से भरा हुआ था । वैचारिक रूप से सभी धर्म भिन्न-भिन्न रूप में थे । कुछ धर्मों की भौतिकवादिता के कारण जैन एवं बौद्ध धर्म का उदय हुआ । तत्कालीन जनता व्यावहारिक धर्म चाहती थी तथा उसकी इच्छा बौद्ध धर्म के द्वारा पूरी हुई । बौद्ध धर्म ने वैदिक धर्म की मूल बातों का विरोध नहीं किया बल्कि उसने वैदिक धर्म के कुरीतियों पर प्रहार किया । बाद में इसमें भी विकृति आयी और बौद्ध दर्शन दो भागों में विभक्त हो गया -हीनयान और महायान । हीनयान बौद्ध मत के दो दार्शनिक संप्रदाय हुए – 1. वैभाषिक 2. सौत्रांतिक । इसी प्रकार महायान बौद्ध मत के भी दो दार्शनिक संप्रदाय हुए – 1. विज्ञानवाद 2. शून्यवाद । इस प्रकार से संप्रदाय का विभाजन जैन धर्म में देखने को मिलता है । कालांतर में विचारों में भिन्नता होने के कारण जैन धर्म दो अलग-अलग संप्रदाय में बंट गया – दिगम्बर और श्वेताम्बर । दिगम्बर साधु वस्त्र नहीं पहनते थे, जैन धर्म के सिद्धांतों का पालन कठोरता से करते थे, तथा स्त्रियों के लिए मोक्ष का प्रावधान न होना स्वीकार करते थे । जबकि श्वेताम्बर संप्रदाय का मानना था कि स्त्रियाँ भी मोक्ष प्राप्त कर सकती है, तथा वे श्वेत वस्त्र धारण करते थे ।

वैदिक धर्म के बाद का समय धार्मिक असंमजस का समय था, वैदिक काल से अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी, पूजा विधि भिन्न-भिन्न प्रकार की थी, अंधविश्वास का बोल-बाला हो चला था । हिंदू धर्म में मुख्य रूप से विष्णु और शिव की पूजा की जाने लगी थी और वैष्णव और शैव संप्रदाय का विकास हुआ । आगे चलकर वैष्णव संप्रदाय की भी अनेक शाखाएँ निकली जिनमें श्री संप्रदाय, ब्रह्म संप्रदाय, निम्बार्क संप्रदाय और रूद्र संप्रदाय प्रमुख है । धर्म के विकास के कारण उसमें विकृतियां आना शुरू हो गयी, जिससे विभिन्न संप्रदाय का निर्माण हुआ । भारत में सांप्रदायिक विचारधारा का प्रादुर्भाव प्रमुख रूप से मध्यकाल से मिलता है । भारत में संप्रदायिकता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य निम्नलिखित चरणों में विवेचित किया जा सकता है ।

2.ख.i. मध्यकालीन भारत और सांप्रदायिकता

प्रत्येक धर्म की उत्पत्ति तथा विकास के पीछे सामाजिक कारण कार्य करता है तथा महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए धर्म की गलत व्याख्या कर उनका गलत प्रयोग किया जाता है। किसी भी धर्म की शिक्षा मानव विरोधी नहीं होती है। भारत में इस्लाम धर्म का आगमन एक महत्त्वपूर्ण घटना है। जिसने न केवल भारतीय इतिहास को प्रभावित किया बल्कि उसका प्रभाव आज भी मौजूद है। इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब (570-632 ई.) थे। मुहम्मद साहब मानते थे कि ईश्वर एक है और सभी को उसकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। अल्लाह के पैगम्बर होने की हैसियत से उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ था, उसे उन्होंने 'कुरान' में संग्रहित किया। मुहम्मद साहब के मदीना जाने के पश्चात् इनके ज्ञान का प्रचार तथा प्रसार हुआ और 'इस्लाम' एक स्वतंत्र धर्म के रूप में सबके सामने आया। इस्लाम धर्म में 'जिहाद'(धर्मयुद्ध) को उचित ठहराया गया है। गैर मुसलमान को मुसलमान बनाना धर्म के लिए उचित माना गया और 'जिहाद' मुसलमान संप्रदाय में इबादत माना गया।

भारतीय संस्कृति प्रारम्भ से ही सहिष्णु और उदार रही है, वह हर नये तत्व को अपने भीतर समेटने में सक्षम रही है। जैसे- तुर्कों के आक्रमण के पूर्व भारत में जातियों ने प्रवेश किया और भारतीय संस्कृति की सर्वग्राहिणी शक्ति ने अनेक विदेशी शक्तियों को आत्मसात भी किया, लेकिन जब तुर्कों का आगमन हुआ तो उन्होंने इस्लामी संस्कृति को भारतीय संस्कृति पर हावी करने का भरपूर प्रयत्न किया। भारत में अपना साम्रज्य-विस्तार करने के बाद तुर्कों या मुगलों ने जबरन हिंदू को मुसलमान बनाने का प्रयास किया। यह तो स्पष्ट है कि वे न केवल लूटपाट या अपना राज्य स्थापित करना चाहते थे, बल्कि यहाँ अपने धर्म और संस्कृति को स्थापित करना चाहते थे। इस तरह भारत में दो अलग समाज स्थापित हो गये, जिनके धर्म और संस्कृति भिन्न-भिन्न थे। लेकिन दोनों धर्मों में आपसी सद्भाव था। इस बात के उदाहरण हमारे इतिहास में मौजूद है कि धर्म तथा संप्रदाय की संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठकर सर्वधर्म समभाव के लिए यहाँ सोचा-विचारा गया।

भारतीय इतिहास में मध्यकाल के आगमन के पश्चात् उसकी स्थिति में गुणात्मक बदलाव दिखाई पड़ता है। शिवकुमार मिश्र के अनुसार "पहले सांप्रदायिक तनाव का संदर्भ वैदिक-अवैदिक जातियों, धर्म तथा उनसे संबद्ध लोग थे, ब्राह्मण, बौद्ध, शैव, वैष्णव, शाक्त आदि थे। मध्यकाल में उसका संदर्भ हिंदू और मुसलमान बनते हैं। इस्लाम की नई शक्ति का अभ्युदय तथा उसका भारत आगमन पहले से विद्यमान नाना धर्म, मतों, संप्रदायों को तथा जातियों को सकते में डाल देता है और उन्हें इस्लाम के प्रभुत्व के खतरे के समक्ष संगठित करने को

विवश करता है।"[15] किंतु मिश्र जी की यह मान्यता है कि, इस्लाम के प्रभुत्व के खतरे के कारण सांप्रदायिकता का संदर्भ परिवर्तित हो गया, यह नितांत एकांगी जान पड़ता है, क्योंकि विविध धर्मों के मध्य संघर्ष प्राचीन काल से होते चले आये हैं, पर उन्होंने कभी भी सांप्रदायिकता का रूप ग्रहण नहीं किया।

सांप्रदायिकता की उत्पत्ति इतिहास के सांप्रदायिक इस्तेमाल से मानी जा सकती है। भारत में इतिहास लेखन का कार्य पाश्चात्य विद्वानों ने शुरु किया। उन्होंने भारत के इतिहास लेखन को न केवल काफी तोड़-मरोड़ कर लिखा, बल्कि सर्वप्रथम सांप्रदायिक आधार पर भारत के इतिहास का काल-विभाजन भी किया। इस तरह इतिहास की सांप्रदायिक व्याख्या को बल मिला, जिसके पीछे अंग्रेजों की साम्राज्यवादी और संप्रदायवादी दृष्टि काम कर रही थी। प्रो. बिपिन चन्द्र लिखते हैं "जिन बातों को प्रायः सांप्रदायिकता के अंतर्निहित कारण माना जाता है, इसके इतिहास लेखन में जो सांप्रदायिक धारणा दिखाई देती है वह ऐतिहासिक प्रक्रिया को उपनिवेशवाद के दृष्टिकोण से देखने का ही पारिणाम है।"[16]

वर्तमान सांप्रदायिक शक्तियाँ अपने मध्यकाल का हवाला देती है और अपनी जड़े मध्यकाल में तलाशती है। जैसे, बाबरी मस्जिद पर इस आधार पर दावा किया गया कि विदेशी आक्रान्ता बाबर ने उस स्थान पर स्थित रामजन्मभूमि मंदिर को गिराकर उक्त मस्जिद का निर्माण करवाया। सांप्रदायिक शक्तियाँ यह मानती है कि मुस्लिम शासन का युग हिन्दुओं पर अत्याचार और अपमान का युग था। अतः आज जब हिन्दुओं के पास राजनीतिक अधिकार है तो उसे बदला लेना चाहिए। जबकि वास्तविकता यह है कि लगभग सभी शासक चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, अपने राजनीतिक हितों से प्रेरित होते हैं, उनके धार्मिक विश्वास या तो कोई महत्त्व नहीं रखती या फिर गौण होते हैं। असगर अली इंजीनियर की मान्यता है कि 'सांप्रदायिक रुझान वाले इतिहासकारों और निहित स्वार्थों वाले राजनेताओं ने हमारे मध्यकालीन इतिहास को सांप्रदायिक बना दिया है। जिसके विनाशकारी परिणाम हुए हैं। इस तरह इतिहास ने हमारे अपने समय में (आधुनिक युग) हिंदू-मुसलमान रिश्तों को बुरी तरह प्रभावित किया है।"[17]

मध्यकालीन शासकों के बीच संघर्ष सत्ता को लेकर हुए जिनमें हिंदू या मुसलमान जैसा कुछ नहीं था। इस सत्ता संघर्ष में केवल हिंदू और मुस्लिम शासक शामिल नहीं थे बल्कि हिंदू-हिंदू के विरुद्ध और मुस्लिम के विरुद्ध मुस्लिम शामिल थे। उदाहरणार्थ, जब बाबर ने इब्राहिम लोदी पर हमला किया तो राणा सांगा बाबर के साथ था और जब अकबर राणा प्रताप के साथ लड़ा तो राजा मानसिंह अकबर की ओर था और हाकिम खां सूरी राणा प्रताप की ओर से। इसी तरह जब औरंगजेब और शिवाजी में युद्ध हुआ तो मिर्जा राजा जयसिंह

औरंगजेब की सेना का सेनापति था और शिवाजी के तोपखाने का मुखिया एक पठान था। दोनों समुदाय के सांप्रदायिकवादी इतिहास के इन तथ्यों को अनदेखा करते हैं।

मुग़ल सम्राट अकबर और राणा प्रताप के बीच का संघर्ष राजपूतों और मुगलों का संघर्ष न होकर मेवाड़ और केंद्रीय सत्ता के बीच का संघर्ष था। इस विषय में एस.एम. चाँद कहते हैं "यथार्थ में, यह कोई हिंदू-मुसलमान का सवाल नहीं था, न यह हिंदू और इस्लाम धर्मों का संघर्ष था। यह तो सीधा-सादा मुग़ल साम्राज्य और मेवाड़ राज्य के बीच का संघर्ष था। यदि ऐसा न होता तो राणा अपने एक सैन्य दल का नेतृत्व हाकिम खां सूरी को न सौपतें, न बादशाह अकबर अपनी सारी सेना का नेतृत्व राजा मानसिंह को देता। यदि मेवाड़ का शासक कोई मुसलमान होता तो भी सम्राट अकबर यही करता। इसका कोई भी प्रमाण नहीं मिलता कि मेवाड़ के हमले के पीछे राजनैतिक के अलावा कोई और उद्देश्य था।"[18] मध्यकाल में हिंदू और मुसलमान शासकों के बीच लड़ाई का कारण धार्मिक विद्वेष नहीं थी वरन शासन क्षेत्र का विस्तार था। अतः ये लड़ाइयाँ विशुद्ध रूप से राजनीति से प्रेरित होती थी।

मध्यकालीन इतिहास से ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनसे यह ऐतिहासिक सच्चाई सामने आ जाती है कि भारत में कभी भी न तो शुद्ध हिंदू राज्य ही स्थापित करने का योजनाबद्ध प्रयत्न किया गया और न ही शुद्ध मुस्लिम राज्य का ही। यह सही है कि भारत में मुसलमानों के आगमन के पश्चात भारतीय समाज स्पष्ट रूप से दो भागों में विभाजित हो गया था – हिंदू समाज और मुस्लिम समाज। लेकिन दोनों धर्मों में आपसी सद्भाव था, क्योंकि दोनों संस्कृतियाँ लम्बे समय तक एक दूसरे से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकीं। जहाँ भारतीय संस्कृति ने कुछ बातें इस्लाम संस्कृति से ग्रहण की तो वहीं इस्लामिक संस्कृति ने भी अनेक बातें भारतीय संस्कृति से ग्रहण की और इस समन्वय के फलस्वरूप एक नवीन मिली-जुली संस्कृति का उदय हुआ।

अतः सांप्रदायिकता के जन्म के लिए मध्यकाल को जिम्मेदार मानना गलत होगा। मध्यकाल के लोग सांप्रदायिक की अपेक्षा धार्मिक अधिक थे। एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति सांप्रदायिक नहीं हो सकता और एक सांप्रदायिक व्यक्ति धार्मिक नहीं हो सकता। सांप्रदायिकता की उत्पत्ति के लिए केवल मध्यकाल को जिम्मेदार मानना एकपक्षीय दृष्टि होगी। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सांप्रदायिकता मध्यकाल से अपना खुराक अवश्य लेती रही, लेकिन इसे मध्यकाल की परिघटना नहीं कहा जा सकता।

2.ख.ii. अंग्रेजी शासन और सांप्रदायिकता

मध्यकालीन पवित्र गंगा-यमुना हिंदू-मुस्लिम संस्कृति अंग्रेजों के आगमन के पश्चात विखंडित होने लगी। यह समय ऐसा है जब हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सीधे टकराव की स्थिति देखने को मिलता है। 19वीं शताब्दी में सांप्रदायिक संघर्षों का जो रूप प्रकट हुआ मूलतः ब्रिटीश साम्राज्यवाद की देन है। अंग्रेज व्यापार के उद्देश्य से भारत आये थे। उनका उद्देश्य यहाँ रहना नहीं बल्कि यहाँ की लुट से अपना औद्योगिक विकास करना था। इसलिए उन्होंने अपनी जरुरत के मुताबिक भारतीय सामंतवाद को उलट कर यूरोपीय सामंतवाद का जामा पहनाया।

अंग्रेजों के भारत आगमन के बाद से भारत की राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने लगा था। प्लासी युद्ध के पश्चात सन् 1857 ई. में ब्रिटेन ने बंगाल पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। अपनी सामाजिक स्थिति को मजबूत करने के लिए ब्रिटिश सरकार नयी-नयी योजनाओं को बनाने में जुट गई, इनकी ये योजनाएँ पूर्णतः इनके लाभ पर आधारित होती थी। 1793 ई. में ग्रांट ने, भारत में मिशनरी काम जारी रखने तथा अंग्रेजी शिक्षा देने वाली संस्थाओं को आरंभ करने के लिए उनसे संबंधित धाराओं को चार्टर बिल से जोड़ने के लिए निर्देशकों को प्रेरित किया। ग्रांट को इस कार्य में सफलता भी प्राप्त हुई। 1793 ई. में ब्रिटिश संसद में बहस के बाद इन धाराओं को बिल से हटा दिया गया।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने यहाँ से कच्चा माल सस्ते दामों में खरीद कर इंग्लैंड में तैयार माल को यहाँ पर महँगी कीमत पर बेचना शुरू किया। अन्य यूरोपीय देश जो भारत में अपना व्यापार करना चाहते थे, उनसे व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा से सुरक्षा के लिए कंपनी ने अपनी सैन्य शक्ति को भी मजबूत कर, यहाँ की राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाकर अपना राज्य स्थापित किया। इस तरह ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना और विकास के साथ ही भारत का संपूर्ण परिदृश्य ही बदलता चला गया।

अब ब्रिटिश शासन का मुख्य उद्देश्य भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों का ख़त्म कर भारतीय जनता को ब्रिटेन पर निर्भर रहने को विवश करना हो गया। देशी उद्योगों की बर्बादी और रोजगार के अन्य साधनों के अभाव में लाखों की संख्या में कारीगर खेती की ओर तेजी से मुड़े। फलस्वरूप कृषि पर आबादी का बोझ बढ़ गया। ब्रिटिश सरकार का यह शोषक रूप भारतीय जनता के लिए असह्य हो गया। इस शोषण के विरोध में भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी और वह थी सन् 1857 की क्रांति। इस महाविप्लव में हिंदू-

मुसलमान सहित सभी रियासती राजा, नवाब, ताल्लुकेदार, किसान, मजदूर, सिपाही, कारीगर, सेठ, साहूकार आदि वर्गों और धर्मों के लोगों ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया। इस विषय में बिपिन चंद्र कहते हैं कि "1857 के विद्रोह में हिंदुओं और मुसलमानों के साथ-साथ कंधे से कंधे मिलाकर उस एक मात्र विदेशी सरकार से युद्ध किया जिसके हाथों सारा भारत तकलीफ उठा रहा था। हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों ने अपना क्रोध उसी विदेशी शासन पर उतारा।"[19]

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में जब विविध वर्गों और धर्मों के लोग मिलकर लड़े तो अंग्रेजों को इस बात का आभास हो गया कि अगर इस देश में एकता रही तो यहाँ ज्यादा दिन ब्रिटिश हुकूमत नहीं टिक सकती। अतः उन्होंने 'फुट डालो और शासन करो' की नीति अपनाई जिसके माध्यम से उन्होंने जानबूझकर भारतीय समाज में विभाजन उत्पन्न किया, सांप्रदायिक विद्वेष पैदा किया क्योंकि उन्हें पता था कि "एक संगठित जनता को बहुत दिनों तक गुलामी की जंजीरों में बांधे नहीं रखा जा सकता। अतः दमन और नियंत्रण के सख्त क़दमों के अतिरिक्त, अंग्रेजों ने कोशिश की कि अगर संभव हो तो राष्ट्रीयता के ज्वार को पूरे तौर पर सुखा दिया जाये। उन्होंने फैसला किया कि जनता को असंगठित रखने, उन्हें आपस में झगड़ने और प्रतिस्पर्द्धा करते रहने के लिए वे सब कुछ करेंगे जो कर सकते थे। विभिन्न धर्मों के नाम पर लोगों को बाँटने और भारतीय राजनीति में सांप्रदायिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देने का निर्णय किया।"[20]

सन् 1905 में बंगाल-विभाजन इसी नीति का परिणाम था। जिसका उद्देश्य परिवर्तन चाहने वाले बंगाली राष्ट्रवादियों पर नियंत्रण करना था। 16 अक्टूबर को जिस दिन बंगाल का विभाजन हुआ वह दिन राष्ट्रीय शोक दिन घोषित हुआ तथा हड़ताल हुई। लोगों ने उपवास किया। लोगों ने वन्दे-मातरम् के नारे लगाते हुए गीत गाये। बंधुत्व के प्रतीक रूप में हिंदुओं और मुसलमानों ने एक दूसरे की कलाइयों पर राखी बाँधी। इस समय तक हिंदू और मुसलमान में एकता की भावना विद्यमान थी। सांप्रदायिकता की भावना तो न के बराबर थी, जैसा कि रजनी पाम दत्त लिखते हैं "अंग्रेजी का शासन कायम होने से पहले भारत में उस तरह के हिंदू-मुस्लिम झगड़े कभी नहीं दिखाई दिये जैसे झगड़े ब्रिटिश शासन-काल में और खास तौर से इसके अंतिम दिनों में देखने को मिले। किसी एक रियासत का किसी दूसरी रियासत का राजा हिंदू है और दूसरी रियासत का मुसलमान लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ कि इन संघर्षों ने हिंदू-मुस्लिम संघर्ष का रूप लिया हो। मुसलमान शासक हिन्दुओं को बिना किसी हिचकिचाहट के अपने यहाँ ऊँचे से ऊँचे पदों पर नियुक्त करते थे और हिंदू शासक भी मुसलमानों के प्रति इसी तरह का रवैया अपनाते थे।"[21]

ब्रिटिश सरकार ने भारत में सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने हेतु कई तरीके अपनाये जैसे हिंदुओं, मुसलमानों और सिखों को लगातार ऐसे अलग-अलग समुदायों का दर्जा दिया, जिनकी सामाजिक, राजनीतिक पहचान में कुछ भी साझा नहीं था। बताया गया कि भारत न तो एक राष्ट्र है न राष्ट्र के रूप में उसका विकास हो रहा है और न वह विभिन्न जातियों का समुच्चय है। उसका गठन तो धर्म पर आधारित ऐसे समुदायों से हुआ है, जिनके हित आपस में टकराते हैं। सांप्रदायिकतावादियों को सरकारी संरक्षण और रियायतें दी गई। सांप्रदायिक पत्रों, व्यक्तिओं और आंदोलनों के प्रति असाधारण सहिष्णुता दिखलाई गई। सांप्रदायिक माँगों को तुरंत स्वीकार कर लिया जाता था और इस तरह सांप्रदायिक संगठनों को राजनीतिक मजबूती दी जाती थी तथा लोगों पर उनकी पकड़ बनी रहती थी। इसका उदाहरण सन् 1885 से सन् 1905 तक कांग्रेस अपनी एक भी मांग मंजूर नहीं करा पाई, जबकि मुस्लिम लीग ने 1906 ई. में वाइसराय के समक्ष अपनी सांप्रदायिक माँगें रखी थी और उन्हें मान लिया गया। इसी तरह 1932 ई. में अंग्रेजों ने, जिसे 'कम्युनल अवार्ड' कहा जाता है, उसके माध्यम से उसकी सभी सांप्रदायिक माँग मंजूर कर ली। ब्रिटिश सरकार सांप्रदायिक संगठनों और नेताओं को उनके समुदाय के प्रामाणिक प्रवक्ता के रूप में स्वीकार कर लेती थी। सांप्रदायिक आधार पर बनाये गये चुनाव क्षेत्रों ने भी सांप्रदायिक राजनीति के विकास में महत्त्वपूर्ण औजार का काम किया।

भारतीय मध्यकालीन इतिहास को काफी तोड़-मरोड़ कर लिखा गया साथ ही उसका जातीय आधार पर काल-विभाजन किया गया। इस संदर्भ में रोमिला थापर का यह कथन महत्त्वपूर्ण है कि "औपनिवेशिक दौर में भारतीय समाज का जो काल-विभाजन पेश किया गया उसने दो राष्ट्र के सिद्धांत को बढ़ावा दिया। इसमें हिन्दुओं और मुसलमानों को दो ऐसे समुदाय के रूप में पेश किया जिनका रुख एक-दूसरे के प्रति आम तौर पर शत्रुता रहता आया है। मुस्लिम सांप्रदायिकता को औपनिवेशिक सत्ता ने न सिर्फ बढ़ावा दिया, बल्कि उसका इस्तेमाल भी किया।"[22] अंग्रेजों ने दोनों संप्रदायों में मतभेद पैदा करने के लिए अब मुसलमानों को विशेष आधिकार एवं रियायतें देना प्रारंभ कर दिया। ब्रिटिश सरकार के समर्थन से ही ढाका में दिसंबर, सन् 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। यह भारतीय मुसलमानों का प्रथम सांप्रदायिक राजनीतिक संगठन था। मुस्लिम लीग की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्य से की गई –

1. मुसलमानों की माँगों को ब्रिटिश सरकार के समाने रखना और उनके हितों की रक्षा करना।

2. भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश राज्य के प्रति राज-भक्ति उत्पन्न करना और यदि ब्रिटिश सरकार की नीति के बारे में उनमें कोई गलत धारणा हो, तो उसे दूर करना।

3. उपर्युक्त उद्देश्यों के विरुद्ध न जाते हुए मुसलमानों एवं अन्य जातियों में यथा संभव मेल-मिलाप पैदा करना।

मुस्लिम लीग का चरित्र सरकारपरस्त, सांप्रदायिक और अनुदारवादी था। उसका संघर्ष औपनिवेशिक सत्ता से नहीं, बल्कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और हिंदूओं से था। इसी के समानांतर हिंदू सांप्रदायिकता का जन्म हुआ। हिंदू साम्प्रदायिकतावादी शक्तियों ने भारतीय इतिहास की औपनिवेशिक व्याख्या को स्वीकार कर मध्ययुगीन मुस्लिम शासन के अत्याचारों और मुसलमानों के हिन्दुओं पर किये गये जुल्मों का प्रचार करना शुरू कर दिया। बिपिन चन्द्र का कथन है कि "संयुक्त प्रांत और बिहार में उन्होंने हिंदी को सांप्रदायिक रंग दे डाला और कहना शुरु किया कि हिंदी हिन्दुओं की भाषा और उर्दू मुसलमानों की। सन् 1890 के दशक के पूर्वार्द्ध में पूरे भारत में गौ-वध विरोधी प्रचार किया जाने लगा और मजे की बात यह कि सारा प्रचार मुसलमानों के खिलाफ था।"[23] हिंदू सांप्रदायिक शक्तियों ने मुसलमानों की देखा-देखी विधायिकाओं और सरकारी नौकरियों में 'हिंदू' सीटों की मांग की। 1923 ई. में हिंदू महासभा का जन्म हुआ। उसने खुले आम मुस्लिम विरोधी भावनाएँ उभारना शुरू कर दिया। हिंदू महासभा का घोषित उद्देश्य हिंदू जाति की रक्षा और हिंदू राष्ट्र की उन्नति था।

1932 ई. में अंग्रेजी सरकार द्वारा एक पंचाट प्रकाशित हुआ जिसे 'सांप्रदायिक पंचाट' भी कहा जाता है। इस पंचाट में सांप्रदायिक आधार पर चुनाव में सीट का विभाजन किया गया और पृथक निर्वाचन क्षेत्रों ने चुनाव और विधायिकाओं को सांप्रदायिक टकराव का अखाड़ा बना दिया। इस प्रकार के चुनावी व्यवस्था ने न केवल मुसलमानों, अपितु हिन्दुओं में भी सांप्रदायिकता की भावना को सशक्त बना दिया। मार्च सन् 1940 ई. के लाहौर अधिवेशन में जिन्ना ने यह स्पष्ट घोषणा कर दी कि हिंदू और मुसलमान पृथक-पृथक जातियाँ हैं। कालान्तर में जिन्ना की हठधार्मिता और कांग्रेस की तुष्टिकरण की नीति के कारण अखंड भारत का विभाजन हुआ। माउंटबेटन योजना के आधार पर ब्रिटिश संसद द्वारा भारत स्वतंत्रता आधिनियम 18 जुलाई 1947 ई. को पारित किया गया। जिसके आधार पर भारत का विभाजन भारत-पाकिस्तान के रूप में दो राष्ट्रों में हो गया। हिंदू और मुसलमानों के बीच सांप्रदायिकता, संकीर्णता और घृणा का जो बीज अंग्रेजों ने बोया था उसकी चरम परिणति भारत विभाजन के रूप में हुई। देश-विभाजन के कारण पूरे देश में सांप्रदायिक दंगे हुए जिनमें अपार जन-धन की हानि हुई। बाद में शरणार्थियों की समस्या भी सामने आयी। विभाजन से पूर्व देश का माहौल सांप्रदायिक हो गया था। पूरा देश सांप्रदायिकता की आग में जलने लगा। सन् 1946 के अगस्त के महीने में

कलकत्ता में भयंकर सांप्रदायिक दंगे हुए। उसके पश्चात् पूर्वी बंगाल के नोआखाली जिले में सांप्रदायिक मुस्लिम लीग ने मारकाट की जिसमें अल्पसंख्यक हिन्दुओं की बहुत क्षति हुई। इसका बदला लेने के लिए हिन्दुओं ने भी जगह-जगह निर्दोष मुसलमानों को मारना शुरु किया और पूरा देश ने हिंसात्मक रूप ले लिया।

अतः स्पष्ट कहा जा सकता है कि आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता की वृद्धि के लिए ब्रिटिश शासन और ब्रिटिश नीति विशेष रूप से उत्तरदायी रही है। अंग्रजों ने सांप्रदायिकता से फायदा उठाया और भारत में अपना राज कायम रखने के लिए जनता में फूट डालकर सांप्रदायिकता को हमेशा से बढ़ावा देकर अपनी विभाजन-नीति को साकार रूप दिया।

2.ख.iii. स्वातंत्र्योत्तर भारत और सांप्रदायिकता

विभाजन के पश्चात् सांप्रदायिकता की समस्या सुलझने के बदले और उलझती चली गयी। प्रमुख सांप्रदायिक संगठन और सक्रिय हो गये, समाज में विषमता की स्थिति व्याप्त हो गयी। हिंदू-मुस्लिम जनता एक-दूसरे के खून की प्यासी हो उठी, लंबे समय से एक-दूसरे के साथ रहने वाले हिंदू-मुस्लिमों ने अपने ही पड़ोसी को पहचानना छोड़कर नरसंहार करना आरंभ कर दिया। विभाजन के फैसले को कांग्रेस ने चाहे जिस भी कारण से स्वीकार कर लिया हो, लेकिन हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख धर्म का कुछ वर्ग ऐसा था जो विभाजन से खुश नहीं था, विभाजन का फैसला अभिजात वर्ग ने अपने हितों के लिए किया। उनके हितों के लिए आम जन को बलिदान देना पड़ा।

विभाजन के बाद सांप्रदायिक घटनाएँ अपनी चरमावस्था में पहुँच गयी थी। पं. जवाहर लाल नेहरू ने 15 अगस्त 1952 ई. को स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर वर्तमान में मौजूद खतरों का जिक्र किया था – "हिंसा की संस्कृति, सांप्रदायिकता और स्वार्थपरता.....उन्होंने कहा कि सांप्रदायिकता देश को केवल और ज्यादा कमजोर कर सकती है। धार्मिक कट्टरपंथी और सांप्रदायिक नेताओं ने इतिहास से सबक लेने से इन्कार कर दिया है। हमें सांप्रदायिक और स्वार्थी-लालची लोगों से सतर्क रहना है जो झूठ और पाखंड से देश को नुकसान पहुँचाते हैं। यदि इन तीन चीजों को रोका नहीं गया तो ये हमारे देश को बर्बाद कर देंगी।"[24] सांप्रदायिकता फैलाने में कुछ पत्र-पत्रिकाओं तथा संगठनों ने मुख्य भूमिका निभाई। विभाजन के पश्चात् बड़े-बड़े दंगे आरंभ हो गए जो दीर्घकालिक थे और आज भी हो रहे हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में सांप्रदायिकता ने अपना उग्र रूप दिखाया। 1962 ई. के जबलपुर दंगों ने पूरे राष्ट्र को झकझोर दिया। यह स्वतंत्र भारत में पहला बड़ा सांप्रदायिक दंगा था। जबलपुर में एक बड़े मुस्लिम बीड़ी व्यापारी के पुत्र को हिंदू लड़की से प्रेम हो गया। लड़का, लड़की को लेकर भाग गया और इसी प्रश्न पर जबलपुर के हिन्दुओं द्वारा दंगों की शुरुआत हो गई। जबलपुर के बीड़ी व्यवसाय पर मुसलमानों का लगभग आधिपत्य था। यह बात हिंदू बीड़ी व्यवसायियों को रास नहीं आयी और उन्होंने इस स्थिति का भरपूर लाभ उठाया।

जबलपुर दंगों के बाद तो ऐसा कोई वर्ष या महीना नहीं गया जब देश के किसी न किसी भाग में दंगे न हुए हो। सातवें और आठवें दशक में तो दंगों की जैसी बाढ़ सी आ गई थी। अस्सी के दशक में सांप्रदायिकता की समस्या ने एक नया मोड़ लिया। इस दौर में कई नये सांप्रदायिक संगठनों का उदय हुआ। साथ ही विश्व हिंदू परिषद ने उग्र सांप्रदायिक रूप धारण किया। विशेष रूप से दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य के मीनाक्षीपुरम में धर्मान्तरण की घटना के बाद उसका अत्यंत उग्र रूप देखने को मिला। इसके बाद ही जब रामजन्मभूमि और बाबरी मस्जिद विवाद पैदा हुआ तो बजरंग दल भी राजनीतिक पटल पर उभरा। शिवसेना जैसी बम्बई तक सीमित आधार वाली पार्टी ने भी अपना काफी विस्तार किया और महाराष्ट्र के दूसरे भागों में और अब हिंदीभाषी क्षेत्रों सहित देश के अन्य भागों में अपनी शाखाएँ बनाने की कोशिश कर रही है।

विश्वहिंदू परिषद, बजरंग दल, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और शिवसेना आदि सांप्रदायिक संगठनों ने मुख्य रूप से बेरोजगार युवाओं को अपनी ओर आकर्षित किया। वहीं दूसरी ओर जमात-ए-इस्लामी और सिमी जैसे संगठनों ने भी बेरोजगार मुस्लिम युवाओं को अपनी ओर खींचने का प्रयास किया। स्वातंत्र्योत्तर भारत में बेरोजगारी की समस्या ने भी सांप्रदायिकता की समस्या को विस्तार देने का काम किया है। हिंदू और मुस्लिम सांप्रदायिकतावादी शक्तियों ने युवा वर्ग की आर्थिक व सामाजिक हताशा को अपने स्वार्थों के लिए दोहन करने की कोशिश की है।

हिंदू और सिख समुदाय आरंभ से एक रहे हैं, इसका कारण है कि 'गुरु ग्रंथ साहिब' के सारे सिद्धांत हिंदू संतों की वाणियों से अनुप्राणित है। लेकिन सन् 1919 में अंग्रेजों ने सिखों को भी मुसलमानों की तरह कानून के तहत अलग दर्जा देकर सिखों को कानून की नजर में हिन्दुओं से अलग कर दिया। लेकिन इसके बाद भी भारतीय समाज में सिख सांप्रदायिकता जैसी कोई चीज पैदा नहीं हुई। हिंदू-सिख सांप्रदायिकता स्वतंत्रता के बहुत बाद में देखने को मिला। जिसका कारण 31 अक्टूबर 1984 ई. को दो सिख अंगरक्षकों द्वारा स्वर्ण

मंदिर में 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' की प्रतिक्रिया में धार्मिक उन्माद के बहकावे में आकर इंदिरा गाँधी की हत्या थी। फलस्वरूप 31 अक्टूबर से लेकर 3 नवंबर तक दिल्ली एवं देश के विभिन्न भागों में हिंदू-सिखों के बीच व्यापक स्तर पर सांप्रदायिक दंगे हुए। दिल्ली में हुए ये दंगे पूरी तरह नियोजित थे और तत्कालीन सरकारी-तंत्र दंगाइयों का पूरा समर्थन कर रहा था। स्वतंत्रता के बाद इतना बड़ा नरसंहार किसी दंगे में नहीं हुआ। इन दंगों ने हिंदू और सिखों को आमने-सामने कर दिया, लेकिन हिंदू और सिखों की समान धार्मिक भावनाओं के कारण इन दंगों के घाव जल्दी ही भर गए।

वर्तमान में राजनीतिक मुद्दे बदल गए हैं। उसमें भ्रष्टाचार और शोषण के साथ ऐसा तालमेल बिठाया गया है कि उसका विष समाज की समस्त शिराओं में व्याप्त हो गया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में हुए सांप्रदायिक दंगों से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है कि सांप्रदायिक तनाव का मुख्य कारण धर्म नहीं है जैसा कि आमतौर पर माना जाता है कि यह सब वोटों की राजनीति है। धर्म सिर्फ निहित स्वार्थों का शक्तिशाली हथियार है जिसके माध्यम से वह अपना घटिया खेल खेलते हैं। जैसा कि असगर अली इंजीनियर लिखते हैं "सांप्रदायिकता का आधारभूत कारण राजनीति है न कि धर्म, धर्म तो केवल इसका उपकरण या हथियार है। जहाँ सांप्रदायिकता का संबंध राजनीति से है वहीं धर्म का आस्था से है। महात्मा गाँधी और मौलाना आजाद जैसे सच्चे धार्मिक व्यक्ति कभी सांप्रदायिक नहीं हुए। इसी तरह मुहम्मद अली जिन्ना और वीर सावरकर जैसे सांप्रदायिक व्यक्ति की कभी धर्म से सच्ची आस्था नहीं बनी। इन्होने धर्म को सिर्फ एक राजनीतिक औजार माना। धर्म में गहरी आस्था रखने वाला व्यक्ति किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए इसका इस्तेमाल नहीं करने देगा।"[25]

अंततः कहा जा सकता है कि सांप्रदायिकता आधुनिक विचारधारा है, जो अपने अतीत के विचारों, संस्थाओं और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर कुछ पहलूओं और तत्वों का इस्तेमाल अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए करती है। 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को अपनाते हुए इसका 'बीज' अंग्रेजों ने हमारे अंदर बोया। जो धीरे-धीरे हमारे ह्रदय में विशाल वृक्ष बनती गई। वर्तमान में सांप्रदायिकता इतना विकराल रूप धारण कर चुकी है कि इसके सामने इसकी विरोधी शक्तियाँ बौनी नजर आती है। सांप्रदायिकता रूपी कीड़ा राष्ट्रीयता की जड़ों में घुन की तरह लग गई है और दिन-प्रतिदिन उसे खोखला करती जा रही है। स्वतंत्रता के उपरांत दंगों की प्रकृति में बदलाव आया और सांप्रदायिक दंगे केवल हिंदू मुस्लिम तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि वह हिंदू-सिख, हिंदू-इसाई, सवर्ण-हरिजन, शिया-सुन्नी और एक समुदाय से दूसरे समुदाय तक फैल गई है। अब ऐसा शायद कोई

दिन जाता हो जब देश के किसी कोने में छोटे या बड़े पैमाने पर ऐसे सांप्रदायिक दंगे न होते हो। कहीं-कहीं तो स्थिति यहाँ तक हो गई है कि किसी अन्य समुदाय का व्यक्ति बहुताय समुदाय में रहता है तो वह अपने आपको असुरक्षित महसूस करता है। लोगों के अंदर यह असुरक्षा का भाव जल्द से जल्द दूर करने की आवश्यकता है।

2.ग.i. हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिकता

भारत वर्ष में सांप्रदायिकता की जड़ें स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही पनपने लगती हैं, जो कि भारत-विभाजन के पश्चात पुष्पित-पल्लवित होती है। अखंड भारत का विभाजन एक बहुत बड़ी त्रासदी थी। इसने न केवल समाजशास्त्रियों को ही सोचने के लिए मजबूर किया वरन हिंदी कथाकारों को भी उद्वेलित किया है। यही कारण है कि हिंदी कथाकारों ने सांप्रदायिक समस्या को आधार बनाकर इस पर विविध दृष्टिकोणों से विचार किया है और साथ ही जनमत को जागृत करने का कार्य किया। वैसे भी कहा जाता है साहित्य समाज का दर्पण होता है, अतः साहित्य में सांप्रदायिक समस्या की अभिव्यक्ति होना स्वाभाविक भी है।

सांप्रदायिक समस्या को आधार बनाकर उपन्यास लेखन की शुरुआत सर्वप्रथम मुंशी प्रेमचंद जी ने किया है। प्रेमचंद ऐसे कथाकार है जो कथा-विधा को जीवन के यथार्थ से जोड़ते हैं। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में तत्कालीन जीवन में व्याप्त सांप्रदायिकता की समस्या भी चित्रित होने लगती है। प्रेमचंद के सेवासदन, कायाकल्प और कर्मभूमि उपन्यास में सांप्रदायिकता की समस्या का चित्रण हुआ है। प्रेमचंद ने अपने 'सेवासदन' (1918) उपन्यास में सर्वप्रथम सांप्रदायिक समस्या की ओर संकेत किया। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने हिंदू-मुस्लिम संबंधों को वेश्यावृत्ति जैसी कुत्सित समस्या से जोड़कर देखने का प्रयास किया है। हाजी हाशिम और अबुलवफा जैसे स्वार्थी व्यापारी मुसलमानों के मन में हिन्दुओं के प्रति द्वेष भाव उभार कर वेश्याओं के नगर में ही रहने का प्रस्ताव रखते हैं। वहीं दूसरी ओर हिंदू सेठ भी अपने स्वार्थी हितों की साधना के लिए इस समस्या को सांप्रदायिक रंग देने में कतई पीछे नहीं रहता। इस प्रकार दोनों ही संप्रदाय के कट्टर सांप्रदायिक तटों द्वारा आम जनता में द्वेष और घृणा का माहौल तैयार करते हैं। 'सेवासदन' के तेगअली का कथन इसी ओर इशरा करता है "आजकल पोलिटिकल मफाद का जोर है, हक़ और इंसाफ का नाम न लीजिए। अगर आप मुदरिस हैं तो हिंदू लड़कों को फेल कीजिए। तहसीलदार है तो हिन्दुओं पर टैक्स लगाइए, मजिस्ट्रेट हैं तो हिन्दुओं को सजाएँ दीजिए। सब-इंस्पेक्टर पुलिस हैं तो हिन्दुओं पर झूठे मुकदमें दायर कीजिए। तहकीकात करने जाइए तो हिन्दुओं के बयान गलत लिखिए। अगर आप चोर हैं तो किसी हिंदू के घर डाका डालिए, अगर आपको हुश्न या इश्क का खब्त है तो किसी हिंदू नाजनीन को उड़ाईए, तब आप कौम के खादिम,

कौम के मुहकिन, कौमी किश्ती के नाखुद-सब कुछ हैं।"[26] निश्चय ही प्रमचंद ने तेगअली के माध्यम से मुस्लिम सांप्रदायिकता पर बड़ा तीखा व्यंग किया हैं।

सांप्रदायिकता की समस्या को व्यक्त करता प्रेमचंद का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'कायाकल्प'(1926) है। उन्होंने इस उपन्यास में आगरे के हिंदू-मुसलमानों की सांप्रदायिक भावनाओं का चित्रण करते हुए तत्कालीन भारतीय में व्याप्त सांप्रदायिकता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत उपन्यास में दो प्रसंग में सांप्रदायिकता अपने उद्दाम रूप में परिलक्षित होती है। एक प्रसंग में मुसलमानों द्वारा गाय की कुर्बानी को लेकर दंगा छिड़ता है तो दूसरे प्रसंग में मौलवी साहब के कपड़े पर होली के दिन किसी हिंदू लड़के द्वारा रंग के दो-चार छींटे पड़ जाने को लेकर। दोनों ही प्रसंगों में प्रेमचंद ने मौलवियों और पंडितों तथा ब्रिटिश सरकार व स्वार्थी नेताओं को विद्वेष उभारने और दंगों के लिए जिम्मेदार बताया है।

सांप्रदायिक समस्या की दृष्टि से 'कायाकल्प' के बाद कर्मभूमि'(1932) का विशेष महत्त्व है। यद्यपि कर्मभूमि उपन्यास में सांप्रदायिक समस्या का प्रत्यक्ष चित्रण नहीं मिलता पर इसमें पात्रों के माध्यम से सांप्रदायिक भावना का परिचय मिलता है। मोहम्मद सलीम और अमरकांत दोनों एक-दूसरे के घनिष्ठ मित्र हैं। अमरकांत सनातनी हिंदू परिवार का युवक होकर भी सलीम के साथ खाने-पीने में कोई परहेज नहीं करता और सलीम भी हिंदू पात्रों के बीच बिल्कुल सहज भाव से रहता है। प्रेमचंद सलीम और अमरकांत के बीच गहरी मित्रता से हिंदू-मुस्लिम एकता का आदर्श रूप प्रस्ततु करते हैं। अमरकांत को एक मुस्लिम लड़की सकीना से प्रेम हो जाता है और उससे विवाह करने के लिए वह कृतसंकल्प भी है। सलीम सांप्रदायिक दंगों की आशंका से घबराकर अपने दोस्त अमरकांत को इसके लिए मना भी करता है और अमरकांत निर्भय होकर कहता है –"मैं प्रेम के सामने मजहब की हकीकत नहीं समझता, कुछ भी नहीं।"[27] यहाँ तक वह अपना प्रेम पाने के लिए मुसलमान बनने को भी तैयार है। 'कर्मभूमि की स्त्री पात्र सकीना और उसकी दादी भी संकीर्ण सांप्रदायिक से सर्वथा, मुक्त है। प्रेमचंद ने धर्मनिरपेक्ष पात्रों की सृष्टि कर सांप्रदायिक सौहार्द का चित्रण करने का प्रयास किया है।

अतः स्पष्ट है कि सांप्रदायिकता को व्यक्त करते हिंदी उपन्यास हमें प्रेमचंद से ही मिलना प्रारंभ हो जाते हैं। इसके बाद सांप्रदायिकता का रूप हिंदी उपन्यासों में स्वाधीनता और देश विभाजन के बाद देखने को मिलता है।

स्वाधीनता-आन्दोलन के दौर में सांप्रदायिकता की समस्या प्रमुख रूप से राष्ट्रवाद का चोला पहनकर भारत के सामने आयी। इस दौर में अलग राष्ट्र की माँग मुस्लिम लीग ने रखी और उसके पक्ष में कई मनगढ़ंत दलीलें दी। मुस्लिम लीग के कार्यकर्त्ताओं ने घूम-घूमकर गाँवों, शहरों, कस्बों में प्रचार करना आरंभ किया और पाकिस्तान की माँग पर सर्वसम्मति बनाने की कोशिश भी की। मगर गाँवों में रहनेवाले साधारण ग्रामीणों को पाकिस्तान बनने न बनने से कोई मतलब नहीं था, लेकिन धीरे-धीरे उनमें भी यह भावना आने लगी। वह गाँव जो साझी संस्कृति का प्रतीक था, एक समय के बाद बँट गया। इसे झूठा सच, 'आधा गाँव', 'तमस', 'मै बोरिशाइल्ला', 'काले कोस'. 'अलग-अलग वैतरणी' जिंदगीनामा','और इंसान मर गया' 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' 'सूखा बरगद', 'कितने पाकिस्तान', 'आख़िरी कलाम', आदि उपन्यासों में देखा जा सकता है।

यशपाल द्वारा रचित 'झूठ सच' दो भागों में विभाजित है। प्रथम भाग 'वतन और देश' में विभाजन से पूर्व हो रहे हिंदू-मुस्लिम संघर्ष को राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया गया है। मुस्लिम लीग की उग्र कार्यवाही तथा विभाजन की घोषणा के फलस्वरूप होने वाले नरसंहार, नारी निर्यात, शरणार्थियों की समस्या का सजीव चित्रण किया गया है। उपन्यास में अनेक पात्र एवं घटनाएँ हैं। जयदेवपुरी, तारा, असद, डॉ. प्रपणनाथ, नैयर, कनक, नारंग, पंडित गिरधारीलाल, नारंग और उनके परिवारवालों के माध्यम से तत्कालीन जीवन में आए परिवर्तन का वर्णन किया है। उपन्यास में धर्मों के आधार पर दोनों जातियों द्वारा की गई दंगों के अमानुषिकता पशुवादिता विशद चित्रण मिलता है। उपन्यास के दूसरा भाग 'देश का भविष्य' है। इसमें भारतीय की सीमा से पहुँचे शरणार्थी शिविर तथा उखड़े हुए लोगों के पुनर्स्थापन की कथा को आधार बनाया गया है। बँटवारे से उत्पन्न नए संदर्भों को भी उपन्यास के पात्रों के माध्यम से दर्शाया गया है। उपन्यास का घटनाक्रम विभाजन के तुरंत बाद से लेकर सांप्रदायिक दंगों के दौर को अभिव्यक्त करती है। 'झूठा सच' के माध्यम से लेखक ने सांप्रदायिकता के आधार पर देश के विनाश और वतन की परिकल्पना को व्यंजित किया है।

'आधा गाँव' उपन्यास उत्तर प्रदेश के एक गाँव गंगौली को केंद्र में रखकर लिखा गया है मगर उपन्यास के दायरे में पूरा गाँव नहीं आता बल्कि गाँव का आधा हिस्सा चित्रित किया गया है। आलोच्य उपन्यास की शुरुआत में कहा भी है कि समय न धार्मिक होता है, न राजनीतिक। यह वह समय है जब जिन्ना और मुस्लिम लीग मुसलमानों के लिए अलग राष्ट्र पाकिस्तान की माँग कर रहे थे। इस कारण समाज में भीतर ही भीतर विभाजन होता जा रहा था। अब इंसान इंसान नहीं रह गया बल्कि हिंदू और मुसलमान बन गया। हिंदू और

कट्टर हिंदू और मुसलमान और कट्टर मुसलमान बन गया है। 'आधा गाँव' में राही मासूम रजा ने लोगों के मर्म को पकड़ने का प्रयास किया और बदलते हुए सांप्रदायिकता के माहौल को चित्रित किया है।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने औपनिवेशिक शासकों के कुचक्रों का पर्दाफाश अपने उपन्यास में करते हुए यह दिखलाने का प्रयास किया है कि अंग्रेजों ने जान-बूझकर हिंदुओं और मुसलमानों के बीच वैमनस्य के बीज बोये। धर्म और भाषा के नाम पर इन दोनों कौमों को लड़ाया गया, इसका बेहतरीन उदाहरण भीष्म साहनी जी के उपन्यास 'तमस' में देखा जा सकता है। अंग्रेजी हुकूमत के इशारे पर म्युनिसिपल कमेटी के कारिन्दें मुराद अली द्वारा सूअर मारकर मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंकने के लिए नत्थू को मजबूर किया जाता है। इधर हर सुबह की भांति हिंदुओं का दल शांति यात्रा के लिए प्रभात फेरी लेकर निकलता है। मस्जिद की सीढ़ियों पर मरे हुए सूअर को देखकर मुसलमानों का खून खौल उठता है और फिर अविश्वास, आशंका और घृणा का दौर शुरू हो जाता है। मुसलमान प्रतिशोध लेने के लिए गौ-हत्या पर आमादा हो जाते हैं, बिना यह जाने कि आखिर इस कृत्य के पीछे किसका हाथ है। धीरे-धीरे यह घटना दंगे का रूप धारण कर लेती है और फिर हत्या, बलात्कार और आगजनी का वह दौर शुरू हो जाता है जिससे मानवता शर्मसार हो जाती है। इधर अंग्रेज अधिकारी इन दंगों को रोकने के लिए कुछ भी नहीं करते बस हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं।

कमलेश्वर के उपन्यास 'लौट हुए मुसाफ़िर' में भी सांप्रदायिकता को देखा जा सकता है। कमलेश्वर ने बस्ती में बढ़ती हुई सांप्रदायिक भावना के कारणों की तलाश सन् 1857 के गदर के बाद से की है। यह वह समय था जब देश में सांप्रदायिकता नाम की किसी चिड़िया का अता-पता तक न था। गदर में हिंदू-मुस्लिम एकता देखकर अंग्रेज घबरा चुके थे और उन्हें अपना सिहांसन डोलता नजर आ रहा था, इसलिए उन्होंने मुस्लिम लीग की स्थापना में मदद की जिसने यह प्रचार करना आरंभ किया कि हिंदुस्तान में मौजूद दो मुख्य धर्मों के बीच कोई भी समानता नहीं अतएव इन दोनों को अलग-अलग राष्ट्र में बाँट देना चाहिए। इस संबंध में रजनी पाम दत्त के विचार देखने योग्य है "भारत की हिंदू मुसलमान जनता के दो अलग-अलग लक्ष्य नहीं हो सकते और न है। मुसलमानों की आबादी का एक बड़ा हिस्सा एक जैसी जमींदारी प्रथा के बोझ के नीचे पिस रहा है, एक जैसे सूदखोर महाजनों की लूट का शिकार हो रहा है, और इन दोनों वर्गो के बीच फूट डालने की कोशिशें वस्तुतः शोषण की इस व्यवस्था को बरकरार रखने की कोशिशें हैं।"[28] कमलेश्वर ने मुख्य रूप से यही दिखलाने का प्रयास अपने उपन्यास 'लौटे हुए मुसाफ़िर' में किया है। वे दिखलाते है कि एक समय था जब

बस्ती में आपसी भाई-चारा हुआ करता था, लेकिन उन बस्तियों में अंग्रेजों के कार्यालय जैसें ही खुले कि लोगों में फूट पड़ने लगी। विभाजन के बाद हुए मोहभंग का चित्रण लेखक ने बड़ी ही कुशलता पूर्वक किया है।

राही मासूम रज़ा का उपन्यास 'टोपी शुक्ला' भी सांप्रदायिक भाव को दर्शाता है। इसमें जहाँ उपन्यास का पात्र टोपी शुक्ला राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संपर्क में आता है और तब उसे यह बताया जाता है कि कैसे मुसलमानों ने इस देश का सत्यनाश किया। भड़काने वाले उससे यह भी कहते हैं कि इस देश का तब तक उद्धार नहीं हो सकता जब तक इस देश से मुसलमानों को खदेड़ नहीं दिया जाता और टोपी के मन में भी घृणा के बीज पड़ जाते हैं। दूसरी ओर इफ्फन की भी कमोवेश यही स्थिति थी। एक ओर टोपी शुक्ला को यह महसूस होता है कि मुसलमान होने के कारण वहीद कक्षा में प्रथम हुआ वहीं इफ्फन को यह लगता है कि मुसलमान होने के कारण मास्टर जी ने उसे जोर से थप्पड़ मारा जबकि लक्ष्मण को अपेक्षाकृत धीमे मारा गया, क्योंकि वह हिंदू है। बचपन से ही भारतीय परिवारों में हिंदू और मुस्लिम के बीच विभेद की बातें भर दी जाती है।

सांप्रदायिकता का एक आर्थिक पहलू भी है। परवर्ती शोधों से यह पता चलता है कि सांप्रदायिक विचारधारा की चपेट में बेरोजगार युवक बड़ी ही जल्दी आ जाते हैं। सांप्रदायिक विचारधारा फैलाने वाले लोग बेरोजगार युवकों को यह झाँसा देते हैं कि उनकी इस दुरावस्था का कारण दूसरे लोग है। स्वाधीनता के पहले मुस्लिम लीग और औपनिवेशिक शासक ने भी ऐसे ही विचारों का प्रसार किया। स्वाधीनता के बाद भी यह नजारा देखने को मिला और अब हिंदुत्ववादी ताकतें भी ऐसे ही विचारों के माध्यम से नौजवानों में विष घोलने का काम कर रही है। बार-बार ये हिंदुत्ववादी ताकतें यह प्रचार कर रही है कि मुसलमानों की विशाल आबादी के कारण देश में भुखमरी, बेरोजगारी आदि समस्याएँ बढ़ रही है। देश के संसाधनों का सर्वाधिक अपव्यय उनके द्वारा हो रहा है। ऐसे विचारों ने कहीं न कहीं हिंदू मन में मुसलमानों के लिए घृणा का संचार किया है। 'टोपी शुक्ला' और 'इंसान मर गया' जैसे उपन्यासों में इसे देखा जा सकता है।

प्रख्यात समकालीन कथाकार शिवमूर्ति का लघु-उपन्यास 'त्रिशूल' रामजन्मभूमि बनाम बाबरी मस्जिद विवाद को आधार बनाकर लिखा गया है। प्रस्तुत उपन्यास में हिन्दू सांप्रदायिकता निशाने पर है। उपन्यास का प्रतिनिधि पात्र शास्त्री और महमूद है। महमूद एक सरल, निष्ठावान बालक कथावाचक का घरेलू नौकर ही नहीं वरन मोहल्ले भर का ताबेदार नौकर भी है। उसकी आज्ञाकारिता सबका मन मोहे रहती है। स्वयं शास्त्री जी उसे प्रेम से 'चेलवा' कहकर पुकारते हैं। उसकी निष्ठा और कर्मठता के आगे लंबे समय तक लोग यह ध्यान नहीं देते कि उसका धर्म या मजहब क्या है? लेकिन यह ज्ञात होते ही कि वह मुसलमान है, उसके सारे मानवीय गुण

गौण हो जाते हैं और उभरती है सिर्फ नफरत और घृणा। उसके बारे में पहले तो कई आशंकाएँ पैदा होती हैं तथा अंततः सांप्रदायिक विद्वेष आकार ग्रहण करने लगता है।

आस्था के अंधे कुएँ को अपनी तर्क-दृष्टि से देखता यह लघु उपन्यास जहाँ एक तरफ धर्म की आड़ में रोटी तोड़ने वाले, अपना स्वार्थ सिद्ध करने वालों तथा समाज नियंता कहे जाने वाले संप्रभु वर्ग के दोहरे चरित्र को उजागर करता है। वहीं दूसरी तरफ उस शख्सियत को भी आड़े हाथों लेते हुए कटघरे में ला खड़ा करता है, जिसे हम भगवान मानकर हर मोर्चे पर अपनी जान बचा लेते हैं। कथावाचक पाल साहब कहता है- "हमारा ईश्वर सिद्धांततः जितना उजला है व्यवहार में उतना ही काला। अन्यथा जिस समाज का भगवान समदर्शी है उसी समाज में जाति-पाँति और छुआछूत के रूप में इतनी विषमता न रहती। जिस समाज का ईश्वर पतिता स्त्रियों का उद्धारक कहा गया, उसी के मंदिर देवदासियों के रूप में पतिता बनाने के कारखाने न बनते। यही नहीं हमने अपने शोषण से अपने भगवान तक को नहीं बख्शा, उन्हें कोर्ट कचहरी तक घसीटा है।"[29] फिरकापरस्तों द्वारा सांप्रदायिक का बीज जो मानव ह्रदय में बोया जा रहा है उसका अंत निश्चय ही बहुत बुरा होगा। इसकी भी मुखर अभिव्यक्ति 'त्रिशूल' में हुई है। अतः सामयिक देशव्यापी घटना को उपन्यास का कथ्य बना कर एक बेबाक सच्चाई को प्रत्यक्ष करते हुए कथाकार शिवमूर्ति ने सांप्रदायिकता की साजिश को निरावरण कर दिया है। देश को शास्त्री जैसे लोगों से बचाने की जरुरत है। यही इस उपन्यास का मूल प्रतिपाद्य है।

बांग्लादेश के निर्माण ने यह बात ग़लत साबित कर दी कि धर्म के नाम पर किसी देश का विभाजन नहीं किया जा सकता और यदि ऐसा निर्णय लिया जाता है तो यह गलत निर्णय है। नासिरा शर्मा के उपन्यास 'जिंदा मुहावरे' में इसे देखा जा सकता है। इस उपन्यास में भारत विभाजन की त्रासदी को भोगते परिवारों की पीड़ा,घुटन, छटपटाहट को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया हैं। परिवार वालों के विरोध के बावजूद निजाम पाकिस्तान चला जाता है। वहाँ पहुँचकर भी वह पाकिस्तानी नहीं बन सका, बल्कि उसे मुहाजिर यानी शरणार्थी की ही पहचान मिलती है। यह वास्तविकता है कि मुहाजिर यानी शरणार्थी की संज्ञा से अपनी पहचान बना चुके भारतीय भू-भाग से गये मुसलमान पाकिस्तान के आज भी नहीं हो सके। इसलिए उन्हें सहधर्मी मुल्क में भी समय-समय पर हिंसा का शिकार होना पड़ता है। निजाम अपनी मेहनत के बल पर संपन्न तो बन जाता है, लेकिन फिर भी उसके मन में कहीं न कहीं अकेलापन है जो उसे कचोटता रहता है। प्रस्तुत उपन्यास में निजाम की विवशता का चित्रण मुहाजिरों की पीड़ा और बेबसी की पराकाष्ठा को दर्शाता है- "शहर के हालात बदल गये। बम के धमाके, गोली और कत्ल..जैसे एक डरावना ख्याब...। यह सब देखकर निजाम

दिल ही दिल में सोचता है कि यह शहर कितना बदल गया है। क्या सोचा था और क्या हो गया। ख्वाब की ताबीर कितनी हकीकी, मगर कितनी डरावनी? कभी-कभी अकेला बैठा-बैठा, सोचते-सोचते भी ऊब जाता और घबराकर खुद से कहता, यहाँ से भाग कर कहाँ जाऊं, या रब।"[30]

जब वह भारत आता है तो परिवार वाले बड़ी सहृदयता से उससे मिलते हैं लेकिन बचपन का दोस्त बदल चुका है। तब निजाम यह महसूस करता है कि धर्म और संप्रदाय की राजनीति ने लोगों के मन में जहर घोल दिया है। इस उपन्यास में मुसलमान युवकों की उस मानसिकता का अंकन किया गया है जिसके कारण वे पाकिस्तान जाना ही अपना अंतिम लक्ष्य मान चुके हैं। यह उपन्यास में बंटवारे से उपजी शरणार्थी समस्या को, शरणार्थियों की मनोदशा तथा उनके संघर्षों को अपनी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है। लेखिका हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में स्थित अपनी जड़ों से अलग हुए लोगों के संघर्षों और उनकी मानसिकता को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करती है। गोपाल राय के शब्दों में "जिंदा मुहावरे' भारत-विभाजन की त्रासदी पर आधारित उपन्यास है। विभाजन ने भारत में रह गए मुसलमानों के लिए अनेक समस्याएँ पैदा की, जिनमें सबसे दुखद उनका मुख्यधारा से अलगावबोध था। आज यह बात अनुभव की जा रही है कि देश का बंटवारा मुसलमानों के लिए विनाशकारी ही था। यहाँ तक कि पाकिस्तान जाने वाले युवकों को भी वहाँ की मुस्लिम आबादी ने ह्रदय से नहीं अपनाया।धर्मान्धता की तो जीत हुई, पर मनुष्यता का हनन हो गया। 'जिन्दा मुहावरे' इसी मानव नियति का साक्षात्कार कराता है।"[31] अतः यह उपन्यास आने वाली नस्लों को एक नवीन संदेश देता है।

राजनीति में जिस रूप से धर्म और अपराध का घोल-मेल हुआ है इसका चित्रण भी स्वातंत्र्योत्तर लेखकों ने अपने उपन्यासों में किया है। मंजूरे एहतेशाम के उपन्यास 'सूखा बरगद' और गीतांजलि श्री के उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' उपन्यास में भी इस मुद्दे को दर्शाया गया है। आजादी के बाद हो रही देश के नेताओं ने अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति का अनुसरण किया। जिस कारण सांप्रदायिक वैमनस्य घटने के बजाय बढ़ता ही गया। एक ओर कांग्रेस पार्टी है जिसने आजादी के बाद से ही अल्पसंख्यकों की पार्टी होने का दावा किया और हर बार इसी आधार पर वोट बटोरे। दूसरी ओर भाजपा, शिवसेना जैसी राजनीतिक पार्टियाँ है जो हिंदू धर्म के रक्षक बनकर खड़ी है। इन दलों ने विहिप, बंजरग दल जैसे धार्मिक दल के साथ हाथ मिला रखा है। देश की सर्वोच्च अदालत में हलफनामा देने के बावजूद भी कि बाबरी मस्जिद को कोई नुकासन न होगा ,मस्जिद ढहा दी गई। 'रामलला हम आएंगे, मंदिर वही बनायेगें' और 'बजरंग बली की

जय' के नारे लगाकर मस्जिद तोड़ दिया गया। प्रदेश की सरकार मूक दर्शक बनी रही और देखते ही देखते पूरे देश में दंगे फैल गये। गुजरात में भी सन 2002 में भीषण दंगे हुए और पुनः प्रदेश सरकार ने दंगाईयों को पूरी शह दी।

इसी क्रम में मंजूरे एहतेशाम का 'सूखा बरगद' उपन्यास है, जिसमें देश-विभाजन के बाद सामूहिक मुस्लिम मनोभाव को गहरी संवेदनशीलता और तार्किक विचारशीलता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। उपन्यास के केंद्र में रशीदा बिया, उसके पिता अब्बू और भाई सुहेल हैं। अब्बू धार्मिक कट्टरता से दूर एक उदार इंसान हैं। वे पाकिस्तान बनने का समर्थन नहीं करते है और देश का बँटवारा होने पर पाकिस्तान नहीं जाते है। लेकिन अजीवन अब्बू को सांप्रदायिक शक्तियों का सामना करना पड़ता है। सुहेल के सांप्रदायिक भटकाव को उपन्यासकार मंजूर एहतेशाम ने आम मुसलमान के भटकाव के रूप में प्रस्तुत किया है। सुहेल में सांप्रदायिक संकीर्णता का भाव उसके मामू-अम्मी, असगर साहब आदि कट्टर धार्मिक प्रवृत्ति वाले लोग भर देते हैं। जब सुहेल अपने मामू को सलाम नहीं करता तो उसके मामू व्यंग्यात्मक स्वर में कहते हैं – "एक नस्ल के लिए एक ही इंकलाबी काफी होता है बेटे। बाप के क़दमों पर चले तो औंधे मुंह गिरोगे।"[32] लेखक ने इस उपन्यास में मुसलमानों की दुर्दशा के कारणों, हुकूमत द्वारा उनका राजनीतिक दुरुपयोग उनकी स्थिति में सुधार होने के बजाय उनकी बिगड़ती स्थिति के पीछे मौजूद सरकारी तंत्र का भी खुलासा किया है।

गीतांजलि श्री के 'हमारा शहर उस बरस' उपन्यास में हिंदू सांप्रदायिकता का पूरी उद्दामता के साथ चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में सांप्रदायिकता की समस्या को इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि 'बात उस बरस की है जब हमारा शहर' में आये दिन सांप्रदायिक दंगे होते रहते थे। यह उपन्यास कृत्रिम जीवन शैली जीने वाले शहरवासियों की मानिसकता, व्यक्तित्व बल्कि पूरे वजूद पर चोट करता है। बात दरअसल उस बरस भर की नहीं है। उस बरस को हम आज में घसीट लाए हैं।

दरअसल, दंगों की आग पंडित, मुल्ला-मौलवी राजनेता अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति करने हेतु भड़काते हैं, लेकिन उसका खामियाजा निर्दोष और गरीब जनता को भुगतना पड़ता है। अतः ऐसी स्वार्थी ताकतों के झांसों से बचना चाहिए, जो धार्मिक सद्भाव का माहौल बिगाड़ते हैं। 'हमारा शहर उस बरस' का पात्र शरद कहता है , "मुल्ला, पंडित, पादरी, राजनीतिज्ञ बहुत से देशों में त्राहि-त्राहि मचा रहे हैं और पूरी कौम को बदनाम कर रहे हैं। मगर हमें देखना पड़ेगा कि जहाँ हम रहते हैं वहाँ की वास्तविकता क्या है, यहाँ कौन पिट रहा है, कौन झूठ बोल रहा है।"[33] लेखिका ने इस उपन्यास में देश के तथा-कथित बुद्धिजीवियों की दोहरी

मानसिकता को बेनकाब किया है। भारत में सांप्रदायिक विचारधारा अपने कदम मजबूती से न जमा पाती अगर देश के बुद्धिजीवियों ने अपनी भूमिका का निर्वाह निष्पक्ष होकर किया होता। अपने राजनीतिक सरोकारों एवं उनसे हासिल होनेवाले लाभों का कारण बुद्धिजीवियों ने उन दलों का या उनके द्वारा फैलाये जा रहे विचारों का विरोध न किया जो सांप्रदायिक की समस्या को बढ़ावा देते हैं। इस प्रकार एक ध्रुवीय विश्व और आर्थिक उदारीकरण के बाद हमारे देश में जो स्थिति बनी है उसका वास्तविक प्रतिबिम्ब है 'हमारा शहर उस बरस'।

मोहम्मद आरिफ ने अपने उपन्यास 'उपयात्रा' में बाबरी मस्जिद ध्वंस होने और उसके बाद के वातावरण का चित्रण किया है। इस उपन्यास में लेखक ने प्रशासन, विभिन्न राजनीतिक दलों, धार्मिक उंमाद में पागल हो रहे लोगों को सांप्रदायिक वैमनस्य का जिम्मेदार माना है। हुसैनपुरा इलाके के इस्पेक्टर त्रिपाठी भी मुसलमानों को ढाढस बाँधने की जगह भयभीत ही करते हैं। उपन्यास में साफ-साफ कई स्थलों पर तत्कालीन प्रदेश के सरकार एवं केंद्र सरकार को बाबरी मस्जिद के ध्वंश का जिम्मेदार माना गया है। बाबरी मस्जिद के ध्वंस होने के लिए वहाँ की पुलिस भी कम जिम्मेदार न थी। दूसरे भाजपा के शीर्ष नेतागण थे जिनका रवैया इस पूरे प्रकरण के दौरान गैर-जिम्मेदाराना था। तीसरे दोषी वे लोग थे जिन्होंने बिना सोचे-समझे मस्जिद का ध्वंस किया और वर्षों के साझे इतिहास पर कालिख पोत दी। लेखक ने उपन्यास के पात्र फरीद के सपने में बाबर को लाकर बड़े ही तार्किक ढंग से राममंदिर पर मस्जिद बनवाने जैसी बात का खंडन किया है।

ऐसा ही एक प्रयास कमलेश्वर ने 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में किया है। यह उपन्यास भारत-पाकिस्तान विभाजन को आधार बनाकर लिखा गया है। धर्म के आधार पर कौम का बंटवारा एक झूठ और मानवीय दृष्टि से अनैतिक है जिसे उपन्यास का कथानायक 'अदीब' मज़बूरी में जी रहा है। इस उपन्यास में समूचे मानव इतिहास को खंगालते हुए लेखक ने लगभग उन सभी घटनाओं और अवसरों को उपस्थित किया है। जब सहज मानवीय चेतना में फाँक पैदा करने की कोशिश की जाती है और यह फाँक हमेशा गैर-ऐतिहासिक और अमानवीय आधारों पर सत्ता के अपने तर्कों द्वारा पैदा की जाती है जिसका परिणाम एक असहज विभाजन या प्रतीक रूप में 'एक और पाकिस्तान' होता रहा है। इस उपन्यास में बाबर को अदीब की अदालत में बुलाया जाता है। इस रूप में इन दोनों लेखकों का प्रयास समान है। शायद इन लेखकों के द्वारा इस बात का खंडन किया गया कि बाबर ने राममंदिर को तुड़वा कर मस्जिद का निर्माण कराया था, वे दल से इसका प्रचार कर समाज में विष घोल रहे हैं बगलें झाकते नजर आयेगें।

कुछ सांप्रदायिक ताकतें मजहब का वास्ता देकर संकिन सांप्रदायिकता के विष वृक्ष को सींचते रहते हैं । अतः जब तक यह ओछी राजनीति ख़त्म नहीं होती तब तक यह सांप्रदायिकता की विष-बेलि पल्लवित-पुष्पित होती रहेगी । 'कितने पकिस्तान' उपन्यास का पात्र निखिल चक्रवर्ती कहता है "पाकिस्तान से पैदा होता है...यह छूत का रोग । जब तक धर्म, नस्ल, जाति और दुनिया की पहली शक्ति बनने का नशा नहीं टूटता, जब तक सत्ता और वर्चस्व की हवस नहीं टूटती तब तक इस धरती पर पाकिस्तान बनाये जाने की नृशंस परंपरा जारी रहेगी ।"[34] कमलेश्वर 'कितने पाकिस्तान' में वैदिक सभ्यता से लेकर समकालीन समय की यात्रा करते हुए दिखाई देते हैं । वे इतिहास और संस्कृति की विविध कथाओं के बहाने अस्मिता, अस्तित्व और मुक्ति के सवालों को उठाते हैं । एकमात्र समाधान और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व ही हो सकता है और यही मानव मुक्ति भी है जो उपन्यास का कथ्य भी है ।

'अगिन पाथर' उपन्यास में उपन्यासकार ने बाबरी मस्जिद ध्वंस होने के पश्चात मुसलमानों और हिंदूओं के बीच उपजे विभेद को अपने उपन्यास का विषय बनाया है । इस उपन्यास में लेखक ने यह दिखलाया है कि किस प्रकार दंगो के दौरान अवसरवादियों की बाछें खिल उठती है । सबसे पहले इसका फायदा उन असामाजिक तत्त्वों को होता है जो इन दंगों की आड़ में अपने दुश्मनों पर निशाना साध पाते हैं । इस दौरान इन असामाजिक तत्त्वों को सामाजिक स्वीकृति भी प्राप्त हो जाती है । दूसरा फायदा होता है राजनीति के अवसरवादियों को जो वोट की राजनीति के खातिर समाज में विष-बीज बोते रहते हैं । तीसरा फायदा समाचार-पत्र वालों को होता है, जो ख़बरों में मिर्च-मसाला लगाकर पेश करते है, ताकि उनका समाचार-पत्र खूब बिके । इस कृत्य के दौरान वे यह भी भूल जाते है कि उनका सामाजिक दायित्व क्या है ? इस उपन्यास में प्रशासन और पुलिस निष्पक्षता पर भी सवाल खड़े किये गये हैं । पहले भी यह कहा गया है कि सांप्रदायिक दंगों के दौरान पुलिस एवं प्रशासन भी एक खास संप्रदाय के लोगों को प्रश्रय देती है । इन दंगों के दौरान जिन-जिन तत्वों की भूमिका संदेहास्पद है, लेखक ने उन सभी के चहरों को बेनकाब किया है ।

स्वातंत्र्योत्तर लेखकों ने सांप्रदायिक विचारधारा के प्रसार के लिए सबसे ज्यादा दोषी मध्यवर्ग को माना है । उच्चवर्ग में सांप्रदायिक समस्या नहीं के बराबर है । उच्चवर्ग अपने स्वार्थ के लिए दुश्मन को भी गले लगाने को तैयार रहता है । धर्म की न तो कोई बंदिश उन पर लागू की जा सकती है और न ही वे धर्म की परवाह करते हैं । अगर उन्हें किसी चीज की परवाह है तो वह धन । धनोपार्जन के लिए किसी भी धर्म के व्यक्ति के साथ संबंध जोड़ सकते हैं, निम्नवर्ग को भी धर्म से कुछ उतना लेना-देना नहीं है । उनका एक मात्र लक्ष्य होता है दो

वक्त की रोटी का इंतजाम करना। यही उसका पहला और अंतिम धर्म है। सांप्रदायिक समस्या होने पर सर्वाधिक प्रभावित भी यही वर्ग होता है क्योंकि पेट के खातिर उसे घर से बाहर निकलना ही पड़ता है। ऐसे में सांप्रदायिक समस्या उसके लिए किसी बड़ी विपदा से कम नहीं होती। मध्यवर्ग अपनी खोखली मरणासन्न एवं दकियानूसी विचारों से जड़ा हुआ है। धर्म के जाल में मध्यवर्ग ही सबसे ज्यादा फंसा हुआ है। धर्म के नाम पर सर्वाधिक दोहन इसी वर्ग का होता है।

भारतीय मध्यवर्ग की विडम्बना यह है कि वह किसी बौद्धिक क्रांति से होकर नहीं गुजरा यह वर्ग औद्योगिक क्रांति के कारण पैदा हुआ था। मध्यवर्ग में बुद्धि का अभाव सांप्रदायिक विचारधारा के प्रसार के लिए सर्वाधिक आवश्यक चीज थी। मध्यवर्गीय परिवारों की विडंबना यह है कि यहाँ पढ़ने लिखने के लिए प्रोत्साहित तो किया जाता है, लेकिन स्वतंत्र विचारों के लिए कोई स्थान नहीं होता है। यह मध्यवर्ग आज भी बंदरिया के मृत बच्चे की भाँति रूढ़ परंपराओं को गले से लगाये घूम रहा है। एक लंबे समय तक मुस्लिम समाज में आधुनिक शिक्षा के प्रति तिरस्कार का भाव था। इसलिए वे पिछड़ते गए और अपनी दुर्दशा के लिए दकियानूसी विचारों को जिम्मेदार न मानकर हिंदुओं को इसका दोषी समझा। वही हिंदू परिवारों में भी स्थिति अत्यंत दयनीय थी। वे आधुनिक शिक्षा के तो हिमायती थे लेकिन आधुनिक विचारों के नहीं। आज भी ऐसे हिंदू परिवार भारतीय समाज में मौजूद है जिनके घरों में अल्पसंख्कों एवं अछूतों के लिए अलग भोजन-पानी की व्यवस्था है। आज भी मुसलमानों के लिए हिंदू 'काफ़िर' है तो हिंदुओं के लिए मुसलमान अविश्वास योग्य है। तभी ऐसी लोकोक्तियाँ है कि 'मुसलमान और आसमान पर भरोसा मत करना'। जब तक दोनों धर्मों के लोग ऐसे घृणित विचारों से आनेवाली नस्लों में विष घोलते रहेंगे तब तक सांप्रदायिक समस्या का हल नहीं निकला जा सकता।

'तमस', 'आधा गाँव', 'टोपी शुक्ला', नीलू नीलिमा नीलोफर', 'हमारा शहर उस बरस', 'झीनी झीनी बीनी चदरिया', 'उपयात्रा', 'सुक्खम-दुक्खम', 'सूखा बरगद', 'जिंदा मुहावरे', 'मै बोरिशाइल्ला' आदि सभी उपन्यासों में इसी मध्यवर्गीय मानसिकता को सांप्रदायिक समस्या के लिए जिम्मेदार माना गया है। लेखकों ने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि जब तक ये मध्ययुगीन विचार मनुष्य के भीतर मौजूद रहेंगे तब तक सांप्रदायिक विचार फैलाकर अपना उल्लू सीधा करने वाले लोग इनका फायदा उठाते रहेंगे। जरूरी है कि इन विचारों को यथा-शीघ्र त्याग दिया जाए और देश की एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाये रखा जाय। समस्या यह है कि आज़ादी के साठ वर्षों के बाद रोटी का संबंध हिंदू-मुस्लिम के बीच बन गया है लेकिन बेटी का

संबंध नहीं बन पाया है। जब तक इन मसलों पर दोनों समुदाय अपना कट्टर रवैया नहीं छोड़ते तब तक किसी प्रकार का समन्वय संभव नहीं है। उपन्यासकार भीष्म साहनी ने अपने उपन्यास 'नीलू नीलिमा नीलोफर' में इसी तथ्य को उजागर करने का प्रयास किया है।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने सांप्रदायिकता की समस्या को उसकी जड़ के साथ देखने का प्रयास किया है। साथ ही इन उपन्यासकारों ने सांप्रदायिकता रूपी वट वृक्ष को सींचने वाले तत्वों से भी अपने पाठकों को अवगत कराया है। इन उपन्यासकारों ने मध्यवर्गीय दकियानूसी विचारों पर तो प्रहार किया ही है साथ ही धर्म और उसके स्वरूप, धर्म और राजनीति, राजनीति और सांप्रदायिकता, सांप्रदायिकता के आर्थिक पहलू, सांप्रदायिक वैमनस्य के अन्य कारणों का भी उल्लेख किया है। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने धर्म के उन्माद में पागल चरित्रों की ही सृष्टि नहीं की है बल्कि उन्होंने ऐसे क्षणों में कुछ ऐसे पात्रों का भी सृजन किया है जो धर्म और उसके दायरे को लांघकर मानवीयता के आधार पर संवेदनशील नजर आते हैं। इन उपन्यासकारों ने सांप्रदायिक समस्या के उन पहलुओं को भी उजागर करने का प्रयास किया है जिनसे साधारण व्यक्ति लगभग बेखबर रहता है साथ ही वे ऐसी सांप्रदायिक तत्वों से खबरदार होने की हिदायत देते हैं।

संदर्भ :

1. तुलसी शब्द कोश, आचार्य बच्चूलाल अवस्थी, पृ. सं.- 468
2. दि इन्साक्लोपीडिया ऑफ़ रिलिजन, मिरसिया इलिए, पृ. सं.- 286
3. रंगभूमि, प्रेमचंद, पृ. सं.- 468
4. अन्यथा पत्रिका, कृष्ण किशोर, पृ. सं.- 10
5. प्रमाणिक शब्दकोश, रामचंद्र वर्मा, पृ. सं.- 809
6. दि इन्साक्लोपीडिया ऑफ़ रिलिजन, मिरसिया इलिए, पृ. सं.- 286
7. माखन झा, इंट्रोडक्शन टू सोशल एंथ्रोपोलोजी, पृष्ठ सं.- 47
8. वही, पृ. सं.- 47
9. प्रमाणिक शब्दकोश, रामचंद्र वर्मा, पृ. सं.- 846
10. धर्म और सांप्रदायिकता, नरेंद्र मोहन, पृ. सं.-29
11. असगर अली इंजीनियर, कम्यूनलिज्म इन इंडिया, पृ. सं.- 194

12. वही, पृ. सं.- 194

13. प्रेमचंद प्रतिनिधित्व संकलन, खगेंद्र ठाकुर, पृ. सं.- 79

14. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृ. सं.- 4

15. प्रेमचंद विरासत का सवाल, शिवकुमार मिश्र, पृ. सं.- 39

16. आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, बिपिन चन्द्र, पृ. सं.- 18

17. भारत में सांप्रदायिकता – इतिहास और अनुभव, असगर अली इंजिनियर, पृ. सं.- 21

18. स्वाधीनता संघर्ष और सांप्रदायिक फासिज्म, एस.एम. चांद, पृ. सं-101

19. स्वतंत्रता संग्राम, बिपिन चन्द्र, बरुण दे, पृ. सं. – 76-77

20. वही, पृ. सं.- 77

21. आज का भारत, रजनी पाम दत्त, 1977, पृ. सं.- 462

22. अयोध्य-कुछ सवाल, मालिनी भट्टचार्य (संपा.), पृ. सं.- 19

23. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, बिपिन चन्द्र, पृ. सं.- 335

24. भारत में सांप्रदायिकता : इतिहास और अनुभव, असगर अली इंजीनियर, पृ. सं.- 109

25. वही, पृ. सं.- 109

26. सेवासदन, प्रेमचंद, पृ.सं.- 112

27. कर्मभूमि, प्रेमचंद, पृ. सं.-83

28. आज का भारत, रजनी पाम दत्त, पृ. सं.- 468

29. त्रिशूल, शिवमूर्ति, पृ. सं.- 69

30. जिन्दा मुहावरे, नासिरा शर्मा, पृ. सं.- 88

31. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय पृ. सं.- 381

32. सूखा बरगद, मंजूर एहतेशाम, पृ. सं.- 37

33. हमारा शहर उस बरस, गीतांजलि श्री, पृ. सं- 57

34. कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं.- 187

तृतीय अध्याय

'तमस' में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता

3.क. सांप्रदायिक विचारधारा की पृष्ठभूमि पर तमस की कथावस्तु :-

कथासार

उपन्यास का आरंभ आले में रखे दीये के फिर से झपकी लेने से होता है। ऊपर दीवार में छत के पास से दो ईटें निकली हुई थीं। जब-जब वहाँ से हवा का झोंका आता, दीये की बत्ती झपक जाती और कोठरी की दीवारों पर साए-से डोल जाते। थोड़ी देर बाद बत्ती अपने-आप सीधी हो जाती और उसमें से उठनेवाली धुएँ की लकीर आले को चाटती हुई फिर से ऊपर की ओर सीधे रख जाने लगती। नत्थू की साँस धौंकनी की तरह चल रही थी और उसे लगा जैसे उसकी साँस के कारण दीये की बत्ती झपकने लगी है।

नत्थू एक बंद कमरे में सूअर मार रहा है। यद्यपि नत्थू सूअर मारने का काम नहीं करता था। उसका काम चमड़े निकालने का है। लेकिन मुराद अली जो सलोतरी साहब का नौकर है और सलोतरी साहब को सूअर डॉक्टरी के काम के लिए चाहिए। मुराद अली नत्थू का ठेकदार था जो उसे चमड़े दिलवाता था। उसका बहुत सा एहसान नत्थू पर था, तो उसकी बात को वह कैसे टाल सकता था। लेकिन फिर भी सूअर मारने से वह मना कर देता है। इस पर मुराद अली पाँच का नोट निकाल कर उसे थमा देता है। नत्थू पाँच रुपये का नोट देखकर और मुराद अली द्वारा किए गए एहसान पर सूअर मारने के लिए राजी हो जाता है। नत्थू को सूअर मारना काफी कष्टप्रद लग रहा था। मन होता बिना मारे छोड़कर अपने औरत के पास चला जाये। मगर मुराद अली को दिया हुआ वचन उसके पाँव में बेड़ियाँ डाल देता और बार-बार पाँच का नोट उसकी आँखों के सामने झूम जाता। आखिर में नत्थू ने पूरी ताकत लगा दी और सूअर मारने में सफल हो गया।

जिला कांग्रेस कमेटी के कार्यकर्ता सुबह प्रभातफेरी के लिए एक स्थान पर एकजुट होने लगते हैं। इसमें जिला कांग्रेस कमेटी के प्रधान मेहता जी, महासचिव बख्शी जी तथा अन्य कार्यकर्ता में जरनैल, कश्मीरी लाला, शंकर, मास्टर रामदास, अजीज मौजूद थे। मेहता जी और बख्शी जी समय पर नहीं पहुँचते हैं। समय पर सिर्फ अजीज पहुँचता है। सभी सदस्य सुबह-सुबह एक दूसरे की पोल खोलते हैं और एक-दूसरे पर छीटें उड़ाते हैं। ऐसा लगता है, जैसे कांग्रेसी ऊपर कुछ और अन्दर से कुछ और है। मास्टर रामदास कांग्रेस कमेटी से वेतन पाता है फिर भी वह विलंब से पहुँचता है। कांग्रेस कमेटी का एक सदस्य जरनैल जो सभी सदस्यों से अलग

और मुँहफट इंसान है। छह इंच ऊपर खाकी पतलून पहनता था, फिर उसके ऊपर खाकी कोट, जिसपर नेहरु और गांधी जी के जितने तमगे मिल सकते थे, लगा रखा था। उसने खसखस दाढ़ी नुची-खुची और ऊपर मूंगिया रंग की पगड़ी पहन रखी थी। वह एक बूढा अल्हड़ इंसान था। जिसके न आगे कोई था न पीछे कोई। किसी से बिना डरे कुछ भी कह देना और हफ्ते में दो-तीन दिन पिट जाना उसके लिए बड़ी बात नहीं थी। बगल में छोटा सा बेंत दबाए वह एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले घूमता नजर आता था। जरनैल ही ऐसा व्यक्ति था, जो आंदोलन हो न हो जेल जाता रहता था। जलसे हो न हो शहर में तकरीरें करता फिरता था। वह जब भी जिला कांग्रेस कमेटी में जाता, किसी न किसी से उसकी नोकझोंक शुरू हो जाती। कश्मीरी लाल जब उसे छेड़ता है, तो जनरैल भी उसे आड़े हाथ लेते हुए ऊपर से कांग्रेस और अन्दर से कम्युनिस्ट कहकर फटकारता है।

शंकर मेहता जी की खिंचाई करता है और दोनों में वाद-विवाद होता है। मेहता जी जिला कांग्रेस के अध्यक्ष थे। परंतु अपने पद का दुरुपयोग बीमा एजेंट के रूप में करते थे। शंकर से उनकी पुरानी लड़ाई थी। जिस कारण वह समय-समय पर मेहता जी की खिंचाई करता रहता था। बख्शी जी परेशान थे कि प्रभात फेरी निकलने में विलंब हो रहा है। कश्मीरी लाल ने जरनैल को तकरीर शुरू करने के लिए कहकर और मुसीबत पैदा कर दी। रामदास आ गया है, मगर जरनैल की तकरीर तो ख़त्म ही नहीं हो रही थी। जब जरनैल ने किसी तरह बोलना बंद किया तो मास्टर रामदास ने कहा आज प्रभात फेरी नहीं होगी, क्योंकि आज तामीरी काम का फैसला हुआ है। आज इमामदीन मुहल्ले के पीछे ढोक में नालियाँ साफ़ की जाएगी। कश्मीरी लाल को जब पता चलता है कि उस गली के कच्ची नालियों में वर्षों का लसलसा कीचड़ पड़ा है तो वह बोलता है नलियाँ साफ़ करके हम क्या करेंगे। इस पर जनरैल कहता है, तुम गद्दार हो नलियाँ मैं साफ़ करूँगा। सभी कांग्रेस सदस्यों की असलियत की गाठें खुलती है। ओढ़ा हुआ समर्पण सामने जल्द आ जाता है। तामीरी काम के लिए प्रभात फेरी का पुराना गीतगाते हुए सभी निकल जाते हैं।

नत्थू सारी रात सूअर से जूझता उस बदबूदार कोठरी से निकल कर चैन की साँस लेता है। उसके पाँव जब गली में पड़ते हैं, तो उसे काफी आराम महसूस होता है। भोर हो चुकी थी और सुबह सभी अपने दैनिक क्रिया में लगे हुए थे। औरतों की धीमी-धीमी बतियाने और चूड़ियां खनकने की आवाजें आ रही थी। फकीर रोज की तरह इकतारे गा रहा था। कोई जानवर के लिए सानी-पानी कर रहा था, तो किसी के घर से बर्तनों की आवाज़ आ रही थी। कुछ लोग मंदिर और गुरुद्वारों में माथा टेकने जा रहे थे। रास्ते पर चलते हुए नत्थू का पैर किसी चीज से टकरा जाता है, वह देखता है कि शायद किसी औरत ने टोना करके फेक दिया है। उसका मन

घबरा जाता है। वह वही सोचते–सोचते आगे बढ़ता है। चलते हुए वह एक संकरी गली में दाखिल होकर कुछ दूर जाकर दाएँ की ओर दूसरी गली के लिए मुड़ता है। थोड़ी दूर चलने पर उसे किसी गाने की आवाज सुनाई देती है और नत्थू समझ जाता है कि प्रभात फेरी की मंडली है।

देशभक्ति गीत के साथ के साथ बंदे मातरम्', 'भारत माता की जय, 'महात्मा गाँधी की जय के नारा लगते हुए कांग्रेस कार्यकर्ता आगे बढ़ते हैं। तभी दूसरी गली से पाकिस्तान का भी नारा गूंजता है 'पाकिस्तान जिंदाबाद'। नत्थू वहीं पास कान लगा कर सब सुनता है। मुस्लिम लीग के सदस्य और कांग्रेस के कार्यकर्ता आपस में टकरा जाते हैं और नारेबाजी तेज हो जाती है। तभी मुस्लिम लीग के सदस्य में से एक व्यक्ति कहता है कि कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है। इसका मुसलमानों से कोई वास्ता नहीं। कांग्रेस के कार्यकर्ता कहते हैं कि कांग्रेस सबकी जमात है हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों सभी की। अजीज जो अभी हमारे साथ मौजूद है वह मुसलमान है और मौलाना आजाद भी तो मुसलमान हैं जो कांग्रेस के प्रेसिडेंट हैं। इस पर मुस्लिम लीग का सदस्य कहता है, अजीज़ और हकीम हिन्दुओं के कुत्ते हैं। हमें हिन्दुओं से नफरत है, इन कुत्तों से नफरत है। मौलाना आज़ाद हिन्दुओं का सबसे बड़ा कुत्ता है। गाँधी के पीछे दुम हिलाता फिरता है, जैसे ये कुत्ते आपके पीछे दुम हिलाते फिरते हैं। पास में खड़ा मुरादअली भी यह बहस सुनता हैं। नत्थू की नजर जब उस पर पड़ती है वह वहाँ से निकल जाता है।

रिचर्ड अंग्रेजी हुकूमत द्वारा नियुक्त शहर का डिप्टी कमिश्नर है और अपनी पत्नी लीजा के साथ रहता है। लीजा को भारत अच्छा नहीं लगता इसलिए वह बार-बार इंग्लैंड चली जाया करती है। इस बार छः महीने बाद लौटी है, और रिचर्ड चाहता है कि लीजा का यहाँ मन लगे। उसे खुश करने के लिए वह उसे ऐतिहासिक पहाड़ी घाटियाँ घुमाने ले जाता है और भारतीय प्राचीन इतिहास से परिचित कराने का प्रयास करता है। लीजा को इन सब में मन नहीं लगता। वह रिचर्ड से पिकनिक स्पॉट की जानकारी लेती है। पहाड़ की तलहटी में एक अच्छा पिकनिक स्पॉट है। रिचर्ड उसे वहाँ नहीं ले जाना चाहता है।

रिचर्ड बहुत चतुर है। लीजा जब उससे हिंदू-मुस्लिमों के मतभेद के बारे में पूछती है तो रिचर्ड उसे असली बात नहीं बताता, परंतु लीजा समझ जाती है कि ये इन लोगों की ही चाल है और धर्म का आड़ लेकर अंग्रेज ही इन्हें आपस में लड़ा रहे हैं। जिससे इनकी शक्ति कमजोर हो जाए और अंग्रेजी हुकूमत आराम से यहाँ राज कर सके। रिचर्ड लीजा से कहता भी है कि हुकूमत करने वाले प्रजा में समानता नहीं असमानता ढूंढते हैं। लीजा जानती है कि अंग्रेज इसी नीति के बल पर हिन्दुस्तान में राज कर रहे हैं। उसका नारी हृदय संवेदनशील

है। उसे यह डर है कि कहीं भारतीय जनता भड़क उठी तो अकेला रिचर्ड क्या करेगा? रिचर्ड उसे आश्वस्त कराता है। उसे रिचर्ड की काबिलियत पर विश्वास है।

अँधेरा घटने के बाद प्रभात फेरी की मंडली इमामदीन के मुहल्ले में पहुँचती है। रास्ते में शेरखान के घर से झाड़ू, बेलचा और कढ़ाईयाँ लाकर सभी सफाई के काम में जुट जाते हैं। कुछ कार्यकर्ता तामीरी का काम करने में हिचकिचाते हैं और बहानेबाजी भी करते हैं। लेकिन लोग उनके काम से आकर्षित भी होते हैं। काम चलता रहता है तभी अचानक एक व्यक्ति भागता हुआ आकर कुछ कहता है और मुहल्ले में सभी अपने घर के भीतर चले जाते हैं। एक बुजुर्ग जो थोड़ी देर पहले उनके काम की तारीफ करके गया था वह आता है और बोलता है कि आप लोग अपनी खैरियत चाहते हैं तो जल्द से जल्द यहाँ से चले जाये। तभी पत्थर बाजी शुरू हो जाती है और सभी भागने लगते हैं। आगे मस्जिद के सामने जाकर उन्हें पता चलता है कि किसी ने सूअर मार के मस्जिद के सीढ़ियों पर फेक दिया है। यह देखकर कांग्रेस कार्यकर्ता वहाँ से जल्द से जल्द भागना चाहते हैं मगर बख्शी जी स्थिति को भापते हुए सूअर को वहाँ से हटाना चाहते हैं। हटाने के लिए जब कोई राजी नहीं होता है तो बख्शीजी जरनैल के साथ मिलकर किसी तरह सूअर को घसीटकर सड़क पार करके ईटों के ढेर के पीछे छिपा देते हैं। तभी उन लोगों ने देखा कि एक आदमी जिसके गले में तावीज लटक रही थी सिर पर मुंडासा बाँधे और हाथ में डंडा लिए चिकनी खाल वाली, बादामी रंग की गाय को हांकता हुआ ले जा रहा है। डर के मारे गाय की पूंछ उठ गई है। यह सब देखकर ठिठक कर बख्शी जी धीरे से बोलते हैं, लगता है शहर में चीलें उड़ेंगी। आसार बहुत बुरे हैं।

शहर की स्थिति बिगड़ चुकी है और हिंदू सभा के मार्गदर्शक वानप्रस्थी जी का साप्ताहिक सत्संग 'हिंदू बचाओ' रक्षा अभियान में परिवर्तित हो गया है। विश्व शांति की बात करने वाले सभी हिंदू भक्त अपने बचाव के लिए मुसलमानों पर आक्रमण कैसे किया जाए इस विचार में लगे हुए थे। सारे हिंदू रक्षा के सदस्य मंत्रीजी, देवदत्त, लालाजी दानवीर प्रधान सभी सत्संग के बाद मंदिर के पीछे विचार-सभा का आयोजन करते हैं। क्योंकि यह अफवाह फैल गई थी कि माई सत्तो की धर्मशाला के बाहर गाय के कटे अंग फेंके गए हैं और मस्जिद में हथियार इक्कट्ठा किए जा रहे हैं। लेकिन अन्य लोग इतना उत्तेजित नहीं हो पाए थे जितना वानप्रस्थी जी थे। वे हिंदू संगठन में बड़ी लगन से काम कर रहे थे। कुछ लोग तेल गरम करवा कर ऊपर से उँड़ेलने की सलाह दे रहे थे, तो कुछ लोग युवाओं को लाठी सिखाने की सलाह दे रहे थे। एक बुजुर्ग व्यक्ति ने हिंदू-मुस्लिम के इस दंगे को सुलझाने के लिए डिप्टी कमिश्नर से मिलने की सलाह दी। मगर यह रास्ता किसी को सही नहीं लगा।

हिंदू संगठन के संचालक मास्टर देवव्रत के कई शिष्य थे। उन शिष्यों में रणवीर मास्टर देवव्रत को काफी पसंद था। मास्टर देवव्रत कुछ ऐसे लड़के तैयार करना चाहते थे जो हर वक्त हमले के लिए तत्पर हो। इस काम के लिए उन्होंने रणवीर को चुना। रणवीर को दीक्षित होने के लिए एक मुर्गा को काटना अनिवार्य था। रणवीर की उम्र मात्र पंद्रह साल की है। कच्ची उम्र के साथ उसका दिल भी कच्चा था। शुरू में वह मुर्गा काटने से डरता है, लेकिन बाद में मास्टर देवव्रत का थप्पड़ उसे निडर बना देता है और वह मुर्गा काटने में सफल हो जाता है। रणवीर, धर्मदेव और बोधराज जहरीले बाण और तेल गर्म करने की योजना में पूरी तरह लग जाते हैं। रणवीर में बदलाव आता है वह पहले से काफी निडर हो जाता है। अब वह कुछ भी कर सकता है उसे किसी चीज का भय नहीं था। युवकों को तेल गर्म करने के लिए कढ़ाई चाहिए थी। उनलोगों ने फैसला किया कि कढ़ाई हलवाई के दुकान से ले लिया जाएगा। इस काम को करने के लिए रणवीर और धर्मदेव गए। हलवाई की दुकान खुली थी और हलवाई को बिना पूछे रणवीर ने धर्मदेव से कहा कि कढ़ाई उठा लो। इससे हलवाई विरोध करने लगा तब रणवीर ने उसके मुहँ में वार कर दिया और खून की धार बहने लगी।

कांग्रेस के कार्यकर्ता और मुस्लिम लीग के सदस्य विवाद को सुलझाने के लिए डिप्टी कमिश्नर के पास पहुँचे। यह विवाद रिचर्ड के थोड़े प्रयास से रुक सकता था। लेकिन अंग्रेजों के तरफ से इस फसाद को रोकने का कोई प्रयास नहीं किया गया। बख्शी जी, हायतबख्श और मेहता जी आदि लोगों ने अनुनय-विनय की, प्रार्थना की और सुझाव भी दिया कि कर्फ्यू लगा दीजिए, सेना बुला लीजिए, ऐसे बहुत से उपाय रिचर्ड कर सकता था। लेकिन रिचर्ड ने साफ शब्दों में मना कर दिया कि यह सब मेरे अधिकार क्षेत्र में नहीं है। साफ पता चल रहा था कि रिचर्ड इस फसाद के जड़ में कहीं न कहीं था और वह चाहता था कि यह विवाद बढ़े।

नत्थू जब घर की ओर बढ़ रहा था तो वह काफी परेशान था। सूअर की चर्चा पूरे शहर में होने लगी थी। उसे रह रह कर डर सता रहा था कि किसी को पता चल गया उसने सूअर मारा है तो क्या होगा। इस भय को दूर करने के लिए वह शराब और शबाब दोनों के सहारा लेता है, लेकिन मुराद अली उसे रास्ते में चलता दिख जाता है। नत्थू सोचता है उसको बता दे उसका काम हो गया मगर मुराद अली उसे पहचानने से इनकार कर देता है और बिना बोले आगे बढ़ जाता है। मुराद अली का नत्थू से न बोलना उसे और चिंतित कर देता है। उसके अन्दर का भय बाह्य रूप में परिवर्तित हो जाता है। पत्नी का सुकोमल स्पर्श भी उसे नहीं रोक पाता है। शहर में हिंदू-मुस्लिम दंगा फैल जाता है। यह बात जब लीजा को मालूम चलती है, तो वह काफी अफ़सोस

करती है। और रिचर्ड से कहती भी है कि तुम्हारे होते हुए शहर में दंगा हो रहा है। रिचर्ड साफ मना कर देता है कि हम इनके धार्मिक मामलों में दखल नहीं करते हैं।

शहर पूरी तरह आग के लपेट में आ चुकी है। व्यापारी लाला लक्ष्मीनारायण मुसलमानी मुहल्ले में रहता है। दंगा बढ़ जाने से वह काफी परेशान है, एक उसका बेटा रणवीर घर नहीं लौटा है और वह यहाँ अपनी पत्नी और बेटी के साथ घर में फसा हुआ है। रणवीर का ऐसे माहौल में घर से बाहर रहने की चिंता लाला को खाई जा रही है। ननकू लाला का नौकर है। लाला जल्द से जल्द मुसलमानी मुहल्ले से बाहर निकलना चाहते हैं। उसके पत्नी के लाख मना करने के बाद भी वह ननकू को उस दंगे भरे स्थिति में ही पत्र लेकर अपने समधी के पास भेज देता हैं कि वह अपने मित्र शहनवाज को भेजकर उन्हें और उनके परिवार को यहाँ से निकलवाएँ। ननकू एक नौकर था और नौकर का आस्तित्व लाला जी की नजर में कुछ नहीं है। अपने बचाव के लिए लाला जी नौकर की जान खतरे में डालने में नहीं हिचकिचाते।

जैसे-जैसे समय बीतता है स्थिति बिगड़ती जाती है। जगह-जगह से हिंदू-मुसलमान के मारे जाने की खबर सुनाई देने लगती है। ऐसे माहौल में शहनवाज जैसा व्यक्ति सामने आता है। जब उसे मालूम चलता है कि उसके दोस्त रघुनाथ ने भय में आकर अपना मकान छोड़कर दूसरे मोहल्ले में मकान ले लिया है तो शहनवाज सारी सीमा तोड़ते हुए उससे मिलने वहाँ पहुँच जाता है। बात-बात में रघुनाथ की पत्नी को याद आता है कि वह अपने जेवर अपने पुराने घर में ही भूल गई है। शहनवाज से वह जेवर निकालकर ला देने को कहती है। शहनवाज जेवर लाने रघुनाथ के पुराने घर पहुँचता है जहाँ उनका नौकर मिलखी पहले से मौजूद रहता है। जब जेवर निकालने शहनवाज ऊपर की कोठरी में जाता है तो पास खिड़की से उसे एक मुसलमान मरा हुआ दिखता है जिसका अंतिम संस्कार हो रहा होता है। उसकी मौत दंगे से हुई थी। जेवर निकाल के जब शहनवाज नीचे की ओर चलता है तो उसके आगे-आगे मिलखी चल रहा होता है। उसके अंदर की सांप्रदायिक भाव जाग उठता है न चाहते हुए भी वह मिलखी को लात मार कर सीढ़ियों से गिरा देता है। शहनवाज रघुनाथ की पत्नी को जेवर लौटा देता है जिसके लिए वह शहनवाज की कृतज्ञ थी।

फसाद थमने का नाम नहीं लेता दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है। देवदत्त और कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों का मत था कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच अगर सौहार्दपूर्ण चर्चा हो जाए तो स्थिति पर काबू पाया जा सकता है। देवदत्त इसके लिए काफी प्रयास करता है। दंगे भरे माहौल में भी मुस्लिम लीग के नेता हयातबख्श के घर में बैठक होती है जिसमें कांग्रेस के जिला सचिव बख्शी जी मौजूद रहते हैं। लेकिन फसाद

रोकने की जगह इस बात पर ज्यादा बहस होती है कि कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है। मुस्लिम लीग पाकिस्तान लेकर रहेंगे का नारा लगाते हैं। इन सब के बीच में देवदत्त अमन कायम करने की सहमति के पत्र में हयातबख्श के दस्तखत करवाता है, परतुं उसी समय मालूम चलता है कि सड़क पर दंगे और पाकिस्तान न बनने का तकरीर करता हुआ जनरैल मारा जाता है।

देवव्रत से दीक्षा लेकर रणवीर सबसे चतुर, सबसे चुस्त और सबसे ज्यादा कार्यकुशल हो गया है। सभी मोहल्लों में दलबंदी शुरू हो गई है, एक धर्मवाला दूसरे धर्म वाले को मार रहा है। रणवीर भी दल के सदस्यों को निर्देश दे रहा था। गरीब इनफरोश उस दिन भी इत्र बेचने निकला है। वह गली में घूम रहा होता है इतने में रणवीर इंद्र को हुक्म देता है कि वह म्लेच्छ है उसे मार डालो। इंद्र बिना सोचे समझे इनफरोश के पेट में नश्तर घुसेड़ देता है। जगह-जगह फसाद की बात सुनकर नत्थू अपने आपको बड़ा दोषी मानता है। वह इस बात को लेकर परेशान है कि अगर वह सूअर न मरता तो शायद ऐसी वीभत्सता देखने को नहीं मिलती। नत्थू अपनी पत्नी को सारी बात बता देता है। पहले उसके पत्नी थोड़ी संकोच करती है फिर बोलती है कि इसमें तेरी गलती थोड़ी है तुझे क्या पता सूअर किस काम के लिए मरवाया। तू नहीं मारता तो कोई और मार देता और यह भी सोचना जरूरी नहीं है कि यह वही सूअर हो। लेकिन फिर भी नत्थू के मन में अपराध का भाव बार-बार जगता है। सोचता भी है कि मुझसे अपराध अनजाने में हुआ है। फिर भी उसके दिल में बोझ बढ़ता जाता है। राज खुलने का भय भी उसे सताने लगता है।

सांप्रदायिकता का प्रभाव धीरे-धीरे गाँव में फैलने लगता है। हरनामसिंह की इलाहीबख्श गाँव में चाय की दुकान है। वर्षों से उसी गाँव में वह धंधा करता चला आ रहा था। मुसलमान गाँव में उसका अकेला सिख परिवार है। माहौल बिगड़ने पर उसकी पत्नी सचेत करती है कि समय रहते गाँव छोड़ दे मगर हरनामसिंह नहीं मानता है। उसे विश्वास है उसका मित्र करीम खान उसकी हिफ़ाजत करेगा। मगर करीम खान आकर जब उसे वहाँ से निकल जाने के लिए कहता है तो यह सुनकर वह दुकान में आकर कमाई के नोटों का पुलिंदा उठा कर जेब में रखता है और उसकी पत्नी अपनी पाली हुई मैने को पिंजरे से मुक्त करती है और अपनी दो नाली बंदूक उठाकर हरनामसिंह अपने पत्नी के साथ गाँव छोड़कर चल देता है। बीस वर्ष उस गाँव में रहने के बाद भी वह परदेशी बन जाता है। घर से निकलते ही बलवाई आकर उसके दुकान लूटकर जला देते हैं। उनकी बेटी जसवीर और बेटा इक़बाल सिंह अलग गाँव में रहते हैं। दोनों उनकी चिंता में डूबे गाँव छोड़ देते हैं।

दंगे की स्थिति में पूरे गाँव के सिख गुरुद्वारे में इक्कट्ठा होने लगते हैं और सुरक्षा व्यवस्था पर विस्तृत चर्चा चलती है। असला और कारतूस इकट्ठा करने पर भी बात होती है। जत्थेदार किशन सिंह, निहंग सिंह, बिशन सिंह, मनिहारीवाले एवं तेजा सिंह अड्डी सुरक्षा व्यवस्था के अलग-अलग मोर्चे पर डटे हुए थे। सिख एवं मुसलमान दोनों खेमों में असला आना शुरू हो गया था। इन सबके बीच स्थिति को बदतर होते देख सिखों के बीच में सोहनसिंह और मुसलमानों के बीच में मीरदाद अपनी-अपनी बिरादरी को समझना चाहते हैं, यह अंग्रेजों की चाल है और इस तरह फसाद से समस्या का हल नहीं मिलेगा। मसले को बातचीत से हल करने का प्रस्ताव रखता है। लेकिन धर्मांधता इतनी अधिक बढ़ जाती है कोई उनकी बात नहीं सुनता और वे चाहकर भी फसाद नहीं रोक पाते हैं।

दर-दर घूमता थक-हारकर हरनामसिंह और बंतो एक दरवाजे की कुंडी खटखटाते हैं । वह घर मुसलमान का होता है जो उन्हें शरण देते हैं। खाना खिलाकर घर के मर्द को देखने के डर से मायनी छुपकर रहने को कहती है। यह सब राजो की बहू अकराँ को सही नहीं लगता और इन्हें रखने से अपनी सास को मना करती है। लेकिन राजो उसकी बात नहीं मानती और उसे अपने यहाँ रखती है। मायनी में बैठा हरनामसिंह एक व्यक्ति को काला बड़ा ट्रंक लाते देखता है। हरनामसिंह उस व्यक्ति को पहचान लेता है कि वह एहसानअली है। उसके साथ उसका पुराना लेन-देन रहता है। वह जो ट्रंक लूटकर लाया है हरनामसिंह का ही है। उसकी बहु अकराँ ट्रंक का ताला तोड़ने लगती है हरनामसिंह ऊपर से चाभी देता हुआ कहता है कि ये लो चाभी, यह ट्रंक मेरा ही है। अच्छा हुआ जो तुम्हारे हाथ लगा, किसी दूसरे के हाथ नहीं लगा। अब इसे तुम्हारा ही समझो। एहसानअली की नजरें झुक जाती है दोनों एक दूसरे को पहचान लेते है। फिर एहसानअली कहता है मेरे यहाँ आ गये इसलिए बच गए कहीं और जाने से अब तक जान से हाथ धोना पड़ता। एहसानअली उसे जल्द से जल्द यहाँ से जाने को बोलता है, क्योंकि उसके बेटे रमजान का कोई भरोसा नहीं। उसे पता चलने पर वह कुछ भी कर सकता है। फिर एहसानअली को दया आ जाती है और उसे कोठरी में छिपा देता है। अकराँ रमजान के आने पर सबकुछ बता देती है और रमजान गालियाँ बकता हुआ हरनामसिंह और बंतो को मारने जाता है। राजो उसे रोकने लगती है और रमजान भी हरनामसिंह को पहचान लेता है और बहुत साहस करके भी उसे नहीं मार पाता है। राजो अर्द्ध रात्रि में हरनामसिंह और बंतो को गाँव के उस पार छोड़ने जाती है। राजो ट्रंक से निकला जेवर बंतो को लौटा देती है।

इधर गाँव में एक घटना और घटती है। देहात के ऊबड़-खाबड़ पर भागता हरनामसिंह का लड़का इक़बालसिंह माँ-बाप के पास जाना चाहता है और रास्ते में रमजान, नूरदीन और उसके साथी उसे देख लेते हैं। उस पर पत्थर चलाते हैं और अंतः में जान से छोड़ने के लिए इस्लाम धर्म कबूल करवाते हैं। जान की रक्षा के लिए इकबालसिंह धर्म परिवर्तन के लिए राजी हो जाता है। लेकिन फिर भी उसका मजाक बना कर इस्लाम धर्म कबूल कराया जाता है और इकबालसिंह इकबाल अहमद बन जाता है।

गाँव के गुरुद्वारे में जसबीर के साथ बहुत सारे महिलाएँ इकट्ठा होती हैं। गाँव में हिंदू-सिख से ज्यादा मुसलमान थे फिर भी दोनों में घमासान दंगा होता है। बहुत सारे सरदार मारे जाते हैं। निहंगसिंह और सोहनसिंह मारे जाते हैं। कुछ मुसलमान भी मारे जाते हैं। मुसलमानों को गुरुद्वारा में बढ़ता देख जसबीर और उसके साथ बहुत सी महिलाएँ अपने बच्चों के साथ गुरूद्वारे के पास के कुएँ में कूद जाती है। मुसलमान का झुण्ड जब गुरूद्वारे में पहुँचता है तो 'सतसिरी अकाल' और 'अल्लाह हो अकबर' के नारे बुलंद हो जाते हैं। चारों तरफ हाहाकार मच जाता है। लेकिन तुर्कों को एक भी औरत नहीं दिखती है सिर्फ कुएँ के अंदर से चीख पुकार सुनाई पड़ती है।

जब सबकुछ उजड़ चुका था तब गाँव में रोशनी ने अपने पंख खोले थे। परंतु उस वक्त चीलें, कौऐ ढेरों के ढेरों आसमान में उमड़ने लगे, कुएँ के ऊपर, घरों के मुंडेरों के ऊपर जगह-जगह गिद्ध मँडराने लगे थे। सुनसान गलियों में बिखरी लाशें उस वक्त गाँव की निःस्तब्धता को और गहरा बना रही थी। हालात बदल चुका था। बदलते हुए हालात में अंग्रेज का हवाई जहाज गाँव के ऊपर घरघराते हुए तीन बार उड़ता है। लेकिन उसका उड़ना किस अर्थ का सबकुछ ख़त्म हो चुका था।

जान-माल के नुकसान के आँकड़े इकट्ठा किए जाने लगते हैं। कई गाँव जल चुके होते हैं। हजारों की तादाद में हिंदू-मुस्लिम और सिख मौत की घाट उतार दिए जाते हैं। मुहल्ले-मुहल्ले में रिलीफ कमेटी नियुक्त की जाती है। जान-माल की हुई क्षति का सटीक जानकारी लेने का प्रयास किया जा रहा है। रिचर्ड और लीजा का प्रसंग इन सब के बीच स्वाभाविक रूप से चलता है। लीजा की बिगड़ती हालत देखकर रिचर्ड उसे घुमाने के लिए ले जाना चाहता है और लार्क पक्षी दिखाना चाहता है। लेकिन लीजा मना करते हुए कहती है कि इस जलते हुए गाँव में और जगह-जगह लाशों के ढेर के बीच तुम कैसे लार्क पक्षी की आवाज़ सुन सकते हो। इस पर क्रूर रिचर्ड कहता है यह हमारा देश नहीं है।

अमन कमेटी अपना काम शुरू कर देती है। हरनामसिंह अपने बेटे इकबालसिंह के लिए परेशान था। प्रकाशो को अल्लाहरक्खा ने जबरदस्ती ब्याह लिया था। किसी का बेटा लापता है तो किसी की बेटी। अमन कमेटी द्वारा और आँकड़े इकट्ठा करने से इस बात का पता चल रहा था कि जान-माल का नुकसान हिंदू और मुसलमान का लगभग बराबर हुआ था। कांग्रेस और मुस्लिम लीग अब करीब आ गए थे और सियासी चाल को बखूबी समझ गए थे। फिर भी कुछ हिंदू बहुतायत मुसलमानी इलाके का अपना मकान बेचकर अपने लोगों के बीच जा रहे थे और मुसलमान हिन्दुओं के मुहल्लों से निकलकर हजार-हजार की संपति पाँच सौ में बेच कर जा रहे थे।

कांग्रेस के बख्शी जी, मुस्लिम लींग के हयातबख्श आपस में मतभेद भूलकर अमन काम में लग गये थे। देवदत्त हिंदू, मुस्लिम और सिखों के प्रमुख लीडरों को वाइस-प्रेजिडेंट चुनकर अमन कायम करने की अपील करने को कहा गया। बस का इंतजाम किया जाता है जिसमें लाउड स्पीकर लगकर जगह-जगह घूमकर अमन की अपील की जाएगी। बस आती है जिसमें बैठा मुरादअली लाउडस्पीकर पर हिंदू-मुस्लिम एकता का नारा लगा रहा है। नत्थू मारा गया है वरना वह सूअर मरवाने वाले इस मुराद अली को पहचान लेता। रिचर्ड और लीजा स्वस्थ दिखाई दे रहे हैं। रिचर्ड का तबादला दूसरी जगह हो गया है। उसकी तरक्की हो गई है। रिचर्ड लीजा को यहाँ जो कुछ हुआ वह सुनाना चाहता था, लेकिन लीजा अपने कंधे बिचका देती है जैसे कह रही हो तुम सुनाओ न सुनाओ इससे अब कोई खास फ़र्क नहीं पड़ता है।

कथावस्तु :-

सांप्रदायिकता विचारधारा की पृष्ठभूमि पर तमस अत्यंत ही सफल उपन्यास है। देश विभाजन के कुछ समय पहले की मानवीयता के विघटन की गाथा का चित्रण तमस में किया गया है। यह उपन्यास देश-विभाजन और आजादी के लगभग तीन दशक के बाद लिखा गया है। देश आजादी के बाद भी अँधेरे में जी रहा है। इस देश में आज भी सांप्रदायिकता रूपी अंधकार नहीं छटा है। सांप्रदायिकता का जीता-जागता उदाहरण हमें आए दिन देखने को मिल जाता है। उपन्यासकार ने घटना-काल भले ही आजादी के कुछ समय पहले का लिया है, लेकिन उसका उद्देश्य वर्तमान में फैल रही सांप्रदायिकता की भावना को उजागर करना ही रहा है। इसकी पृष्ठभूमि को तैयार करने में आजादी से कुछ समय पूर्व का वह माहौल सही है। समय विस्तार की दृष्टि से यह उपन्यास स्वतंत्रता से पूर्व मात्र पाँच दिनों की कहानी कहता है। परंतु कथा में जो प्रसंग, संदर्भ और निष्कर्ष उभरते हैं, वह केवल पाँच दिन की कथा न रहकर बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के हिंदुस्तान की अब तक की

कथा हो जाती है । उपन्यास में जाति-प्रेम, धर्म, संस्कृति, परंपरा, इतिहास और राजनीति जैसे सभी संकल्पनाओं की आड़ में अपना उल्लू सीधा करने वाली प्रतिगामी शक्तियों को खुले तौर में प्रस्तुत किया गया है।

तमस किसी एक व्यक्ति की कहानी नहीं है । उपन्यासकार इसमें विभिन्न पात्रों को अलग-अलग, लेकिन एक साथ लेकर चलते हैं । नत्थू, उसकी पत्नी और मुरादअली की अपनी कहानी है, डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड और उसकी पत्नी लीजा की अपनी कहानी हैं, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लीडरों की अपनी कहानी है, हरनामसिंह और बंतो की अपनी कहानी है, तो शहनवाज अपने ढंग का पात्र है, किंतु इन समस्त कहानियों में एक ऐसी सूत्रबद्धता है जो कथानक को कहीं बिखरने नहीं देती है । सभी के चरित्र अंधकार में मिलकर समाज में फैलते जा रहे अंधकार को सामने लाते हैं । यह अंधकार हमारे समाज में उस समय ही नहीं कई शताब्दियों से आज तक छाया हुआ है । इस विषय में महीप सिंह कहते हैं "घृणा, विद्वेष सांप्रदायिक उन्माद और इन सबसे उत्पन्न विचार और व्यवहारजन्य क्रूरता इस देश में कितनी ही शताब्दियों पहले पनपी और समय समय पर अपना रूप बदल-बदल कर नंगा नाच नाचती रही । विदेशी जातियाँ एक के बाद एक आती रही और लूट खसोट तथा व्यापक नरसंहार द्वारा इस भयावह आग्नि को हवा देती रही । देश का सामान्य जन बाहर विदेशी आक्रांताओं द्वारा रौंदा जाता रहा और अंदर जात-पात, ऊँच-नीच के क्रूर असमानता में पिसता रहा । तमस की इन पाँच दिनों की कहानी को इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखे बिना, मुझे लगता है, समस्या के बहुत से पहलू हमसे छूट जाएगा ।"[1]

उपन्यास के आरंभ में ही गरीब नत्थू को सूअर मारने के लिए विवश किया जाता है । उसके मना करने पर पाँच का नोट थमाया जाता है । मुराद अली ने चेतवानी भी दी थी "इधर इलाका मुसलमानी है । किसी मुसलमान ने देख लिया तो लोग बिगड़ेंगे । तुम भी ध्यान रखना । हमें भी यह काम बहुत बुरा लगता है मगर क्या करें, साहिब का हुक्म है, कैसे मोड़ दें ।"[2] बाद में उस सूअर को मस्जिद के सीढ़ियों में फेकने से ही शहर में दंगा हो जाता है । अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए अवसरवादी लोग हथियार के रूप में सांप्रदायिकता का इस्तेमाल करते हैं । मस्जिद में सूअर फेकवाने वाला मुराद अली मुसलमान है । बड़े ही ज्ञानी, संस्कृत के धुरंधर विद्वान कहे जाने वाले वानप्रस्थी जी हिन्दुओं में हिंसा को उत्तेजित करने वाली बात कहते हैं । उपन्यास में साफ़ दिखता है कि जन-सामान्य हिंसा में भाग लेना नहीं चाहते हैं लेकिन इनके धार्मिक लीडर इन्हें उकसाते हैं । 'मुस्लिम लीग' और 'हिंदू महासभा' उन्हें विभाजित करते हैं और आम जनता न चाह कर भी हिंसा करने लगती

हैं। नत्थू चमार शहर में दंगे फूटने के अपराध-बोध से भर उठता है। एहसानअली हरनामसिंह को देखकर लज्जित हो जाता है, राजो अंत तक हरनामसिंह और बंतो की मदद करती है, एहसानअली का बेटा रमजान हरनामसिंह को मारने का प्रयत्न करता है मगर चाह कर भी उसके हाथ नहीं उठते। ये उपन्यास के ऐसे अंश है जिसमें मानवीय पर्तों में झाँकने पर मानवता के अस्तित्व का अनुभव होता है।

सांप्रदायिक वैमनस्य के बीज जन-सामान्य में बलपूर्वक डाले जाते हैं, जो समय के साथ अंकुरित हो कर अपनी जड़े मजबूत कर लेते हैं। देवव्रत द्वार रणवीर को दी गयी शिक्षा इसका उदाहरण है। उसे मुसलमानों को 'म्लेच्छ' बताकर भड़काया जाता है। इन सब बातों को सुनकर उसके लिए वह सारे मुसलमान जो उसके पड़ोसी है, जिसे वह रोज देखता है वह अब पड़ोसी न रह कर म्लेच्छ बन जाते हैं। मास्टर देवव्रत ही रणवीर को मुर्गा कटवा कर उसमें म्लेच्छों को नष्ट करने के लिए मानसिक रूप से दृढ़ करता है और सांप्रदायिकता की बीज उसके मन में अंकुरित होती हुई और विषवृक्ष के रूप में बढ़ता जाता है जो उसे मुसलमानों पर डालने के लिए तेल उबलवाता है, शस्त्र इकट्ठा करवाता है। उसके मित्र इंद्र से गरीब इत्रफरोश की हत्या करवाता है।

शहनवाज उपन्यास का एक ऐसा चरित्र है, जिसके माध्यम से रचनाकार व्यक्ति-मन के दो संवेदनात्मक पक्षों को उजागर करते हैं। शहनवाज सांप्रदायिक के प्रभाव से अलग रघुनाथ का एक सच्चा मित्र, किंतु वह एक मुसलमान' भी है। मित्र के रूप में वह रघुनाथ की सहायता करता है मगर हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों को मारता देख रघुनाथ के हिंदू नौकर 'मिलखी' को सीढ़ियों से लात मारकर गिरा देता है।

उपन्यास में स्वतंत्रता से कुछ समय पूर्व तत्कालीन राजनीति और मूल्यहीनता का भी सटीक वर्णन मिलता है। कांग्रेस कार्यकर्ता प्रभात फेरी करते हैं, ऊँचे स्वरों में नारा लगाते हैं, देशभक्ति गीत गाते हैं, तामीरी काम के लिए जाते हैं, मगर सभी अपने-अपने स्वार्थों में जकड़े हुए हैं। कांग्रेस कार्यकर्ता में देश के प्रति आस्था पूर्णतः समाप्त हो चुकी है। वे गाँधी जी के रचनात्मक कार्य में अपना नाम जोड़ना चाहते हैं, लेकिन उसमें भाग लेने से बचने के लिए बहाना बनाते हैं। मास्टर जी जब नालियाँ साफ करने से मना करते हैं तो शंकर कहता है "मास्टर जी, हमें प्रचार करना हैं, कौन सचमुच की नालियाँ साफ करनी हैं। नाली मैं साफ करूँगा, तुम कड़ाही में कूड़ा उठाते रहना।"[3] उनका लक्ष्य खुद को बड़ा दिखाना और एक दूसरे की खिचाई करना ही रह गया। सभी बड़े-बड़े राजनीतिक सम्मेलन में भाग लेना चाहते हैं, किस तरह उसका नाम बड़े लोगों में शुमार हो जाए, लेकिन जब स्थिति विषम हो जाती है तो वे देश सेवा छोड़कर खुद को बचाने में लग जाते हैं। मेहताजी और शंकर जैसे कार्यकर्ता इसके उदाहरण है। इन सबों के बीच पागल समझे जाने वाले जरनैल में एक सच्ची देशभक्ति दिखाई

पड़ती है। मगर उसकी सच्ची देशभक्ति की कीमत उसे जान गंवाकर चुकानी पड़ती है। मुस्लिम लीग के कमेटी में भी स्वार्थपरता दिखाई पड़ती है। इन्हें पाकिस्तान चाहिए। उनके नजर में हिंदू का साथ दे रहे मुसलमान काफ़िर हैं और उनलोगों के लिए अपशब्द का प्रयोग करता हुआ मुस्लिम लीग का सदस्य कहता है – "अजीज़ और हकीम हिन्दुओं के कुत्ते हैं। हमें हिन्दुओं से नफरत है इन कुत्तों से नफरत है.....मौलाना आज़ाद हिन्दुओं का सबसे बड़ा कुत्ता है। गाँधी के पीछे दुम हिलाता फिरता है, जैसे ये कुत्ते आपके पीछे दुम हिलाते फिरते हैं।"[4] हयातबख्श जैसे लीडर पाकिस्तान जिदाबाद के नारे लगते हैं, मगर जब दंगा फैल जाता है तो खुद अपनी जान बचा कर भाग जाते हैं।

उपन्यास में राजनीति का जैसा चित्रण हुआ है, उसमें देशभक्ति और ईमानदारी की कमी दिखाई पड़ती हैं। कम्युनिस्ट कार्यकर्ता को रचनाकार ने अपने कार्य तथा अपने विचारधारा के प्रति पूर्णतः तटस्थता दिखाई है। सोहनसिंह और मीरदाद दंगे वाले स्थिति में अपने-अपने समुदाय को समझाने का प्रयास करते हैं। अंग्रेजों की कूटनीति को वे भली-भांति समझते हैं। अपने समुदाय के लोगों को इस कूटनीति से परिचित करना चाहते हैं, मगर सांप्रदायिकता का प्रभाव इतना बढ़ गया था, कि कोई उनकी बात नहीं समझता है। कम्युनिस्ट का देवदत्त भी दंगे की स्थिति में अमन के लिए बहुत प्रयास करता है। अमन कमेटी का गठन भी करवाता है। लेकिन तब तक पूरा शहर दंगे की आग में झुलस चुका था।

सिख समुदाय की सांप्रदायिकता अलग रूप में देखने को मिलती है। दंगे की स्थिति में गाँव के सारे सिख गुरुद्वारे में इकट्ठा हो जाते हैं। मुसलमान गुरुद्वारे पर हमला कर देते हैं, जिसमें बहुत सारे सिख और मुसलमानों की जान चली जाती है। मुसलमानों को गुरद्वारे में आता देख अपनी इज्जत की रक्षा के लिए सिख महिलाओं का कुएँ में डूब मरना उपन्यास की मार्मिक अंश है। यह सभी सांप्रदायिकता के अंजाम को दर्शाता है।

उपन्यास में रिचर्ड और लीजा की कहानी भी एक ओर चलती है। अंग्रेजी हुकूमत का डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड को भारतीय इतिहास जानने की रुचि है, मगर दंगे से जल रहे शहर को वह रोकने का प्रयास नहीं करता। वह चाहता तो दंगा होता ही नहीं, मगर सांप्रदायिक दंगे को फैलाने के पीछे वह स्वयं है तो वह क्यों रोके ? उसकी पत्नी लीजा यह सब समझती है, लेकिन वह भी कुछ नहीं कर सकती। दंगे में सब कुछ तबाह होने के बाद अंग्रेज गाँव में हवाई जहाज उड़वाते हैं, अमन कमेटी बनती है, जगह-जगह रिलीफ कैम्प बनते हैं। दंगे में नुकसान के आँकड़े लिए जाते हैं और अंत में पता चलता है कि दंगे में मरने वालों में हिंदू और मुसलमान दोनों लोगों की संख्या लगभग बराबर है।

तमस में भारतीय इतिहास के एक ऐसे अन्धाकरपूर्ण युग का चित्रण हुआ है, जिसमें मानवीय मूल्य एवं पारस्परिक विश्वास मृतप्रायः हो चुका है, किंतु मृत्य-विघटन के बीच मानव के प्रति विश्वास बना हुआ है। जो कुछ भी इस उपन्यास में अंकित हुआ है वह कटु, वीभत्स और सत्य है। जो न केवल उस समय की तत्काल, बल्कि हमें भविष्य के प्रति सचेत करता है। वर्तमान परिस्थिति में भी बहुत अधिक परिवर्तन नहीं आया है। बल्कि आज सांप्रदायिकता का क्षेत्र और अधिक बढ़ गया है। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तमस मानव के अन्दर छुपे पशुता को उजागर करता हुआ मनुष्य के मनुष्यत्व पर सवाल खड़ा करता है।

3.ख. भारतीय समाज में सांप्रदायिकता की समस्या और तमस

समाज और साहित्य में परस्पर घनिष्ठ संबंध होता है। साहित्यकार समाज में होने वाली घटनाओं को ही लेखनीबद्ध करता है। किसी भी सभ्यता संस्कृति, विकास तथा व्यवस्था को वहाँ के साहित्य में देखा जा सकता है। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। किसी भी साहित्यकार का यह दायित्व होता है कि अपने साहित्य में समकालीन समाज की समस्याओं को आम-जन के सामने पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करें। साहित्यकार संवेदनशील मनुष्य होता है और अपने संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए वह साहित्य की विधा का चुनाव उस रूप में करता है। संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास सबसे सशक्त माध्यम है क्योंकि अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास का क्षेत्र सबसे अधिक व्यापक होता है। भारतीय समाज में सांप्रदायिकता की समस्या का इतिहास पुराना रहा है, लेकिन इसकी प्रखरता स्वतंत्रता के समय अधिक मिलती है।

भारतीय समाज में सांप्रदायिकता की समस्या बहुसंख्यक लोग मध्यकाल से ही देखते हैं। मध्यकाल में मुगलों ने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया था। साम्राज्य स्थापित होने से मुस्लिम समाज का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा। दोनों में सामाजिक और संस्कृति से रूप से भिन्नता थी। बहुत अधिक समय तक एक ही समाज में एक साथ रहने से दोनों में मेल-मिलाप भी हुआ। दोनों एक दूसरे से सहृदय रूप से जुड़े परंतु धर्म की भिन्नता का बीज कहीं न कहीं दोनों के अंदर विद्वमान रहा। इसके बाद भारत में अंग्रेजों का आगमन हुआ। व्यापार के उद्देश्य से आये अंग्रेजों ने धीरे-धीरे भारत में अपने उपनिवेश स्थापित कर लिए। उपनिवेश स्थापित करने के लिए उन्हें भारतीय एकता को खंडित करने की आवश्यकता थी। इसके लिए उन्होंने धर्म की भिन्नता का बीज जो हिंदू-मुस्लिम में पहले से विद्वमान था उसको अंकुरित करने का कार्य किया। उनका उद्देश्य भारतीय एकता को तोड़कर हमारी ताकत कम करना था और वे इसमें सफल भी रहें। इसका प्रभाव यह

हुआ कि भारतीय समाज में सांप्रदायिकता की भावना का विकास हुआ, जिसने धीरे-धीरे दोनों के अंदर एक खाई पैदा कर दिया। इसी सांप्रदायिकता की समस्या से ग्रसित भारतीय समाज का वर्णन तमस में मिलता है।

तमस में भारत-विभाजन के पूर्व का सीमावर्ती प्रदेश पंजाब के समस्त परिवेश का चित्रण है। यद्यपि लेखक पंजाब का रहनेवाला है। लेखक ने विभाजन से पूर्व भारतीय समाज की दशा को जिया है। भारतीय समाज में विद्यमान सांप्रदायिकता की समस्या को उन्होंने देखा है और उसकी अभिव्यक्ति तमस उपन्यास में की। इस उपन्यास में सांप्रदायिक दगें का शिकार होता पंजाब का छोटा सा हिस्सा पूरे भारतवर्ष के समाज की सांप्रदायिक स्थिति को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। भीष्म साहनी स्वयं महेश दर्पण के साथ साक्षात्कार में एक जगह कहते हैं "विभाजन की त्रासदी पर भी लिखा था तो एक सबक के तौर पर नहीं लिखा था एक विकट मानवीय स्थिति को देख पाने की दृष्टि से लिखा था।"[5] उपन्यासकार ने समाज के विभिन्न वर्गों के माध्यम से समाज की मौजूदा परिस्थिति में क्रमगत आचार और नैतिक धारणा में वैषम्य और विरोध की ओर संकेत करने का सफल प्रयास किया है। उसके कारण तमस उपन्यास में हिंदू, मुस्लिम, सिख और उच्चवर्ग, निम्न वर्ग एवं मध्यवर्ग के परिवारों को सामाजिक रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, भावनाओं आदि के विस्तृत चित्र उभर कर आए हैं। ये चित्र संपूर्ण सामाजिक समस्या को सजीव रूप से पाठक के सामने उपस्थित कर देते हैं।

भारतीय हिंदू-मुस्लिम संस्कृति में भिन्नता है। भारतीय हिंदू समाज में गाय को माँ माना जाता है और उसकी पूजा की जाती है। वही मुस्लिम समाज गाय का मांस खाना उचित मानता है। मुस्लिम समाज को सूअर से सख्त नफरत है। सूअर को खाना तो क्या, उसे दूर से देखना भी वे गुनाह मानते हैं। तमस उपन्यास की कथा का आधार सूअर मार कर मस्जिद में फेकने से ही बनाया गया है। उपन्यास में सूअर को मार कर मस्जिद में फेकना सांप्रदायिक दंगे का मुख्य कारण बनता है। मुरादअली जब नत्थू को सूअर मारने के लिए कहता है तो उसे सतर्क भी करता है कि "इधर इलाका मुसलमानी है। किसी मुसलमान ने देख लिया तो लोग बिगड़ेंगे, तुम भी ध्यान रखना। हमें भी यह काम बुरा लगता है, मगर क्या करें, साहिब का हुक्म है, कैसे मुँह मोड़ दें।"[6] यहाँ साफ पता चलता है कि सूअर को लेकर मुस्लिम समाज में घृणा का भाव है और उसको मार कर मस्जिद के सीढ़ियों में फिकवाना मुसलमानों को आहत करता है और दंगा का कारण बनता है। इस माहौल में हिन्दुओं में भी गाय को लेकर बातें निकलने लगती है। वानप्रस्थी जी द्वारा बुलाएँ गए हिन्दुओं की बैठक में एक व्यक्ति कहता है "सुना है एक गाय भी काटी गई है। माई सत्तो की धर्मशाला के बाहर उसके अंग फेंके गए हैं। मैं नहीं

जानता कहाँ तक यह खबर ठीक है, लेकिन सुनने में जरूर आया है।"[7] इस प्रकार हिंदू-मुस्लिम दोनों में पशु को लेकर विवाद हो जाता है।

सांप्रदायिकता की समस्या भारतीय समाज में अंग्रेजों के आने के बाद ज्यादा विकसित हुई है। अंग्रेजों ने हमारी धार्मिक भिन्नता का फायदा उठाया। तमस में भी रिचर्ड अर्थात् सलोतरी साहब मुराद अली से सूअर मरवा कर मस्जिद में फेंकवाता है। जब मुसलामनों को यह पता चलता है कि किसी ने सूअर मारकर मस्जिद के सीढ़ियों पर फेंका तो वह इसका पूरा जिम्मेवार हिंदुओं को मानता है। अपनी आहत हुई धार्मिक भावना का बदला वे हिंदुओं की धार्मिक भावना को चोट पहुँचा कर लेना चाहते हैं। इसलिए जब बख्शी और जरनैल मिल कर मस्जिद की सीढ़ियों से सूअर को हटाते हैं उसी वक्त एक मुस्लिम व्यक्ति गाय को दौड़ाता ले जा रहा होता है। "तभी कुएँ की ओर से किसी के भागते क़दमों की आवाज़ आई। तीनों ने घूमकर देखा, एक गाय भागती आ रही थी। उसके पीछे-पीछे एक आदमी सिर पर मुंडासा बाँधे और हाथ में डंडा लिये गाय के पीछे-पीछे भागता हुआ, उसे हाँके लिये जा रहा था। उसकी छाती खुली थी और गले में तावीज झूल रहा था। चिकनी खालवाली, बादामी रंग की गाय थी, मोटी-मोटी चकित-सी आँखें। डर के ही मारे उसकी पूँछ उठी हुई थी। लगता जैसे रास्ता भटक गई है। तीनों ठिठक गए। मुंडासे वाले आदमी ने मुँह लपेट रखा था। गाय को हाँकता हुआ वह सड़क पर गुजरा और फिर उसके दाएँ हाथ एक गली की ओर ले गया।"[8]

भीष्म साहनी ने भारतीय समाज के उस दौर का चित्रण अपने उपन्यास में किया है, जब मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच की खाई बहुत गहरी हो गई थी। घोषित रूप से मुस्लिम लीग मुसलमानों की पार्टी बन चुकी थी और वह यह प्रचार कर रही थी कि कांग्रेस हिन्दुओं की पार्टी है। इन दोनों के बीच अलगाव पैदा करने की कोशिश औपनिवेशिक शासकों द्वारा की जा रही थी। मगर अब भी कुछ मुसलमान ऐसे थे जो कांग्रेस के साथ थे, लेकिन लोग मुस्लिम लीग के समर्थक उन्हें मुसलमानों के दुश्मन के रूप में देखती थी। यहाँ तक की मौलाना अबुल कलाम को मुस्लिम लीग के सदस्य हिन्दुओं का कुत्ता समझते हैं। इन संदर्भों को उपन्यासकार इस प्रकार दिखाते हैं – "मौलाना आज़ाद हिंदुओं का सबसे बड़ा कुत्ता है। गांधी के पीछे दुम हिलाता फिरता है.....हिंदुस्तान की आजादी हिन्दुओं के लिए होगी, आज़ाद पाकिस्तान में ही मुसलमान आज़ाद होंगे।"[9]

आजादी से पूर्व भारतीय समाज में शिक्षा का अभाव था। जिसका फायदा अंग्रेजों के साथ-साथ विभिन्न राजनीतिक दलों को मिला। वे धर्म के नाम पर हिंदू, मुस्लिम, सिख को आपस में लड़ाकर अपनी स्वार्थ पूर्ति करते गये। गरीब और अशिक्षित जनता बिना सोचे समझे अपने ही पड़ोसी भाई का गला काटने लगे

। मुसलमान को भी यह लगता था कि वे पिछड़े हैं और कांग्रेस और हिंदू दल उन्हें हमेशा दबाते आये हैं और अगर देश आजाद हुआ तो भी उन्हें हिन्दुओं का गुलाम बनकर रहना होगा। इस स्थिति पर विचार करते हुए डॉ. मुफख्खर एहतेशाम जुबैरी कहते हैं "शिक्षा और राजनीतिक चेतना के अभाव में भारतीय मुसलमान प्रगति-पथ पर हिन्दुओं से पीछे रह गए थे। कांग्रेस के हिंदू सदस्यों की अधिकता के कारण अधिकांश अधिकार हिन्दुओं को ही प्राप्त हुए थे। प्रतिक्रिया स्वरूप प्रबुद्ध मुसलमानों में भी अपनी जाति संगठित करने की भावना का जागरण हुआ। मुस्लिम लीग का उदय उनकी आकांक्षाओं के प्रस्फुटन का ही परिणाम था। अंग्रेजों एवं कांग्रेस दोनों द्वारा ही आकांक्षापूर्ति न हो सकने के कारण मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग पाकिस्तान का समर्थक बनता गया। हिंदू धार्मिक पुनरुत्थानवादी संगठनों ने भी सांप्रदायिकता के विष-वृक्ष को और भी मजबूत बनाने वाला परिवेश, निर्माण में सक्रिय भूमिका निभायी और धीरे-धीरे सांप्रदायिक विद्वेष अत्यंत तीखे तेवर और आक्रामक मुद्रा में मुखरित हुआ।"[10] तत्कालीन समय में अपने पिछड़ेपन का कारण मुस्लिम समाज ने हिन्दुओं और शासक वर्ग को मान लिया जबकि स्वयं की परम्परागत सोच को बदलने की कोशिश नहीं की। दूसरी ओर हिन्दुत्ववादी शक्तियों ने भी मुसलमानों की इस सोच को पुख्ता कर दिया। ऐसे में सांप्रदायिक विचारों को जन्म लेने का अनुकूल माहौल मिला। जिसने कालांतर में विभाजन तक की यात्रा की और यह समाज में विभाजन की दहलीज पर आकर ख़त्म न हुई, बल्कि उसके बाद भी अनवरत चलती रही।

स्वतंत्रतापूर्व के भारतीय समाज में अंग्रेजों का सफलतापूर्वक अपना शासन चला पाने का मूलमंत्र भी यही था। अंग्रेज लगातार भारतीयों की एकता खत्म करने का प्रयास करते रहे और भारतीयों ने हमेशा अपनी नासमझी का उदहारण देकर अंग्रेजों को षड्यंत्र में कामयाब होने में मदद की। अंग्रेज औपनिवेशिक नीति के तहत देश के लोगों को विभाजित कर रहे थे। वही समाज में उग्र हिंदू और उग्र मुस्लिम माहौल को और ख़राब करने का काम कर रहे थे। उपन्यास में वानप्रस्थी जी जैसे कट्टर हिंदूवादी चरित्र है, जो वैसे तो पुण्यात्मा बनते फिरते हैं लेकिन अपने भड़काऊ भाषण द्वारा हिंदुओं को उकसाते हैं। वानप्रस्थी जी देवदत्त जैसे युवकों का दल बनाकर तथाकथित मुसलमान शत्रुओं से मुकाबला करने के लिए उन्हें तैयार करते हैं। इसके साथ ही वे शहर के लोगों को दुश्मनों का मुकाबला करने के लिए तैयार होने की नसीहत देते हैं – "सबसे पहले अपनी रक्षा का प्रबंध किया जाना चाहिए। सभी सदस्य अपने-अपने घर में एक-एक कनस्तर कड़वे तेल का रखें एक-एक बोरी कच्चा या पक्का कोयला रखें। उबलता तेल शत्रु पर डाला जा सकता है, जलते अंगारे छत से फेंके जा

सकते हैं।"[11] भारतीय समाज में कुछ कट्टरवादी हिन्दुओं के कारण सबको इस प्रकार के हिंसा का शिकार होना पड़ता है। माहौल को और अधिक बिगाड़ने में इन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उपन्यास में यह साफ दिखता है कि इन दंगों में उन लोगों का कुछ भी नहीं बिगड़ता जो धनाढ्य हैं। सर्वाधिक क्षति उन लोगों की होती है जिन्हें दो वक़्त की रोटी के जुगाड़ करने के लिए घर से बाहर निकलना पड़ता है। ऐसे लोग दंगो की चपेट में जल्दी आ जाते हैं। ननकू, मिलखी, गुरखा आदि ऐसे पात्र हैं, जिनके मकान मालिक अपनी जान बचाने के लिए सुरक्षित स्थलों के लिए चले जाते हैं और घर की सुरक्षा की जिम्मेदारी अपने नौकरों को सौंप जाते हैं। इन नौकरों के प्राणों का क्या कोई मोल नहीं है, ऐसा लगता है जैसे इनके प्राणों का कोई मोल नहीं होता या फिर ये इंसान ही नहीं है। आलोचक गोपाल राय ऐसी स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं "इस लड़ाई में शिकार हिंदू-मुस्लिम नेता नहीं होते, फतहचंद की टाल पर काम करनेवाला, मजदूरी कश्मीरी होते हैं, गली-गली दूध बेचने वाला मियाँ होता हैं, बूढ़े हरभजन सिंह होते हैं, इकबाल सिंह होता है और सैदपुर जैसे गाँव के लोग होते हैं, जहाँ पुरुष मारे जाते हैं और औरतें बच्चों को लेकर कुएँ में कूद जाती हैं।"[12] सामान्य वर्ग के मुस्लिम निर्दोष गरीब इत्रफरोश की हत्या समाज में फैल रहे सांप्रदायिक स्थिति को अभिव्यक्त करता है। इत्रफरोश हिंदू महासभा के सदस्य इंद्र के हाथों मारा जाता है। उस समय के बिगड़ते सामाजिक माहौल का चित्रण भीष्म साहनी इस प्रकार करते हैं "बाजार में फाहे ज्यादा बिकते हैं, घरों में इत्र और तेल ज्यादा बिकता है, इत्रफरोश कह रहा था। सहसा इंद्र लपका और उसने पैंतरा मारा। इत्रफरोश को लगा जैसे उसके बाएँ हाथ से कोई चीज जोर से हिली है। उसे भास हुआ जैसे कोई चीज चमकी भी है। पर वह खड़ा होकर घूमकर देखे कि क्या बात है तब तक उसे थैले के नीचे तीखी चुभन का-भास हुआ। इंद्र का निशान ठीक बैठा था वार करने के बाद सरदार के आदेशानुसार उसने चाकू को थोड़ा मोड़ दिया था और अंतड़ियाँ के जाल में फँसा भी दिया था।"[13] इसी प्रकार स्कूल का चपरासी भी मारा जाता है और भिश्ती भी जो शेख के प्यासे बिलबिलाते बच्चों के लिए पानी लाने जाता है। उपन्यास में तत्कालीन भारतीय समाज में फैल रहे सांप्रदायिकता की समस्या का सजीव वर्णन मिलता है।

भारतीय समाज में अंग्रेजों के आने से पूर्व हम देखते हैं कि हिंदू-मुस्लिम एक ही मुहल्ले में रहते हैं। तमस में यह दिखाया गया है कि जब सांप्रदायिक दंगा फैलता है तो जहाँ हिंदू की संख्या अधिक होती है वहाँ से मुस्लिम जान बचा कर भागने लगते हैं और जहाँ मुसलमानों की संख्या अधिक होती है वहाँ से हिंदू जान बचाकर भागने लगते हैं। उपन्यास में हरनामसिंह और बंतो इसी समस्या से ग्रसीत है। दंगे की स्थिति में उन्हें

अपना घर और दुकान छोड़कर जान बचाकर भागना पड़ता है। जिस गाँव में वे वर्षों से रहते हैं वहाँ का कोई व्यक्ति उसकी मदद नहीं करता है। वहीं दूसरी ओर दंगे में मुसलामनों से पकड़े जाने के डर से उसकी बेटी कुएँ में कूद कर जान दे देती है। उसके बेटा इकबाल सिंह को पकड़ कर मुसलमान लोग इकबाल अहमद बना कर धर्म परिवर्तन करवा देते हैं। तरह-तरह से मजाक बनाकर उसे बेइज्जत किया जाता है। समाज में धार्मिक परिवर्तन की समस्या का वर्णन उपन्यासकार इस प्रकार करता है "वातावरण में गहरी संजीदगी और धर्म-भावना काँप रही थी। दिन ढलते-ढलते इकबाल अहमद की सुन्नत हुई। उसके लिए दर्द को बर्दाश्त करना बहुत कठिन नहीं रह गया था। बुजुर्ग सारा वक्त उसे सहारा दिए हुए थे और सुन्नत के वक्त बार-बार उसके कान में कह रहे थे, 'तेरा निकाह कराएँगे। बड़ी खुबसूरत औरत तुम्हें देंगे, कालू तेली की बेवा तेरी उम्र की है – जवान, गठीली। उसे देखकर तेरी रूह ख़ुश हो जाएगी। अब तू हमारा अपना है, अब तू शेख है, शेख इकबाल अहमद !"[14] यह पूरी स्थिति पूरे मानव जाति पर सवाल खड़ा करती है क्या यही धर्म है और अगर नहीं तो ऐसा कृत्य करने वाले धार्मिक, सच्चे धार्मिक कैसे कहे जा सकते हैं ? उपन्यास में यह संदर्भ भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर सवाल खड़ा करता है।

उपन्यास में मानवीयता की एक झीनी रेखा जरूर बनी है। उपन्यासकार ने समाज में कुछ ऐसे लोगों को भी दिखलाया जो भारतीय समाज के आदर्श को प्रस्तुत करने में सक्षम है, वे आपसी मारकाट और दंगे भरे माहौल में भी इंसानियत का फर्ज अदा करना नहीं भूलते। राजो और एहसानअली ऐसे ही पात्र हैं जो खतरा मोल लेते हुए हरनामसिंह और बंतों को अपने घर में पनाह देते हैं। एहसानअली हरनामसिंह की दुकान लूटकर आता है, लेकिन जब हरनामसिंह को अपने घर में देखता है तो उस पर घड़ों पानी गिर पड़ता है और उसे शर्मिंदगी महसूस होती है। इधर राजो हरनामसिंह के घर से लूटकर लाये गये बक्से में रखे गहनों की पोटली बंतों को दे देती है, क्योंकि वह जानती है कि ऐसे समय में धन ही काम आता है। रघुनाथ और शाहनवाज की दोस्ती भी उस समय की हिंदू-मुस्लिम सामाजिक एकता का उदाहरण है। दंगे भरे माहौल में भी शाहनवाज अपने दोस्त रघुनाथ से मिलने जाना हिंदू-मुस्लिम आपसी संबंध को अभिव्यक्त करता है।

अंततः कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में भारतीय समाज में व्याप्त सांप्रदायिकता की समस्या का वर्णन बड़ी ही सजीवता के साथ किया है। हिंदू-मुस्लिम और सिख इन सब में फैल रहे सांप्रदायिक कारकों का सूक्ष्म चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। समाज में हिंदू-मुस्लिम और सिख एक ही गाँव में रहते हैं, परंतु धार्मिक भिन्नता का फायदा उठाकर अंग्रेज किस प्रकार उन्हें सांप्रदायिक दंगों की आग में

झुलसा देते हैं। सभी में आपसी मित्रता के बावजूद जब दंगों की स्थिति आती है, तो वही एक-दूसरे के खून के प्यासे बन जाते हैं। समाज में आपसी हिंसा लूट-पाट और मार-काट का माहौल बन जाता है। धर्म परिवर्तन किए जाते हैं। समाज में धर्मान्धता इतनी बढ़ जाती है कि हिंदू-मुस्लिम एक-दूसरे से बदला लेने के लिए औरतों के इज्जत लूटने लगते हैं। नत्थू, मिलखी, इत्रफरोश और मिलखी जैसे निर्दोषों को अपनी जान गँवानी पड़ती है। अशिक्षा के कारण लोगों में धर्म के प्रति अंधआस्था देखने को मिलता है। समाज में सांप्रदायिकता को फैलाने में तत्कालीन राजनीतिक दल कांग्रेस और मुस्लिम लीग भी बहुत जिम्मेदार है। हिंदू-मुस्लिम में रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा की भिन्नता भी सामाजिक स्थिति को बिगाड़ने में महत्वपूर्ण भमिका निभाती है। पूरे माहौल को बिगाड़ने वाले अंग्रेजी सरकार बैठे-बैठे तमाशा देखती है। अतः तमस में स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय समाज में बढ़ रही सांप्रदायिक वैषम्य का चित्रण किया गया है और साथ ही भारत विभाजन की पृष्ठभूमि कैसे तैयार हुई इसका कच्चा-चिट्ठा खोला गया है।

3.घ. 'तमस' में सांप्रदायिकता के विभिन्न रूप

संविधान में भारत को एक धर्म-निरपेक्ष राज्य का दर्जा प्राप्त है। यहाँ पर सभी धर्म व संप्रदाय के लोग अपनी-अपनी धार्मिक मान्याताओं का पालन करते हैं। प्राचीन भारतीय समाज में भी संप्रदाय का रूप देखने को मिलता है। उस समय भी शैव संप्रदाय, वैष्णव संप्रदाय, बौद्ध व वैदिक संप्रदाय में संघर्ष भी होता था। इस संघर्ष में वैचारिक मतभेद था, इसमें शारीरिक हिंसा नहीं होती थी। इस्लाम का आगमन भी लूटपाट, साम्राज्य विस्तार एवं सत्ता अधिकार के लिए हुआ। उनमें आम जनता के बीच सांप्रदायिक संघर्ष के स्पष्ट संकेत नहीं मिलते हैं। मुसलमानों के इतने समय शासन करने से हिंदू-मुस्लिम दोनों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुए। इतने वर्षों तक साथ रहने से दोनों के संबंधों में घनिष्ठता आयी और रागात्मक रूप से भी वे एक-दूसरे से जुड़े।। इसके बाद हमारे देश में ब्रिटिश साम्राज्य का शासन शुरू हुआ। इस दूरी का फायदा उठा कर ब्रिटिश सरकार ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को अपनाया।

सामाजिक व सांस्कृतिक आदान-प्रदान के बावजूद दोनों संस्कृतियों ने अपने बीच एक दूरी बनाए रखी। यह दूरी कुछ कट्टर-पंथियों की वजह से और भी बढ़ी। हिंदू-मुस्लिम संबंधों में घृणा ब्रिटिश शासन काल से तीव्र होती गई। ब्रिटिश शासक स्वतंत्रता-संघर्ष प्रवाह को बाधित करने के लिए सांप्रदायिकता की समानांतर नीति बनाते रहे। ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के बाद ही सामाजिक असमानता, विभिन्न जातियों के बीच सत्ता प्राप्त करने की स्पर्धा के चक्रव्यूह में फँसकर आम जनता सांप्रदायिक दुर्भावना का शिकार बनती गई।

यद्यपि सांप्रदायिकता के विभिन्न रूप होते हैं मगर तमस उपन्यास में इसके मुख्यतः तीन रूप देखने को मिलते हैं। भारतीय सांप्रदायिकता के स्वरूप पर विचार करते हुए अभय कुमार दुबे लिखते हैं – "भारतीय संदर्भ में सांप्रदायिकता के चार मुख्य रूप हैं, हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई सांप्रदायिकता। चूँकि धर्मों का बुनियादी आधार अन्यीकरण के बजाय परस्पर सहिष्णुता के मूल्यों से सम्पन्न होता है, इसलिए सांप्रदायिक राजनीति धार्मिकता के स्वरूप और अभिव्यक्तियों को बदलने का प्रयास करती है, ताकि धर्म का इस्तेमाल किया जा सके। वह निजी जीवन में होने वाली धार्मिक गतिविधियों को सार्वजनिक दायरे में लाती है और इस तरह के मौके हासिल करने के लिए वह धार्मिक प्रतीत होने वाले नये कार्यक्रमों को गढ़ने का प्रयास भी करती है।"[15]

तमस उपन्यास में सांप्रदायिकता को मुख्यतः निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है-

1. हिन्दुत्ववादी सांप्रदायिकता

2. मुस्लिम सांप्रदायिकता

3. सिख सांप्रदायिकता

हिन्दुत्ववादी सांप्रदायिकता :-

भारत में हिन्दुत्वादी सांप्रदायिकता की शुरुआत प्रखर रूप से सन् 1880 और सन् 1890 के दशकों में हुई, जब बंगाल में गोहत्या के विरुद्ध आन्दोलन चला, जो शीघ्र ही उत्तर प्रदेश और बिहार तक फैल गया। यह आंदोलन मुसलमानों के खिलाफ था जबकि अंग्रेज अपनी छावनियों में व्यापक स्तर पर गोहत्या करने के लिए स्वतंत्र थे। उन पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। हिन्दू महासभा मुसलमानों का विरोध करती थी तथा मुस्लिम लीग हिन्दुओं का। सन् 1925 में जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जन्म हुआ तब से इसके मूल में मुस्लिम विद्वेष के अलावा सावरकर की हिंदुत्व की सैन्यवादी, अंधराष्ट्रवादी विचारधारा काम करने लगी। अरुण माहेश्वरी ने इनके संदर्भ में कहा है "यह मूलतः एक नस्लवादी संगठन है जो नस्लवाद को राष्ट्रवाद के रूप में पेश करती है। इसके हिंदुत्व का उत्स वी.डी. सावरकर की पुस्तक 'हिंदुत्व' है जिसमें भारत में हिन्दू को ही राष्ट्र बताया गया है तथा अन्यों को विजातीय बताते हुए हिन्दुओं के अधीनस्थ रहने की और हिन्दुओं का सैन्यीकरण करने जैसे तमाम बातें कहीं गई है।"[16]

सन् 1906 में बंगाल में मुस्लिम लीग का गठन होता है। मुस्लिम लीग के प्रतिनिधिमंडल ने तत्कालीन वायसराय से मुलाक़ात कर उन्हें एक स्मरण-पत्र दिया जिसमें मुसलमानों के लिए विशेष अधिकारों की मांग की गई थी। इसके पहले भी ब्रिटिश सरकार का झुकाव मुसलमानों की ओर था। इस प्रकार के संगठन का समर्थन हिन्दुओं में अपने जाति के संरक्षण का भाव पैदा किया और हिन्दू सांप्रदायिकता को गति मिली। हिंदुत्व के नस्लवादी पहलू पर जोर देते हुए सावरकर लिखते हैं "हिन्दू भारतीय राज्य के नागरिक मात्र ही नहीं हैं, क्योंकि उनका संगठन केवल इसी एक बात पर आधारित नहीं है कि वे सभी एक ही मातृभूमि को प्रेम करने की भावना से परस्पर आबद्ध हैं, अपितु वे उनकी रक्त की समानता के बंधन से भी एकता के सूत्र में आबद्ध हैं। वे एक राष्ट्र मात्र ही नहीं अपितु एक जाति भी हैं। जाति शब्द का मूल जन धातु से आरोपित है जिसका अर्थ है जनता या भ्रातृसंघ। एक ही धातु से उद्भूत हुई जाति की नसों में समान रक्त का संचार होता है और शब्द इसी अर्थ का बोधक है। सभी हिन्दुओं की नसों में उसी शक्तिशाली जाति का पावन रक्त प्रवाहित हो रहा है जिसका उद्भव उन वैदिक पूर्वजों अथवा सिन्धुओं से हुआ है।"[17]

हिन्दुत्ववादी शक्तियों ने सभी प्रतीकों और नायकों को जिनकी वीरता की कहानियाँ उनके अनुयायियों में प्रेरणा पैदा कर सकती हैं, मध्यकाल से चुना। उन्होंने भारतवर्ष के प्राचीन गौरव का पतन का कारण मध्यकालीन मुस्लिम शासन को माना है। तमस उपन्यास में लीजा और रिचर्ड का भारतीय इतिहास को लेकर किया गया संवाद वास्तवकिता को दर्शाता है। अंग्रजों ने किस प्रकार अशिक्षित भारतीयों का फायदा उठाया। हमें अपने इतिहास की सही जानकारी नहीं है और हम इतिहास को जाने बिना अपनी प्राचीन संस्कृति के पतन का कारण मुसलमानों को मानते हैं, उन्हें अपने से भिन्न जाति का मानते है और आपस में हिंसा करते हैं। तमस में रिचर्ड और लीजा का संवाद इस चीज को स्पष्ट करता है। रिचर्ड लीजा से कहता है "जो लोग मध्य-एशिया से सबसे पहले यहाँ आए, शताब्दियों के बाद उन्हीं के नाती-पोते अन्य देशों से इधर आए। नस्ल सबकी एक ही थी। वे लोग जो आर्य कहलाते थे और हजार वर्ष पहले यहाँ पर आए और वे भी जो मुसलमान कहलाते थे और लगभग एक हजार वर्ष पहले यहाँ पर आए-एक ही नस्ल के लोग थे। सभी एक ही मूल जाति के लोग थे। "इन बातों को ये लोग भी जानते होंगे ?" यहाँ के लोग कुछ नहीं जानते। ये वही कुछ जानते हैं जो हम इन्हें बताते हैं। फिर देर तक मौन रहकर बोला, "ये लोग अपने इतिहास को जानते नहीं हैं, ये केवल उसे जीते-भर हैं।"[18] यहाँ स्पष्ट रूप से पता चलता है कि जिस इतिहास को हम जानते हैं वह अंग्रेजों द्वारा बनाया गया है। उन्होंने हमें ऐसे इतिहास का पाठ-पढ़ाया जिससे हिन्दू-मुस्लिम की एकता नष्ट हो सके और वे आराम से शासन कर सके। शासन करने के लिए बनाया गया यह कूटनीतिपूर्ण इतिहास अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी वैसा ही

रहा। उनके चले जाने के बाद भी हिन्दू अपने प्राचीन गौरव के पतन का कारण मुसलमानों को मान कर आज भी आपस में लड़ रहे हैं।

'तमस' उपन्यास में हिन्दू जाति-संरक्षण की सांप्रदायिकता का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण मिलता है। उपन्यास में जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे की कुछ खबर हिन्दू जाति के संरक्षकों को मिलती है तो वे लोग किस प्रकार हिंसा को और बढ़ावा देने का कार्य करते हैं। उपन्यास में वानप्रस्थी जी और देवव्रत हिन्दू संरक्षक के लीडर हैं। जब उन्हें पता चलता है कि सूअर मारकर मस्जिद में फेक देने की खबर से स्थिति बिगड़ गई है, तो वे मंदिर में ही हिन्दुओं को संगठित करके सभा का आयोजन करते हैं। जिसमें वे अफवाहों के माध्यम से यह साबित करना चाहते हैं कि मुसलमान हिन्दुओं को मारने के लिए मस्जिद में लाठियाँ, भाले और तरह-तरह के असला इकट्ठा कर रहे हैं। अतः हिन्दुओं को भी अपने सुरक्षा का प्रबंध करना चाहिए। एक-एक कनस्तर तेल का और एक-एक बोरी कच्चा या पक्का कोयला रखना होगा जिससे समय आने पर वे मुसलमानों पर गर्म करके फेंक सके। साथ ही युवक समाज को सक्रिय करने की बात होती है। लाठी सिखाना और दंगो की स्थिति के लिए तैयार रहने की नसीहत दी जाती है। हिन्दुत्वादी सांप्रदायिकता का उदाहरण यह कथन व्यक्त करता है "इस विषय पर चर्चा की आवश्यकता नहीं है, युवक समाज पूरी तरह से सक्रिय है। और इस ओर पूरा ध्यान दिया जा रहा है। स्वयं वानप्रस्थी जी हिन्दू संगठन के पुण्य कार्य में बड़ी लगन के साथ काम कर रहे हैं। लेकिन प्रधान जी के सुझाव का मैं स्वागत करता हूँ, उनकी उदारता के ही बल पर हमारे अनेक काम संपन्न हो रहे हैं। हमें अपनी तैयारी में कोई कमी नहीं आने देनी चाहिए।"[19]

'हिंदुत्व' के नाम पर गो-वंश की रक्षा करने वाली हिन्दुत्ववादी शक्तियों ने गो-हत्या के मुद्दे को पैदा करके अपनी राजनीतिक और धार्मिक आजीविका का साधन बनाने का हथकंडा अपनाया है। गोहत्या के बारे में सुन कर हिन्दू तुरंत ही उत्तेजित हो जाते हैं और हिंसा के लिए उतारू हो जाते हैं। इसका फायदा विभिन्न राजनीतिक दल और लीडर उठाते हैं। तमस उपन्यास में गोहत्या की अफवाह के द्वारा फैलाये जा रहे हिंसा का पर्दा फाश किया गया है। लोगों के अंदर गो-वंश की रक्षा का भाव किस प्रकार है तमस का यह वाक्य स्पष्ट करता है "गो-वध हुआ तो यहाँ खून की नदियाँ बह जाएँगी।"[20]

तमस उपन्यास में हिन्दुत्ववादी सांप्रदायिकता का एक और रूप देखने को मिलता है। यह रूप युवकों का सांप्रदायिकता की ओर लगाव का है। उपन्यास में इस गंभीर समस्या को उजागर किया गया है। उपन्यास में लाला लक्ष्मीनारायण का लड़का रणवीर की पूरी कथा इस समस्या के इर्द-गर्द है। देवव्रत रणवीर को हिन्दू संरक्षक का लीडर बनाता है। जिसे युवक समाज को सक्रिय करने का कार्य मिला है। इसके लिए वह रणवीर

को दीक्षा देने के लिए ले जाता है। रणवीर कम उम्र का नासमझ लड़का है, मगर उसके अंदर युवक दल में शिक्षा लेने का उत्साह है। रणवीर को दीक्षा ग्रहण करने के लिए जिन्दा मुर्गी को काटने के लिए कहा जाता है, परन्तु पहले वह नहीं काट पाता है। उसे उल्टियाँ आने लगती है, पसीना छूटने लगता है, मगर जब देवव्रत उसे थप्पड़ मार कर समझाता है, फिर वह बहुत कोशिश कर मुर्गी को काटने में सफल हो जाता है। वह दंगे का प्रत्युत्तर देने की परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है। देवव्रत कहता है "शाबाश ! तुममें दृढ़ता है, संकल्प-शक्ति है, भले ही हाथ की ताकत अधिक नहीं है। तुम दीक्षा के अधिकारी हो।" कहते हुए मास्टर जी जमीन की ओर झुके और पत्थर की सिल पर पड़े खून से अपनी उँगली भिगोकर रणवीर के माथे पर खून का टीका लगा दिया।"[21] रणवीर के अंदर हिंसा का भाव जागृत हो गया है। भोला-भाला रणवीर सांप्रदायिक शक्तियों के अधीन फंस जाता है। हिन्दुत्ववादी शक्तियां युवकों को किस प्रकार अपने सांप्रदायिक जाल में फँसाती हैं, तमस उपन्यास में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

आगे वही रणवीर युवक समाज का लीडर बन जाता है। मुर्गी काटने की दीक्षा से उसके अंदर भरपूर आत्म-विश्वास बढ़ गया है। जब दंगे की स्थिति बढ़ जाती है तब अपने साथियों को हिंसा फैलाने के लिए सक्रिय करता है। दंगे में मुसलमानों को मारने के लिए शस्त्रागार में लाठियाँ, कुल्हाड़ी, छुरे, तीर-कमान और गुलेलें जैसे हथियार इकट्ठा किया जाता है। म्लेच्छों अर्थात् मुसलमानों को मारना उनके लिए गर्व की बात होगी और उनपर हमला कैसे किया जाए अपने साथियों को सिखाता है "शत्रु की छाती अथवा पीठ को कभी भी निशाना नहीं बनाओ। वार हमेशा कमर में करो या पेट में। और घुमावदार छुरा घोंपने के बाद उसे अंदर ही अंदर थोड़ा मोड़ दो, इससे अंतड़ियाँ बाहर आ जाएँगी। अगर तुम भीड़ में शत्रु पर वार करते हो तो छुरा बाहर खींचने की कोशिश नहीं करो, उससे वहीं रहने दो और भीड़ में खो जाओ।"[22] यहाँ एक बात तो स्पष्ट है जो लड़का कल तक एक मुर्गी काटने से डरता है वह आज मनुष्य को कैसा मारा जाए सिखा रहा है। देवव्रत से दीक्षा लेकर अब वह पूरी तरह सांप्रदायिक भाव से ग्रसित हो चुका है। कल तक जो मुसलमान उसके पड़ोसी हुआ करते थे अब वह म्लेच्छ हो गए है, उसे मारना उसके लिए धर्म और गर्व का काम है।

सांप्रदायिक भाव का वर्चस्व पूरी तरह से रणवीर पर हो चुका है। वह अपने साथी इन्द्र को गली में घूम कर इत्र बेचते गरीब बूढ़े इत्रफरोश पर हमला करने के लिए कहता है और इंद्र रणवीर की आज्ञा का पालन करते हुए बिना सोचे समझे निर्दोष इत्रफरोश पर हमला कर देता है। " बाजार में फाहे ज्यादा बिकते हैं, घरों में इत्र और तेल ज्यादा बिकता है।" इत्रफरोश कह रहा था। सहसा इंद्र लपका और उसने पैंतरा मारा। इत्रफरोश को लगा जैसे उसके बाएँ हाथ कोई चीज जोड़ से हिली है। उसे भास हुआ जैसे कोई चीज चमकी भी है। पर

वह खड़ा होकर घूमकर देखे कि क्या बात है तब तक उसे थैले के नीचे तीखी चुभन का-भास हुआ। इंद्र का निशाना ठीक बैठा था। वार करने के बाद सरदार के आदेशानुसार उसने चाकू को थोड़ा मोड़ दिया था और अंतड़ियाँ के जाल में फँसा भी दिया था।"[23] उपन्यास में यह स्थिति बहुत भयावह है। एक छोटे युवक द्वारा इत्रफरोश की हत्या पूरी मानव जाति की हत्या है। यहाँ पूरी कथा हिन्दुत्ववादी सांप्रदायिकता को दर्शाती है। जो समाज को धीरे-धीरे खोखली करती जा रही है। देश का भविष्य युवकों पर निभर्र होता है, मगर ये सांप्रदायिक ताकतें उन्हें किस प्रकार अपने जाल में फँसा रही है ? युवकों को अपना हथियार बना रही है, इसे जल्द से जल्द खत्म नहीं किया गया तो देश और मानव जाति का विनाश निश्चित है।

'तमस' उपन्यास में हिन्दुत्ववादी सांप्रदायिकता की कट्टर मानसिकता का चेहरा सब के सामने दिखता है। ऐसी मानसिकता को बनाने में अंग्रेजों की कूटनीति का बहुत बड़ा हाथ है। लेकिन हिन्दुत्ववादी का यह सांप्रदायिक भाव मानव जाति के लिए घातक है। उपन्यासकार ने हिन्दुत्ववादी सांप्रदायिकता में प्रमुख स्थान युवकों का इसकी ओर झुकाव की समस्या को दिया है। ये सांप्रदायिक ताकतें युवकों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती है। जिससे इसके जड़ों को विस्तार मिलता है। वर्तमान में भी युवकों में फैल रही सांप्रदायिकता का भाव और सांप्रदायिक विचारों पर उनका झुकाव देखने को मिलता है। जिसका कारण हिन्दुत्ववादी लीडरों द्वारा फैलाये गए सांप्रदायिक विचार हैं। इसे जल्द से जल्द समझने और खत्म करने की आवश्यकता है।

मुस्लिम सांप्रदायिकता :-

भारत में मुस्लिम शासकों का आगमन यहाँ की बेशुमार धन संपदा को लूटने के लिए हुआ था, किन्तु यहाँ की राजनीतिक एकता का अभाव का फायदा उठाकर वे शासक बन गये। कालांतर में उनमें और अन्य भारतीयों में कोई अंतर नहीं रहा। वे भी संपूर्ण रूप से भारतीय जनमानस में घुलमिल गये। पर एक विशेष बात यह रही कि वे स्वयं को शासक श्रेणी का मानने के कारण श्रेष्ठ एवं कुलीन समझते थे। हिन्दू और मुसलमानों के बीच धर्म को लेकर एक दूरी तो थी, लेकिन उनमें सांप्रदायिक सौहार्द की भावना विद्यमान थी। किन्तु अंग्रेजों ने अपने आगमन के पश्चात 'फूट डालो और शासन करो' के अचूक अस्त्र से मुसलमानों को हिन्दुओं के खिलाफ भड़काना शुरू कर दिया। फलस्वरूप मुस्लिम लीग जैसे सांप्रदायिक संगठनों ने मुस्लिम राष्ट्रवाद पर जोड़ देना शुरू किया वहीं दूसरी ओर हिन्दुत्ववादी संगठनों ने हिन्दू राष्ट्रवाद के दृष्टिकोण को अपनाया। इन दोनों ही सांप्रदायिक तत्त्वों द्वारा दो राष्ट्रों के घटक सिद्धांत को भारतीय राजनीति में पूरी शक्ति व बल के साथ उछाला गया।

सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी सभी धर्मों के लोग शामिल थे। बाद में कांग्रेस ने राष्ट्रवादी संगठन का रूप ले लिया। पर सर सैय्यद अहमद खां ने कांग्रेस का विरोध किया। मुस्लिम सांप्रदायिकता का भाव शुरू से उनमें विद्यमान थी। इलाहाबाद से निकलने वाले दैनिक अखबार 'पायनियर' में छपे अपने एक लेख में उन्होंने अपने विचारों का खुलासा किया। इसमें उन्होंने कांग्रेस के साथ-साथ हिन्दुओं के प्रति भी अपना विद्वेष प्रकट किया। हिन्दू और मुस्लिम अलग-अलग राष्ट्र हैं, इस सिद्धांत को सबसे पहले सर सैय्यद अहमद खां ने रखा था। ऐसा सोचने वाले केवल अहमद खां नहीं थे बंगाल के अमीन अली एवं अन्य कई राज्यों के कुलीन मुस्लिम यहाँ तक कि बदरुद्दीन तैय्यबजी भी उनके विचारों से सहमत थे। अतः मुस्लिम सांप्रदायिकता बड़ी तेजी से संगठित होती चली गई। ब्रिटिश शासकों ने इस सांप्रदायिकता को न केवल बढ़ावा दिया वरन् संरक्षण भी दिया।

लार्ड मिन्टों की प्रेरणा और विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधियों की एक बैठक द्वारा सन् 1906 में ढाका में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। मुस्लिम लीग के अंतर्गत मुस्लिम सांप्रदायिकता संगठित रूप से पोषित होती रही, जिसे ब्रिटिश शासकों द्वारा उचित वातावरण प्रदान मिलता रहा। क्योंकि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच विद्वेष का बीज बोना ब्रिटिश सरकार के लिए जरुरी था। और वे सांप्रदायिकता का बीज बोने में सफल रहे। अंग्रेजों की इस कूटनीति, मुस्लिम लीग की माँग और कांग्रेस के रवैये पर विचार करते हुए गीतेश शर्मा लिखते हैं "बिना किसी संघर्ष और आन्दोलन के मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के लिए विशेषाधिकारों को मनवाकर सांप्रदायिकता को एक सम्मानित दर्जा दिला दिया। वहीं सरकार द्वारा मुसलमानों के लिए घोषित अलग निर्वाचन क्षेत्र की बात को कांग्रेस ने स्वीकार कर सांप्रदायिकता को स्वीकृति दे दी।"[24] यह सांप्रदायिकता की लहर धीरे-धीरे इस तरह फैल गई कि मुस्लिम लीग के नेता हिन्दुओं का खुल कर विरोध करने लगे। इस प्रकार मुस्लिम सांप्रदायिकता का विकास हुआ।

तमस उपन्यास में इसी मुस्लिम सांप्रदायिकता की समस्या का चित्रण किया गया है। तमस में मुस्लिम लीग के सदस्य दंगे के फैलने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। वे पाकिस्तान की माँग करते हैं और मुस्लिम लीग को कांग्रेस से अलग मानते हुए कांग्रेस को हिन्दुओं की जमात मानते हैं। जब कांग्रेस के प्रभात फेरी के वक्त मुस्लिम लीग के सदस्य और कांग्रेस के सदस्य में नोक-झोंक होती है तो मुस्लिम लीग का सदस्य बख्शीजी से कहता है "यह सब हिन्दुओं की चालाकी है, बख्शीजी, हम सब जानते हैं। आप चाहें जो कहें, कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है। कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है और मुस्लिम लीग मुसलमानों की। कांग्रेस मुसलमानों की रहनुमाई नहीं कर सकती।.....हिन्दुस्तान की आजादी हिन्दुओं के लिए होगी, आजाद पाकिस्तान में मुसलमान

आजाद होंगे।"[25] यह स्थिति समाज को विभाजित करने का है। मुस्लिम लीग का ऐसा प्रचार कहीं न कहीं लोगों के अन्दर आपसी विद्वेष का भाव पैदा करता है और हिन्दुओं के प्रति घृणा भाव जागृत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। बाद में जो दंगे होते हैं वह कहीं न कहीं लोगों के अंदर व्याप्त विभाजन के इस नजरिये के कारणवश ही और तीव्र रूप लेते हैं।

'तमस' उपन्यास में सांप्रदायिक दंगे होते हैं उसका मूल कारण सूअर को मारकर फ़ेंका जाना है। यह इस मानसिकता को बयान करती है मुस्लिम धर्म में भी कितनी कट्टरता है कि एक सूअर को मारकर मस्जिद के सीढियों में फेंक देने भर से पूरा शहर और गाँव सांप्रदायिकता की आग में झुलस जाते हैं। उपन्यासकार ने पहले की सामान्य स्थिति का भी वर्णन किया है जब हिन्दू-मुस्लिम साथ में एकता से रह रहे थे। मगर एक सूअर की घटना के बाद स्थिति अपने आप उलटी हो जाती है। इसका उदाहरण हम देख सकते हैं कि कांग्रेस के कार्यकर्ता जब इमामदीन मुहल्ले में तामीरी काम कर रहे होते है तो एक बुजुर्ग व्यक्ति उनकी काम की तारीफ करता हुआ जाता है। मगर जैसे ही सूअर मारने वाली घटना का पता चलता है। उसके बात करने का तरीका बदल जाता है और वह उनसे अपने मुहल्ले से जाने को कहने लगता है "बस बहुत हो चुका जो आपको करना था। सुन रहे हैं आप ?" उसकी आवाज काँपने लगी थी, "खंजीर के बच्चो, यहाँ से चले जाओ।"[26] यहाँ मुसलमानों की स्थिति का वर्णन है कि एक सूअर मार मस्जिद में फेंकने की घटना से उसके अन्दर सांप्रदायिकता का भाव जाग जाता है। और थोड़े देर पहले उस व्यक्ति के प्रति जो नजरिया था उसमें एकाएक परिवर्तन हो जाता है।

तसम उपन्यास में मुस्लिम सांप्रदायिकता का एक रूप शाहनवाज के संदर्भ में देखने को मिलता है। शहनवाज हिन्दू रघुनाथ का सच्चा मित्र है। दंगे की स्थिति में भी जब उसका दोस्त रघुनाथ मुस्लिम मुहल्ले को छोड़कर हिन्दू मुहल्ले में चला जाता है तब भी शहनवाज रघुनाथ से मिलने हिन्दू मुहल्ले में जाता है। रघुनाथ की पत्नी को भी शाहनवाज पर इतना विश्वास है कि वह अपने पुराने घर में छूटे हुए गहने शाहनवाज को लाने के लिए कहती है। रघुनाथ ने अपने पुराने घर के देख-रेख लिए नौकर मिलखी को वही छोड़ दिया है। शाहनवाज पुराने घर गहने लाने जाता है और मिलखी से कोठरी की चाभी लेकर गहने निकालने जाता है। वही पास खिड़की से दिखाई पड़ता है कि दंगे में कोई मुसलमान मर गया है और उसके लाश को अंतिम संस्कार के लिए ले जा रहे हैं। शाहनवाज यह देखकर गंभीर सोच में डूब जाता है। जब कोठरी से गहने निकाल कर वह सीढियों से नीचे उतरता है तो उसके आगे-आगे मिलखी भी नीचे उतर रहा होता है। इस स्थिति का वर्णन उपन्यासकार के शब्दों में "मिलखी की चुटिया पर नजर जाने के कारण, मस्जिद के आँगन के लोगों की भीड़ को देखकर, या

इस कारण कि जो कुछ वह पिछले तीन दिन से देखता-सुनता आया था वह विष की तरह उसके अंदर घुलता रहा था शाहनवाज ने सहसा ही बढ़कर मिलखी की पीठ में जोर से लात जमाई। मिलखी लुढ़कता हुआ गिरा और सीढ़ियों के मोड़ पर सीधा दीवार से जा टकराया। जब वह नीचे गिरा तो उसका माथा फूटा हुआ था और पीठ टूट चुकी थी, क्योंकि जहाँ गिरा वहाँ से वह उठ नहीं पाया। शाहनवाज उसके पास से निकलकर आया तो मिलखी का सर नीचे की ओर लटक रहा था और टाँगे आखिरी दो सीढ़ियों से लटक रही थी।"[27] यहाँ शाहनवाज स्वयं नहीं जानता की उसने मिलखी को क्यों मारा? यही सांप्रदायिकता का एक रूप है जो मनुष्य को अन्दर तक प्रभावित करती है। शाहनवाज में सांप्रदायिकता का भाव नहीं है, लेकिन तीन दिन के दंगे में मारे गए लोग और आस-पास के लोगों की बातों को सुनकर उसके अंदर का सांप्रदायिक भाव प्रबल हो जाता है। और वह निर्दोष मिलखी पर अपने अन्दर का गुस्सा निकालता है।

धर्मांतरण की समस्या समाज की प्रमुख समस्यों में से एक है। भीष्म साहनी जी ने तमस उपन्यास में इस गंभीर समस्या को उठाया है और साथ ही मुस्लिम सांप्रदायिकता का कट्टर स्वरूप हम सब के सामने रखा है। दंगे की स्थिति में हरनामसिंह का पुत्र इकबाल सिंह अपनी जान बचाने के लिए मुस्लिम मोहल्ले से भागना चाहता है। वह छिपकर जल्द से जल्द वहाँ से निकलना चाहता है, लेकिन कुछ मुसलामन लड़के उसे देख लेते हैं। इसके बाद उस पर पत्थर चलाये जाते हैं, वह बुरी तरह से पीटा जाता है। और जान बख्शने के लिए उसके समाने धर्मांतरण कर सिख से मुस्लिम बनने की शर्त रखी जाती है। इकबाल सिंह जान बचाने के लिए शर्त को मान लेता है। फिर उसका मजाक बनाया जाता है उसकी खिल्लियाँ उड़ाई जाती है। धर्मांतरण से पहले उसे कलमा पढ़ाया जाता है, गाय का मासं खिलाया जाता है। इस भयावह दृश्य का वर्णन लेखक के शब्दों में "बाएँ हाथ से इकबालसिंह का मुहँ खोला और दाएँ हाथ में मांस का बड़ा टुकड़ा, जिसमें से टप-टप खून की बूँदें चू रही थीं, इकबालसिंह के मुँह में डाल दिया। इकबालसिंह की आँखे बाहर आ गई। उसका साँस रुक रहा था। "खोल मुँह, तेरी माँ की...खोल मुँह।...अब चूस जा इसे मादर..."[28] इतना ही नहीं आगे इकबालसिंह की सुन्नत करवायी जाती है और उसका नाम बदल कर शेख इकबाल अहमद रख दिया जाता है। यहाँ पूरी स्थिति मुस्लिम सांप्रदायिकता के कट्टरता की पराकाष्ठा को दर्शाता है और उसके धर्मान्धता को भी।

अंततः यही कहा जा सकता है कि तमस उपन्यास में भीष्म साहनी ने मुस्लिम सांप्रदायिकता की कट्टरता को अभिव्यक्त किया है। सबसे पहले मुस्लिम लीग और अंग्रेजों के नीतियों द्वारा फैल रहे सांप्रदायिकता को स्पष्ट किया है तत्पश्चात मुस्लिम समाज में विराजमान सांप्रदायिकता के भाव के स्वरूप को दर्शाया है।

सिख सांप्रदायिकता :-

भारतीय गणतंत्र में मुसलमानों के साथ-साथ बौद्ध, जैन, सिख, ईसाई, पारसी आदि अल्पसंख्यक समुदाय के लोग भी रहते हैं। परन्तु सांप्रदायिक तनाव मुस्लिम समुदाय के साथ अक्सर रहता है। सिख धर्म भावुकता एवं दृष्टिकोण में हिन्दुओं के समीप है। हिन्दू-सिख प्रारंभ से ही एक-दसूरे के अविभाज्य अंग रहे हैं। इनमें कभी कहीं कोई विभाजन रेखा नहीं रहीं लेकिन कालांतर में सिख एक अलग धर्म और जाति का रूप लेने लगा । मुस्लिम-सिख सांप्रदायिकता पर विचार करने पर मिलता है कि इसके जड़े भी मध्यकाल से ही विराजमान है। मध्यकाल में सत्ता को लेकर किए गए दोनों सिखों और मुगलों के बीच संघर्ष ने भी कहीं न कहीं दोनों में एक दूरियाँ पैदा करने का कार्य किया है। अंग्रेजों ने अपनी 'फूट डालो और शासन करो' की नीति से सिख धर्म को न केवल मुस्लिम बल्कि हिन्दू-धर्म से भी अलग करने का कार्य किया । स्वतंत्रता पूर्व जब सांप्रदायिक दंगे हुए तो मध्यकाल के समय की इन दूरियों ने एक-दूसरे के अंदर घृणा का भाव जागृत किया। सिख समुदाय में भी अपने इतिहास और पूर्वकालीन आन-बान और शान को लेकर धार्मिक कट्टरता थी, जो मुस्लिम-सिख दंगे के समय प्रखर हो गई।

तमस उपन्यास में हिन्दू-मुस्लिम के समान मुस्लिम-सिख सांप्रदायिकता का स्वरूप भी देखने को मिलता है। गाँव में जब दंगा फैलने लगता है तो सभी सिख गुरुद्वारे में आकर जमा होने लगते हैं। वहाँ वे अपने सुरक्षा का पूरा इंतजाम करते हैं। उन्हें अफवाहों से पता चलता है कि मुसलमान लोग मस्जिद में उनके लिए अलसा इकट्ठा कर रहे हैं और वे भी अपने सुरक्षा के लिए गुरुद्वारे में अलसा हथियार इकट्ठा करने लगते हैं उपन्यासकार के शब्दों में "अलसा पिछले बरामदे में तथा ग्रंथी की कोठरी में इकट्ठा किया जा रहा था। गाँव में सात गुरुसिंघों के पास दोनाली बंदूकें थीं और पाँच बक्से कारतूसों के थे। जत्थेदार किशनसिंह सुरक्षा का प्रबंध कर रहा था। किशनसिंह पिछली जंग में बर्मा की लड़ाई में भाग ले चुका था और बर्मा की लड़ाई के दाँव-पेंच वह अपने कसबे के मुसलमानों पर चलाना चाहता था।"[29] इस प्रकार सिखों में भी हिंसात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता तमस में दिखाई गई है। वह भले ही सब कुछ अपने प्राण बचाने के लिए कर रहे हों, लेकिन उनके मन में भी मुसलमानों के प्रति विद्वेष का भाव पहले से मौजूद था।

सिखों का समूह जब गुरुद्वारे में जमा हो जाता है तो सुरक्षा को लेकर बातें की जाती हैं। जिसमें सोहन सिंह नाम का कामरेड चाहता है कि स्थिति को बातचीत से सुलझाया जाए। सोहनसिंह गुरूद्वारे में इकट्ठे सभी सिखों को समझाना चाहता है कि जो कुछ हो रहा है उसके लिए मुसलमान नहीं अंग्रेज जिम्मेदार है। अतः अमन पसंद सिखों और मुसलमानों के बैठकर आपस में बातचीत करने से स्थिति पर काबू पाया जा सकता है।

सिखों में मुसलामनों के प्रति विद्वेष का भाव इतना बढ़ चुका है और वे किसी की बाते नहीं सुनते। बल्कि सोहनसिंह को मुसलमानों का दूत बताते हैं उसे डांट-डपटकर बैठने के लिए कहा जाता है। सिखों के सबसे वरिष्ठ तेजासिंह जी को सोहनसिंह की बातें गुमराह करने वाली लगती है और वे अफवाहों में सुने मुसलमानों के कारनामे को सुनाने लगते हैं। जिसका जवाब सोहनसिंह देता है कि वह सब मुसलमानों ने नहीं किया। लेकिन कोई उसकी बातों पर विश्वास नहीं करता। सांप्रदायिक भाव पूरी तरह सिखों व्याप्त रहता है और सोहनसिंह के बातों का जवाब वे लोग इस प्रकार देते हैं "हमें क्या समझते हो ? मुसलों को जाकर समझाओ। क्या सिखों ने किसी को अभी तक मारा है, किसी का घर लूटा है? बड़ा आया हमें उपदेश देनेवाला ?"[30] यहाँ स्थिति साफ है सिखों को लगता है कि अगर हम मुसलमानों को नहीं मारे तो कोई ये मुसलमान हमें मार देंगे वहाँ मुसलमानों को लगता है हम सिखों को नहीं मारे तो तो सिख उन्हें मार देंगे।

तमस में सिख सांप्रदायिकता का विषम रूप तब देखने को मिलता है जब दंगा पूरी तरह बढ़ जाता है, सिखों और मुसलमानों पर सीधे तौर पर झड़प होने लगती है। मुसलमानों का एक समहू सिखों के गाँव की तरफ बढ़ता है। गुरुदारे के ऊपर बैठा बलदेवसिंह यह सबकुछ देख रहा होता है। उसे याद आता है कि उसकी माँ तो घर में है और अब वह मुसलमानों के हाथों में आ जाएगी। वे लोग उसे मार ही देंगे। इसका बदला लेने के लिए वह दौड़कर कसाइयों की गली की ओर जाता है और निर्दोष बूढ़े मुसलमान करीमबख्श को मार देता है। यह विषम स्थिति का वर्णन उपन्यासकर के शब्दों में "वह गली के नुक्कड़ पर रहनेवाले बूढ़े लुहार करीमबख्श के सीने में तलवार भोंककर आया था। यह सोचकर कि माँ तो अब बच नहीं सकती, माँ को तो तुर्कों ने मौत के घाट उतार दिया होगा, और उसने खून का बदला खून से लेने की ठान ली थी और करीमबख्श ही उसके आड़े आ सकता था।"[31] सिख सांप्रदायिकता का एवं मानवीय प्रवृत्ति का अति दयनीय स्थिति का वर्णन यहाँ मिलता है।

सिख-मुस्लिम सांप्रदायिकता में मध्ययुग का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मध्ययुगीन मुस्लिम और सिख शासकों के संघर्ष ने दोनों के अंदर द्वेष भाव को जीवित रखा। तमस उपन्यास में सिखों के अंदर व्याप्त यह विद्वेष दिखाई पड़ता है। जब मुसलमानों का समहू गुरुद्वारे पर आक्रमण करता है तो जितने भी सिख है वह इस भाव से युद्ध में भीड़ जाते हैं कि वे मध्यकालीन तुर्कों का सफाया कर रहे हैं। लेखक के शब्दों में "तुर्क आए थे पर वे अपने ही पड़ोसवाले गाँव से आए थे। तुर्कों के जेहन में भी यही था कि वे अपने पुराने दुश्मन सिखों पर हमला बोल रहे हैं और सिखों के जेहन में भी वे दो सौ साल पहले के तुर्क थे जिनके साथ खालसा लोहा लिया करता था। यह लड़ाई ऐतिहासिक लड़ाइयों की श्रृंखला में एक कड़ी ही थी। लड़नेवालों के पाँव बीसवीं सदी में

थे, सिर मध्ययुग में।"[32] यह स्थिति मध्ययुग सिख-मुस्लिम संघर्ष के कारण उत्पन्न हुए विद्वेष को व्यक्त करती है। सिख सांप्रदायिकता का रूप मध्ययुगीन इतिहास से जुड़ा हुआ है। सिख-मुस्लिम युद्ध के दौरान सिख स्त्रियों का अपनी आबरू के रक्षा हेतु कुँए में कूद कर जान दे देना उपन्यास की भयावह स्थिति है।

इसप्रकार कहा जा सकता है कि तमस में सिख-मुस्लिम सांप्रदायिकता को दिखाया गया है। उसके जड़ को मध्यकाल में ढूढने का प्रयास लेखक करता है। सिखों में मुसलमानों के प्रति जो घृणा का भाव है, वही दंगे को तीव्रता देने का कार्य करता है। सिखों का मुसलमानों के प्रति अविश्वास का भाव स्थिति को बद से बदतर बना देता है। जिसमें सैकड़ों निर्दोषों की जानें जाती है। सिखों में सांप्रदायिक भाव इस प्रकार हावी होता है कि सोहनसिंह की आपसी बातचीत से समस्या का हल निकालने वाली बात कोई नहीं सुनता और परिणामतः सभी दंगे में झुलस जाते हैं।

संदर्भ :

1. आधुनिक हिंदी उपन्यास, (सं. डॉ नरेंद्र मोहन), में संकलित 'तमस' पर डॉ महीप सिंह का आलेख (पृ. सं.-286)
2. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 8
3. वही, पृ. सं.- 30
4. वही, पृ. सं.- 20
5. सारिका पत्रिका, भीष्म साहनी, 1990, पृ. सं.- 37
6. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 8
7. वही, पृ. सं.- 40
8. वही, पृ. सं.- 37
9. वही, पृ. सं.- 20
10. हिंदी उपन्यास : जनवादी परंपरा, डॉ. कुँवरपाल सिंह एवं विसारिया अजय (संपादक), पृ. सं.- 152
11. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 38
12. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृ. सं.- 303
13. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 90
14. वही, पृ. सं.- 122
15. बीच बहस में सेकुलरवाद, अभय कुमार दूबे (संपा.), पृ. सं.- 485

16. नुक्कड़ जनम संवाद- 'आर.एस.एस. का सच, अरुण महेश्वरी :'. जुलाई-दिसंबर, 2001, पृ. सं. - 75

17. हिंदुत्व, वी.डी. सावरकर, पृ. सं.- 11

18. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 23-24

19. वही, पृ. सं.- 39

20. वही, पृ. सं.- 40

21. वही, पृ. सं.- 43

22. वही, पृ. सं.- 87

23. वही, पृ. सं.- 90

24. सांप्रदायिकता एवं सांप्रदायिक दंगे, गीतेश शर्मा, पृ. सं.- 98

25. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 20

26. वही, पृ. सं.- 33

27. वही, पृ. सं.- 80

28. वही, पृ. सं.- 121

29. वही, पृ. सं.- 99

30. वही, पृ. सं.- 103

31. वही, पृ. सं.- 108

32. वही, पृ. सं.- 122

चतुर्थ अध्याय

'तमस' के संदर्भ में सांप्रदायिकता की वर्तमान स्थिति

4.क. 'तमस' में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता और वर्तमान राजनीति:-

राजनीति सामाजिक जीवन को जागरूक एवं बेहतर बनाने का एक सशक्त माध्यम है और साहित्य सामाजिक जीवन को अभिव्यक्त करने का एक कलात्मक रूप। इसलिए समाज, राजनीति और साहित्य का त्रिकोणात्मक संबंध है। साहित्य अपने युग चेतना के अनुरूप ही मनुष्य के संघर्षशील व्यक्तित्व को मुखरित करता है। वर्तमान युग के निर्माण में राजनीति के महत्त्व को किसी भी स्थिति में नकारा नहीं जा सकता। कोई भी साहित्यकार विभिन्न राजनीतिक पहलुओं का आमना-सामना किये बिना युगीन जीवन को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने में असमर्थ रहता है। वर्तमान में राजनीति का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसका प्रभाव देखा जा सकता है। दूर-दराज एवं पिछड़े से पिछड़े क्षेत्रों में भी राजनीति का हस्तक्षेप अपना प्रभावशाली रूप दिखा रही है, परन्तु सामाजिक जीवन को बेहतर बनाने के लिए जिस राजनीति की बात की जाती है, वह केवल 'आदर्शों की राजनीति' बनकर रह गई है। व्यावहारिक जीवन में इसका उपयोग न के बराबर हो रहा है।

वर्तमान राजनीति में स्वार्थलिप्सा, अवसरवादिता, मूल्यहीनता, छल-छद्म, मुखौटापन आदि ने उसे सत्ता हथियाने का मात्र एक माध्यम बनाकर रख दिया है। इस तरह के सर्वग्रासी राजनीति ने समस्त मानवीय मूल्यों को विचलित कर ध्वस्त किया है। चुनावी दंगल, राजनीतिक उथल-पुथल, उठा-पटक, दल-बदल, वोट बैंक खरीदने आदि की राजनीति ने सामान्य जीवन को खंड-खंड कर दिया है। इस प्रकार की राजनीति ने अपने स्वार्थसिद्धि के लिए लोगों को विभाजित कर सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'वोट बैंक की राजनीति' ने तो धर्मगत एवं जातिगत विभाजन कर सांप्रदायिक उन्माद को और प्रखर रूप में फैलाने का कार्य किया है। वोट के लिए राजनेताओं ने धर्मगत एवं जातिगत आधार पर लोगों को एक-दूसरे समुदाय का भय दिखाकर अपना उल्लू सीधा किया है। दूसरी ओर ईमानदारी, परिश्रम, कर्मठता, नैतिकता आदि इस भ्रष्ट और स्वार्थपूर्ण राजनीतिक तंत्र में निरर्थक सिद्ध हो रहे हैं। कुल मिलाकर वर्तमान राजनीति एक पीड़ा प्रधान अनुभव बन कर रह गई है जो समाज को जोड़ने की जगह तोड़ने और लोगों के सेवा करने की जगह अपना स्वार्थ पूरा करने में लगी है। भीष्म साहनी राजनीतिक चेतना से संपन्न साहित्यकार होने के नाते अपने

तमस उपन्यास में सांप्रदायिक उन्माद फैलाने वाले राजनीतिक विसंगतियों को पकड़ने का प्रयास करते हैं। जिन्हें हम निम्नलिखित रूपों में देख सकते हैं –

राजनीति में अस्थिरता एवं मूल्यच्युति :-

वर्तमान समाज की सबसे बड़ी विसंगति राजनीतिक मूल्यच्युति की है। स्वतंत्र तथा पराधीन भारत की राजनीति में कोई विशेष फर्क नहीं है। पराधीन भारत के स्वार्थी अंग्रेज भारतीयों के शोषक थे, तो स्वाधीन भारत में उनके स्थान पर नेतागण आ गए। नेतागण जनता से दूर होकर राजनीति को स्वार्थलाभ के एक मार्ग के रूप में स्वीकार करने लगे। भारत में लोकतंत्र की स्थापना होने पर भी आम जनता की सोचनीय दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। राजनीति भी अस्थिर ही रही। भारत की राजनीतिक अस्थिरता के संबंध में भीष्म साहनी जी स्वयं कहते हैं "राजनीतिक स्थिरता भंग होती जा रही है। हर आए दिन पार्टियाँ बन-टूट रही हैं, किसी का किसी पर विश्वास नहीं जमता। जनसाधारण का विश्वास नेताओं और उनकी पार्टियों पर से उठता जा रहा है। ऐसे समय में जब महँगाई तेज़ी से बढ़ती जा रही है और देश की समस्याएँ विकट रूप ग्रहण करती जा रही हैं, उस समय पार्टियों और उनके नेताओं का ध्यान आपसी उठा-पटक में लगा हुआ है। जनसाधारण को चारों ओर अराजकता का अनुभव होने लगा है हम तेज़ी से किसी गहरी खाई की कगार की ओर बढ़ रहे हैं।"[1]

'तमस' स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले के पाँच दिन की घटनाओं पर आधारित होने पर भी इसमें राजनीतिक अस्थिरता तथा मूल्यच्युति स्पष्ट प्रतिफलित होता है। जो सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने वाली स्थिति को बनाने में सक्रिय भूमिका निभाती है। प्रभात फेरी में भाग लेनेवाले कांग्रेसी लोगों में मेहता जी ऐसे व्यक्ति है जिन्हें हर कांग्रेसी अपना नेता मानता है। मेहता साहब सोलह वर्ष जेल काट कर आये हैं और जिला कांग्रेस कमेटी के प्रधान है और सबसे उजली खादी पहनते हैं। शंकर उन पर आरोप लगाता है कि सेठी ठेकेवाले का पचास हजार का बीमा उन्हें मिलने वाला है और इसके बदले मेहताजी सेठी को चुनाव में कांग्रेस का टिकट दिलवाने वाले हैं। प्रभात फेरी के समय शंकर मेहताजी का विरोध करता हुआ कहता है – "मैंने यह तो नहीं कहा कि मेहताजी ने टिकट का वादा किया है। टिकट देने का अख्तियार तो प्रांतीय कमेटी को है और सिफारिश जिला कमेटी करेगी। अंदरखाते प्रधान और मंत्री फैसला कर ले तो अलग बात है। पर वह काम हम नहीं करने देंगे। दोनों, प्रधान और मंत्री खड़े सुन रहे हो। बड़े-बड़े ठेकेदारों को टिकट मिलने लगा तो बस कांग्रेस ख़त्म हुई समझो।"[2] मेहताजी समकालीन स्वार्थी नेताओं के प्रतीक है। जब मस्जिद के बाहर कोई सूअर मारकर फेंक देता है और स्थिति बिगड़ने लगती है तब बख्शी जी सूअर को वहाँ से हटाने की बात करते हैं तो मेहता जी

कहते हैं- "हमें इसमें नहीं पड़ना चाहिए। इससे मामला बिगड़ सकता है।"[3] मेहता जी वहाँ से जाना चाहते हैं, क्योंकि सूअर को वहाँ से हटाने में जोखिम थी और साथ में उन्हें अपने उजले खादी के कपड़े में गंदा लग जाने का डर था। वास्तव में मेहताजी का देश सेवा एक दिखावा है। अगर ऐसा नहीं है तो वे भी बख्शी जी की तरह सूअर को वहाँ से हटाने का निश्चय कर लेते।

मेहता जी कांग्रेस में काम करने के साथ-साथ फिसाद से बचने के लिए हिंदू महासभा में भी काम करते हैं। उनकी देश सेवा समकालीन राजनेताओं की प्रवृत्ति से मिलती जुलती है। बख्शी जी मेहता जी के इस खोखलेपन की हँसी उड़ाते हुए कहते हैं "दो बेड़ियों में टांग रखना अच्छा नहीं होता। तुम हमेशा यही करते हो। एक टांग कांग्रेस में, दूसरी हिन्दू सभा में। तुम समझते हो किसी को मालूम नहीं है, सभी को मालूम है।"[4] इसका जो जवाब मेहता जी देते हैं वह उनके जैसे नेताओं के असलियत की पहचान हैं – "अगर फसाद हो गया तो तुम मुझे बचाने आओगे? नाले के पार का सारा इलाका मुसलमानी है और मेरे घर नाले के सिरे पर है। फिसाद हो गया तो उस वक्त तुम मुझे बचाने आओगे? या बापूजी आकर बचायेंगे? उस वक्त तो मुझे मुहल्लेवाले हिन्दुओं का ही आसरा है। छुरा मारने वाला मुझ से यह तो नहीं पूछेगा कि तुम कांग्रेस के थे या हिन्दू महासभा में थे.....अब चुप क्यों हो गये हो।"[5] यह पूर्ण कथन मेहता जी जैसे स्वार्थी और स्वयं रक्षक नेताओं का असली चेहरा व्यक्त करता है।

राजनीतिज्ञ को समाज सेवक होना चाहिए। पर वर्तमान समाज में ऐसे राजनीतिज्ञ बिरले ही है। आज सभी राजनेता अपने स्वार्थपूर्ति में ही लगे हुए हैं। समाज सेवा से उन्हें कोई लेना देना नहीं है, कहीं कुछ समाज सेवा वह कर भी देते हैं, तो उसमें उनका स्वार्थ छुपा होता है। 'तमस' में बख्शी जी एक ऐसे नेता है जो निःस्वार्थ सेवा करते दिखाई पड़ते हैं। उन्हें गाँधी जी के अंहिसा पर दृढ़ विश्वास है। कांग्रेस के कार्यकर्ता होने के साथ वे सच्चे नागरिक की तरह अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। जब नाली साफ करते समय शंकर किच-किच करता हुआ कहता है कि नाली साफ करके हमें कुछ मिलने वाला नहीं है। इससे न आज़ादी मिलेगी न स्वराज। यह सब बकवास है। तब बख्शीजी शंकर को समझाते हुए कहते हैं "कुछ समझा कर शंकर, यह हमारी देशभक्ति चिन्ह है, इस तरह हम गरीबों के स्तर तक उतर आते हैं। क्या गरीबी में काम करने जाओगे तो पतलून पहनकर जाओगे ? झाड़ू लेकर खादी पहन कर जाते हो तो लोग तुम्हें अपना समझते हैं।"[6] मस्जिद के सीढ़ियों में मरे सूअर को पड़ा देख बख्शी जी जरनैल के साथ मिलकर किसी तरह उसे घसीटते हुए मस्जिद की सीढ़ियों से दूर ले जाते हैं। जब शहर में दंगा बढ़ जाता है तो बख्शी जी किसी तरह सबको इक्कठा कर अंग्रेजी सरकार

के पास जाते हैं और उनसे विनती करते हैं कि किसी तरह दंगे को रोकने के लिए सरकार को कोई कदम उठाना चाहिए। अंग्रेजी हुकूमत का अधिकारी रिचर्ड चाहता तो दंगे को रोक सकता था। मगर दंगा स्वयं उसने ही फैलाया था तो उसे वह क्यों रोके ? दंगे के खिलाफ वह कोई कार्रवाई नहीं करता और काफी जान-माल का नुकसान होता है।

जब दंगा समाप्त हो जाता है तो अंग्रेजी सरकार दंगाग्रस्त इलाकों में हवाई जहाज उड़वाते हैं और अच्छा अधिकारी बन रिचर्ड शरणार्थियों के लिए सारा प्रबंध करता है। सरकार द्वारा रिलीफ दफ्तर खुल गए थे। विभिन्न गाँव में रिफ्यूजी कैंप खुल गये थे और जान-माल के नुकसान के आंकड़े इकट्ठे किये जा रहे थे दंगे के समय अपने स्वार्थ की रक्षा करने वाले कांग्रेस सहित सभी राजनीतिक दल अपने आप को सक्रिय दिखा रहे थे और अब सरकारी कमर्चारियों में भी चुस्ती आ गई थी। लेखक के शब्दों में "सारे शहर को कान हो गए थे कि अब दंगा-फसाद नहीं हो सकता। कांग्रेस की ओर से एक स्कूल के अंदर रिलीफ दफ्तर खुल गया था और गाँवों में से आने वाले लोगों की भीड़ लगी रहती थी। वहाँ पर भी डिप्टी-कमिश्नर तीन मर्तबा हो आया था। सार्वजनिक संस्थाओं के साथ मिलकर सरकार मसला को सुलझाना चाहती थी। सरकार का यह रुझान देखकर सार्वजनिक संस्थाओं के नेता बड़ी पहलकदमी दिखाने लगे थे, उधर सरकारी अफसरों में चुस्ती आ गई थी। यहाँ तक कि सियासी हल्कों में भी डिप्टी-कमिश्नर के बारे में राय बदलने लगी थी। भले ही डिप्टी-कमिश्नर साम्रज्यवादी मशीन का पुर्जा हो मगर यह डिप्टी-कमिश्नर महज़ पुर्जा नहीं है। यह बड़ी सूझ-बुझ वाला हमदर्द आदमी है।"[7] यहाँ पूरा कथन वर्तमान समय के राजनीतिक स्थिति को अभिव्यक्त करता है। भले ही सत्ताधारियों में परिवर्तन हो गए हो मगर स्थिति वैसी ही है। आज भी हम देखते हैं कि विभिन्न राजनीतिक दल पहले निज स्वार्थ के लिए दंगा करवाते हैं। स्थिति बिगड़ती है तो जल्द उस पर कार्रवाई नहीं करते हैं और जब दंगा समाप्त हो जाता है उसके बाद जान-माल के नुकसान के आकड़े इकट्ठा करने लगते हैं। उन्हें मुआवजा दिया जाता है। इसका कारण भी अपनी राजनीतिक स्वार्थपूर्ति करना ही है।

उपन्यास में कम्युनिस्ट विचारकों वाला युवक देवदत्त एक सच्चा देश सेवक दिखता है। दंगे के समय अपने जान की परवाह किए बिना वह दंगा रोकने की चेष्टा करता है। वह जानता था कि फसाद को रोकने के लिए हिंदू-मुस्लिम को आपसी भेद भुलाकर सभी राजनीतिक पार्टियों को एक साथ काम करना होगा। इसके लिए वह अपने पिता के विरोध के बावजूद भी निर्भीक होकर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं की मीटिंग करवाता है। स्वार्थी नेतागण आपस में ही धार्मिक मसलों में लड़ने लगते हैं, तब देवदत्त उन्हें देशसेवकों का

फर्ज याद दिलाते हुए कहता है कि- "साहिबान, यह मौका बहसों में पड़ने का नहीं है। बाहर लोग मर रहे हैं, घर जल रहे हैं, सुनते हैं आग गाँवों में भी फैलनेवाली है। इस वक्त हमारा क्या फर्ज है? मैं गुज़ारिश करूँगा कि हम वक्त की नज़ाकत को समझते हुए इस आग को फैलने से रोकें।"[8] यहाँ देवदत्त भ्रष्ट और मूल्यहीन राजनीति का विरोध करता है। वर्तमान की राजनीति ऐसी ही बहसों की राजनीति बन गई है जहाँ पक्ष-विपक्ष दोनों दल ऐसी सांप्रदायिक दंगों पर केवल बहसों में लगे रहते हैं। किसी के मरने से उन्हें कोई फर्क़ नहीं पड़ने वाला।

उपन्यास में राजनीति की मूल्यच्युति का सबसे बड़ा उदाहरण मुरादअली है। मुरादअली ही अंग्रेजी सलोतरी साहब रिचर्ड के कहने के अनुसार सुअर को मारने का प्रबंध करता है। पूरे दंगे को फैलाने में अहम किरदार निभाने वाला मुरादअली दंगे समाप्त होने के पश्चात् अमन कमेटी के बस में बैठकर लाऊड स्पीकर पर 'हिंदू-मुस्लिम एक हो' का नारा लगाता है। ऐसे व्यक्ति अपने स्वार्थलाभ के लिए अपने देश को बर्बाद करते है, अंत में पार्टी लीडरों के साथ बैठकर देशसेवा का नाटक खेलता है।

कांग्रेस कार्यकर्ता जरनैल राजनीतिक मूल्यच्युतियों के विमर्शक है। जवानी के दिनों में वह लाहौर में वालंटियर बनकर गया था और नेहरूजी के साथ साथ पूर्ण स्वराज का नारा लगाकर रीवा नदी के किनारे नाचा था। उसी दिन से वालंटियर की वर्दी पहनकर पार्टी के लिए तथा देश के लिए जीनेवाला, जनरैल जहाँ कहीं राजनीतिक अंधःपतन देखता तो बिगड़ जाता है। मस्जिद के सीढ़ियों पर मरे हुए सुअर को देख जब जनरैल कहता है कि यह सब अंग्रेजों की शरारत है तो स्वार्थी नेता मेहताजी बख्शी जी से कहते है कि "इस पागल को साथ क्यों ले आते हो? यह सभी को मरवायेगा। निकालो इसे कांग्रेस से।"[9] यहाँ राजनेताओं की गिरती मूल्यच्युति दिखाई पड़ती है,जो वर्तमान राजनीति में साफ तौर पर देखने को मिलती है। मेहता जी जैसे स्वार्थी नेताओं की हमारे देश में कमी नहीं है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि तमस उपन्यास में भीष्म साहनी ने पराधीन भारत की राजनैतिक घटनाओं को थोड़ी कल्पना के सहारे चित्रित करके स्वतंत्र भारत की राजनीति की अस्थिरता तथा मूल्यच्युति पर विचार किया है। उपन्यास में राजनैतिक की जिस स्थिति का चित्रण है वह हालात अब भी हमारे समाज में विद्यमान है। बस उसके कुछ रूप बदल गए हैं। राजनीतिक पार्टियों तथा दलों की संख्या आजकल बढ़ती जा रही है। धर्म और जाति के नाम पर आजकल पार्टियाँ बनती बिगड़ती रहती है। राजनैतिक दलों के साथ गठबंधन में कहीं आदर्श नहीं दिखाई पड़ रहा है। अधिकार ही इनका लक्ष्य बनता जा रहा है। देशसेवा से बढ़कर अपनी स्वार्थता को मूल्य देने वाले राजनीतिक नेतागण की सख्या बढ़ती ही जा रही है। सब जगह अवसरवादिता तथा

पूँजीवादी व्यवस्था व्याप्त है। 'तमस' उपन्यास के मेहताजी, कश्मीरीलाल, हयातबख्श, मुरादअली जैसे लोग आज भी समाज भी मौजूद है। यह सब देखते हुए हम कह सकते हैं कि आज की राजनीति में, साधारण जनता लाभान्वित नहीं है। हर हालात में उनकी जिंदगी मुश्किल में है। जिसका जिम्मेवार वर्तमान राजनीति है।

भ्रष्टाचार की समस्या :-

भारतीय समाज में एक गंभीर समस्या भ्रष्टाचार की है। समाज के विविध दल तथा राजनीति में भ्रष्टाचार का रूप देखने को मिलता है। स्वतंत्रता के बाद से ही लोगों का राजनीति पर से विश्वास धीरे-धीरे उठने लगा। नेताओं ने अपने स्वार्थ के लिए आम जन का शोषण किया। इस शोषण का एक माध्यम भ्रष्टाचार था। स्वतंत्रता के समय से ही भ्रष्टाचार राजनीति में व्याप्त थी। धीरे-धीरे आज वह विकराल रूप लेने लगा है। शिक्षा, अस्पताल, सरकारी नौकरी, कानून, चुनाव, राजनीति, न्याय व्यवस्था आदि सभी जगह भ्रष्टाचार विद्यमान है। एक बीमारी की तरह फैलने वाले इस भ्रष्टाचार का परिणाम आम जनता को भोगना पड़ता है।

भ्रष्टाचार एक विश्वव्यापी समस्या हैं। 'तमस' में राजनीतिक भ्रष्टाचार का रूप देखने को मिलता है। 'तमस' उपन्यास में कांग्रेसी नेता मेहता जी भ्रष्ट है। उन पर सेठी ठेकेवाले से पचास हजार के बीमा के बदले कांग्रेस के टिकट देने का आरोप है। लोगों द्वारा कई दिनों से यह बात फैली थी कि मेहता जी ने सेठी से टिकट के बदले पचास हजार का बीमा करवाया है। जब शंकर मेहताजी पर इस बात के लिए व्यंग्य करता है तो वह चुप हो जाते हैं। उनकी ख़ामोशी भी इस बात की पुष्टि करती है कि उन्होंने सेठी से पैसे लिए। लेखक के शब्दों में "मेहताजी ऐसे सहमे की एक शब्द मुहँ से कह नहीं पाए। मेहताजी छोटी हस्ती नहीं थे। कुल मिलाकर सोलह बरस जेल में काटकर आए थे और जिला कांग्रेस कमेटी के प्रधान थे। और सबसे उजली खादी पहनते थे। उन पर आरोप लगाना बड़ी हिमाकत थी, पर अर्से से यह अफवाह चली आ रही थी कि सेठी ठेकेवाले का पचास हजार का बीमा उन्हें मिलनेवाला है और इसके एवज मेहताजी सेठी को चुनावों में कांग्रेस का टिकट दिलवाने वाले हैं।"[10] चुनाव में सीट पाने के लिए और अधिकार पाने के लिए भ्रष्टाचार करने वाले राजनेताओं की संख्या आज बहुत बढ़ गई है। मेहताजी अपनी स्वार्थता के लिए राजनीति को उपकरण बनाने वाले भ्रष्ट नेता हैं। आज इसी वृत्ति का अति विकास हो गया है। अब जिसके पास पैसा है, ताकत है और रख-रखाव के संबंध हैं, उसी के पास पार्टी के उम्मीदवार के टिकट होते हैं।

भीष्म साहनी राजनीति में बढ़ती घूसखोरी, भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार की ओर संकेत करना चाहते हैं। बुर्जुआ वर्ग जहाँ-जहाँ अपनी साख जमाता हैं वहीं व्यापार शुरू कर देता है। इस भ्रष्ट राजनीति पर जरनैल बेहिचक कहता है। जरनैल मुनादी करते समय इस ओर संकेत करता है- "जिला कांग्रेस के प्रधान ने देश के साथ विश्वासघात किया है। जो वचन हमने रावी के किनारे सन् 1929 में लिया, हम मरते दम तक उस पर कायम रहेंगे।.....कोई माई का लाल अभी तक पैदा नहीं हुआ जो कांग्रेस के उसूलों की खिलाफवर्जी कर सके। मेहता जी किस खेत के मूली हैं ? हम इनसे भी निपटेंगे और इनके पिट्ठुओं कश्मीरी लाल, शंकर लाल, जीतसिंह जैसे गद्दारों से भी निपटेंगे....।"[11] यह सब कुछ जरनैल ने सनक में ही कहा हो, लेकिन उसको कहलाने वाले भीष्म साहनी ने सभी कुछ सोच-समझ के कहलवाया है। वास्तव में वे राजनीतिक पार्टियों के कार्यकर्ताओं की वास्तविक स्थिति स्पष्ट करना चाहते हैं। यहाँ साफ है कि गद्दार सिर्फ अंग्रेज नहीं थे हमारे अपनों में भी ऐसे स्वार्थी नेताओं और कार्यकर्ताओं की कमी नहीं थी। नेताओं और कार्यकर्ताओं की स्थिति आज भी वैसी ही बनी हुई है।

दंगे का फायदा पूंजीपति और व्यापारी वर्ग भी उठाते हैं। 'तमस' में ऐसे दुखद स्थिति का वर्णन मिलता है। जब दंगा होता है तो लोग भय के कारण हिंदू मुहल्ले से मुसलमान और मुस्लिम मुहल्ले से हिंदू अपनी जमीन बेच कर भाग रहे थे। इसका फायदा व्यापारी और पूंजीपति वर्ग उठा रहे थे। ठेकेदार शेख नूरइलाही से कहता है "अगर खरीदने का इरादा है तो यही वक्त है। बाद में कीमतें चढ़ जाएँगी। मुझसे पूछो शेखजी !.....इसी इलाके में मैं 1500 रुपया में अहाता जमीन खुद बेच चुका हूँ, अब वही अहाता सात सौ में मिल रहा है।"[12] भ्रष्टाचार का एक रूप यहाँ भी देखने को मिलता है। लोगों की मज़बूरी का फायदा किस प्रकार पूंजीपति वर्ग उठाते हैं यह उसका सटीक उदाहरण है।

स्वतन्त्र भारत को भ्रष्टाचार ने काफी हद तक प्रभावित किया है। 'तमस' में उस समय के तत्कालीन शासक तंत्र की भ्रष्टता को उजागर किया गया है। अंग्रेजी सरकार भी भ्रष्ट थी और उसी आग में हमारे नेतागण भी अपनी हाथ सेक रहें थे। दंगों का कारण भी अंग्रेजों का राजनीतिक भ्रष्टाचार था। रिलीफ कमेटी के समय डिप्टी कमिश्नर के चले जाने के बाद बख्शी जी सोचते हैं "फिसाद करानेवाला भी अंग्रेज, भूखें मारने वाला भी अंग्रेज, रोटी देने वाला भी अंग्रेज, घर से बेघर करने वाला भी अंग्रेज, घरों में बसाने वाला भी अंग्रेज..।[13] दंगे के बाद की अमन कमेटी के आयोजन के समय आपस में लड़नेवाले भ्रष्ट नेता को अमन की नहीं उनकी पार्टी तथा धर्म को ही प्रमुखता देते हैं।

आज भ्रष्टाचार राजनीति में स्वार्पूर्ति का एक माध्यम बन गया है। जो प्रत्येक क्षेत्र में फैलता जा रहा है। इसलिए श्री जगमोहन माथुर जी कहते हैं "वह भ्रष्टाचार जो भारतीय समाज के हर हिस्से पर, हर जगह पर, अपनी गहरी पैठ बनाए हुए हैं और जिसकी चर्चा संसद से लेकर सामान्य आदमी से होती हुई सर्वोच्च न्यायालय तक लगातार होती रहती है। भ्रष्टाचार के इस दानव से, जिसने सामान्य व्यक्ति का जीवन अत्याधिक कष्टपूर्ण बना दिया है, कैसे लड़ा जाए, यह किसी की समझ में नहीं आ रहा है। दो-टूक शब्दों में पचास वर्ष के स्वतंत्र भारत की चाहे जैसी और जो उपलब्धियाँ रही हो उसके आगे चुनौतियों का पहाड़ अभी खड़ा है। और इन चुनौतियों के सामने तब तक खड़ा नहीं हुआ जा सकता जब तक कि किसी दूसरे स्वतंत्रता-संग्राम की शरुआत न हो।"[14]

इस प्रकार आज भ्रष्टाचार से लड़ना हमारे समाज की सबसे बड़ी चुनौती है। भ्रष्टाचार के कारण मानव अपने आदर्शों और मूल्यों को छोड़कर भ्रष्ट बन गया है। भाई-भतीजावाद भ्रष्टाचार का फल है। आम जनता के उत्थान के लिए सरकार जो-जो योजनाएँ शुरू करती हैं, वे सब नेतागण तथा कर्मचारियों के कारण साधारण लोगों के हाथ तक नहीं पहुँच पाती है। न्यायाधीश की नियुक्ति, स्थानान्तरण, पदोन्नति, न्यायपाल हर जगह भ्रष्टता ही भ्रष्टता है। इस इक्कीसवीं सदी में भ्रष्टाचार की जड़े इतनी गहरी हो गई है कि साधारण जनता इससे परेशान और निराश हो गई है। अतः भीष्म साहनी जी ने 'तमस' उपन्यास में इस भ्रष्टाचार की समस्या पर गहरा चिंतन किया है।

चुनाव तथा कानूनी समस्याएँ

भारत की राजनीति में चुनाव एक अविभाज्य घटक है। चुनाव अपनी इच्छानुसार मतदान करने का अधिकार हैं, पर आजकल यहाँ राजनीति तथा चुनाव के नाम पर साधारण जनता का शोषण हो रहा है। चुनाव में योग्य व्यक्ति को मतदान करने के बजाए जाति, धर्म, दल या आदर्शों को देखकर मतदान करने की प्रवृत्ति भारत में चल रही है। इन कारणों से लोगों की एकता नष्ट की जा रही है।राजनीतिज्ञों की स्वार्थपरता ने चुनाव को काफी प्रभावित किया है। सत्ता लोभी नेतागण सत्ता के लिए कई हीनकृत्य करते हैं। कई झूठें वादे करते हैं, कुछ पैसे या दान देकर भी वोट माँगते हैं। चुनाव के समय धन देकर मतदाताओं का लाभ उठानेवाले ऐसे भ्रष्ट नेताओं की संख्या दिन-प्रतिदन बढ़ती ही जा रही है। जाति, धर्म भी वोट माँगने का एक माध्यम बन गया है।

'तमस' उपन्यास में पराधीन भारत के परिवेश में चुनाव और उससे संबंधित कई समस्याओं का वर्णन किया गया है। मेहताजी और शंकर के बीच संवादों के माध्यम से भीष्म साहनी जी चुनाव में होने वाले अत्याचार का पर्दाफाश करते हैं। उजली खादी पहनेवाले, सोलह बरस जेलों में रहनेवाले मेहताजी पर यह आरोप लगता है, कि सेठी ठेकेवाले के पचास हजार रुपये की बीमा उन्हें मिलनेवाला है और इसके बदले मेहताजी सेठी को चुनाव में कांग्रेस का टिकट दिलवाने वाले हैं। चुनाव के सीट के लिए पैसे देनावाला तथा पैसा कमाने के लिए सीट बेचनेवाले लोगों का तंत्र आज भारतीय राजनीति के लिए अपरिचित नहीं है। प्रदेश कांग्रेस के चुनाव के समय जब शंकर यह बताकर कोहली को चुनने से इनकार करता हैं कि अराजबंद का नाड़ा सूती रेशमी है। अतः इसका विरोध करता हुआ शंकर स्क्रूटिनी कमेटी से पूछता है कि "कांग्रेस-सदस्य रेशमी नाड़ा पहने? और आप उसे प्रादेशिक कांग्रेस का उम्मीदवार बनाकर भेजेंगे ? कांग्रेस के कोई असूल हैं या नहीं ?"[15] यहाँ भीष्म साहनी जी चुनाव से संबंधित समस्या का विश्लेषण करते दिखते हैं।

धर्म और जाति की राजनीति ने आज अपना पैठ जमा लिया है। इसकी शुरुआत स्वतंत्रता के समय से ही हो गई थी। लोगों को किसी एक जाति या धर्म को किसी दूसरे जाति या धर्म का भय दिखाकर चुनाव में वोट माँगना नेताओं का पेशा सा बन गया है। वहीं लोग भी धर्म के मामले में इतने कठोर होते जा रहे हैं कि धर्म और जाति की राजनीति में फँसते चले जा रहे हैं। साधारण सी बातों को बढ़ा चढ़ा कर बोलना राजनेताओं का पेशा बन गया है। 'तमस' में भी जब दंगा होने के यह बात सामने आती है कि अब हिंदू कांग्रेस पार्टी को वोट देगा और मुसलमान मुस्लिम लीग को। चुनाव में धर्मों की राजनीति पर भीष्म साहनी जी कहते हैं- "यदि कोई हिंदू अब चुनाव के लिए खड़ा होगा तो उसे कांग्रेस के समर्थन की जरूरत होगी, और अगर कोई मुसलमान खड़ा होगा तो उसे मुस्लिम लीग के समर्थन की। लोगों के मन में यह बात बैठ गई थी कि कांग्रेस हिंदुओं की संस्था है।"[16] जाति और धर्म का दबदबा आज भी वैसे ही मौजूद है। चुनाव में नेताओं को धार्मिक संगठनों और दलों का समर्थन आज भी मिल रहा है। लोगों को पहले ही आश्वस्त कर दिया जाता है कि हमारे धर्म के या हमारे जाति के लोगों को इस दल का समर्थन करना है या इस दल को वोट देना है।

'तमस' में चुनाव के समय चुनावी टिकट की समस्या को भी उजागर किया गया है। टिकट को लेकर स्वार्थी राजनेतागण आपस में बहस करने लगते हैं। दंगे के बाद म्युनिसिपल कमेटी के चुनाव में मंगलसेन को कांग्रेस का टिकट देने की बात सुनकर लाला श्यामलाल इसका विरोध करते हैं। क्योंकि वे चुनाव लड़ना चाहते हैं, पर श्यामलाल का संबंध कांग्रेस से इतना ही था कि वह ऐसे कपड़े पहनता था जो दूर से देखने पर खादी

लगता था। लाला, आँकड़ा बाबू से मंगलसेन की शिकायत करता है तो आँकड़ा बाबू कहते हैं –"पर लालाजी, मंगलसेन जिला कमेटी का सदस्य है, जबकि आप कांग्रेस के चवन्नी मेंबर भी नहीं है। आपको टिकट कैसे मिल सकता है ?"[17] इसका उत्तर देते हुए लालाजी कहते हैं-"टिकट माँगता ही कौन हैं ? मैं तो केवल इतना चाहता हूँ कि वार्ड की सीट के लिए कांग्रेस किसी को भी टिकट न दे, जाति तौर पर कोई भी खड़ा हो जाए..।"[18] यहाँ श्यामलाल चुनाव में जाति तैर पर खड़ा होने की बात करता है। वर्तमान में भी धर्म और जाति के आधार पर लोगों को चुनाव में खड़ा किया जा रहा है। जिस क्षेत्र में जिस जाति या धर्मों के लोगों की संख्या अधिक है वहाँ उसी जाति या धर्मों के लोगों को चुनाव में खड़ा किया जाने लगा है। आजकल राजनीतिक दल धर्म के आधार पर बनते हैं। जनसेवा के बदले निज स्वार्थपरत के लिए लोगों को आपस में लड़ाते राजनेता और राजनीति पर विचार व्यक्त करते हुए देवेंद्र उपाध्याय जी कहते हैं- "यदि भारत सही मायने में धर्मनिरपेक्ष है तो चुनाव में धर्म और जातिवाद का उपयोग क़ानूनी जुर्म बना दिया जाए। लोगों को जाति और धर्म के अनुसार रखने की अपेक्षा मिश्रित रूप में रखा जाए। देश को यदि प्रगति करनी है तो जल्दी से जल्दी धर्म का पीछा छोड़ना होगा।"[19]

मनुष्य के अधिकारों का संरक्षण करने के लिए कानून बनाया गया है। अंग्रेजी शासन व्यवस्था में लोगों का जीना मुश्किल था। लगभग वही हालत अब स्वतंत्र भारत की हो गई है। 'तमस' उपन्यास में दंगे को रोकने के लिए कानून के अनुसार डिप्टी कमिश्नर कुछ नहीं करता है। दंगे तथा उनसे संबंधी सारी घटनाओं का दायित्व अंग्रेजी शासन का है। यदि रिचर्ड ने कानून का सदुपयोग किया होता तो दंगे का सवाल ही नहीं उठता। जब उसकी पत्नी लीजा उससे दंगे के संबंध में कुछ कहती है तो रिचर्ड कहता है –"यह मेरा देश नहीं है और न ही ये मेरे देश के लोग हैं।"[20] रिचर्ड भारत का नहीं है और इसलिए ही उन्हें ऐसा लगा। लेकिन आजकल भारतीय कानून का निर्वाहन करने वाले भारतीय राजनीतिज्ञ ही भारतीयों के लिए सोचनीय स्थिति का कारण बन जाते हैं। कानून के गलत निर्वाहन के विरुद्ध कोई आवाज उठाये तो उसे बर्बाद कर देने वाले शासकों की कमी नहीं है। कानून की सहायता आम जनता के लिए एक सपना बन कर रह गई है।

भीष्म साहनी जी 'तमस' उपन्यास के माध्यम से यह सूचना देते हैं कि आजकल समाज में चुनाव से संबंधित कई समस्याएँ समाज में फैली हुई है। चुनाव के टिकट और सीट के लिए तथा चुनाव जीतने के लिए जाति और धर्मों का सहारा लिया जाता है। तमस में इसका उदाहरण देखने को मिलता है। कानून से भी साधारण लोगों को संरक्षण नहीं मिलता। कानून का फायदा हमेशा उसको मिलता है, जिसके पास धन संपति अधिकार है।

अवसरवादिता :-

अपने व्यक्तिगत लाभ-हानि को दृष्टिगत रखकर, दूसरे मनुष्यों को हानि पहुँचाकर प्रत्येक अवसर में लाभ उठाने की मनोवृत्ति अवसरवादिता कहलाती है। अवसरवादिता व्यक्तिगत हितों एवं स्वार्थ-लिप्साओं तक ही सीमित होती है, इसलिए व्यापक सामाजिक जीवन से यह तटस्थ रहती है। और यह अवसरवादिता ही भ्रष्टाचार को जन्म देती है। यह अवसरवादिता वर्तमान राजनीति का प्रमुख अंग बन गई है। सत्ता पाने के लिए वोटों की राजनीति हो या अन्य कहीं भौतिक सुविधाओं का प्रलोभन इस समस्त क्रियाओं में नैतिक मूल्य पीछे छूटते जा रहे हैं। राजनीति में अवसरवाद और धनलिप्सा निरंतर पनपते जा रहे हैं।

'तमस' उपन्यास में कांग्रेस दल के अनेक सदस्यों का चरित्र राजनीतिक अवसरवादिता से ग्रस्त है। वे कांग्रेस से इसलिए जुड़े हैं, कि देश के राजनीति में वह सबसे बड़ी उभरती पार्टी है। इस पार्टी से जुड़ने के माध्यम से एक ओर 'देश-सेवा' का यश जुटाते हैं दूसरी ओर इस यश के माध्यम से अपने भविष्य को भी सुरक्षित करने का प्रयास करते हैं। कांग्रेस से जुड़े ये राजनीतिक कार्यकर्ता पार्टी के मूलाधार गाँधीवाद के सिद्धांतों को समझने एवं उन्हें व्यवहारिक स्तर पर प्रयोग करने का प्रयास नहीं करते पर उन पर चलने का ढोंग अवश्य करते हैं। सांप्रदायिक दंगों के समाप्त होते ही इनका असली चहेरा सबके सामने आ जाता है। ये अवसरवादी कांग्रेसी कार्यकर्ता घर-घर से उजड़े शरणार्थियों के लिए अंग्रेजी साम्राज्यवाद प्रशासकों द्वारा वितरण किये जा रहे वस्तुओं का ठेका लेकर अपनी स्वार्थलिप्सा पूरी करने की कोशिश करते हैं। कांग्रेस पार्टी का एक सदस्य मनोहारलाल, इस स्थिति का पर्दाफाश करते हुए बख्शीजी पर व्यंग्य करता है- "हमने भी बहुत देखे हैं, हमसे न धुलवाईए बख्शीजी, हम सब जानते हैं। कांग्रेस के मेंबर रिफ्यूजी कैंप में सरकार से सप्लाई के ठेके ले रहें है। कहो तो नाम भी बता दूँ।"[21] शरणार्थियों का शोषण करके अपने घर को भरने वाले ये कार्यकर्त्ता कांग्रेस के ही है।

तमस उपन्यास में अवसरवादिता का एक और रूप देखने को मिलता है। जब दंगा खत्म होता है। हिंदू और मुसलमान दोनों समुदाय में भय उत्पन्न हो जाता है। और तब मुसलमान मुहल्ले में रह रहे हिंदू अपना घर बेच के वहाँ से जल्द से जल्द निकल जाते हैं। वहीं हिंदू मुहल्ले में रह रहे मुसलमान भी जल्द से जल्द अपने संपति को बेच कर अपनी जान की रक्षा करना चाहते हैं। अवसरवादी राजनेता एवं पूंजीपति वर्ग इस अवसर का फायदा उठाते हैं। वे उनके घर सहित जमीन को आधे से भी कम दाम में खरीदते हैं। ठेकदार मुंशी राम अपनी जमीन बेच कर कमिशन खाना चाहता है। वह पृथ्वी चंद से जमीन खरीद लेने की जिद करता है – "दड़बा है तो

भी मैं कहूँगा ले लो। कौड़ियों के मोल बिक रहा है। साथ मिला लोगे तो मकान खूब कुशाद हो जाएगा।"[22] वर्तमान में भी ऐसे फिरकापरस्त लोगों की कमी नहीं है।

संक्षिप्त में कहा जा सकता है कि वर्तमान राजनीति अवसरवादिता के रोग से ग्रस्त है। तमस में अवसरवादी नेताओं और दलों की पोल खुलती नजर आती है। 'मूल्यहीन का शिकार वर्तमान विकृत राजनीति के लिए अवसरवाद 'सार्थक मूल्यों' की तरह स्थापित हो गए हैं।

मोहभंग

आजादी के पूर्व भारत के लोग आजाद भारत की कल्पना करके सुखपूर्ण जिंदगी की आशा कर रहे थे। लेकिन आजादी के बाद स्थिति बदल गई और उनकी सारी कल्पनाएँ टूट गयीं। भीष्म साहनी जी 'तमस' में यह दिखाते हैं कि आजादी से भारतीय जीवन मुश्किल में थी, लेकिन आजादी के बाद स्थिति और बिगड़ गई। देश विभाजन जैसी दुर्घटना ने भारतीयों के सपने को मिट्टी में मिला दिया। आजादी के लिए एक साथ लड़े भारतीय अब हिंदुस्तानी और पाकिस्तानी बन गए। पकिस्तान और हिन्दुस्तान के लड़नेवाले लोगों की स्वार्थता में पड़कर आम जनता का जीवन दयनीय हो गया। उस समय के भारत की दशा का वर्णन लेखक इस प्रकार करता है – "शहर में फसाद होने के बाद एक लहर-सी चल पड़ी थी, जिस इलाके में मुसलमानों की अक्सरियत थी, वहाँ से हिंदू-सिख निकलने लगे थे और जिन इलाकों में हिंदू-सिखों की अक्सरियत थी, वहाँ से मुसलमान घर-बार बेचकर निकल जाना चाहते थे।"[23] लोगों के अन्दर भय का भाव जग गया था। यह भय इतना बढ़ गया की लोग वर्षों से रह रहे अपने जन्मभूमि से भी पलायन करने लगे।

स्वतंत्रता से पूर्व लोगों को अपने राजनेताओं पर बहुत भरोसा था। आम जन इस आशा में बैठे थे कि आजादी के बाद सबकुछ ठीक हो जाएगा। सभी को सुख-सुविधाएँ मिलेगी। बराबर का अधिकार मिलेगा। लेकिन जैसे-जैसे आजादी का वक्त सामने आता गया लोगों का भरोसा टूटता गया। आजादी का सपना लिए भारतीयों को रिफ्यूजी कैम्प में देखकर उनकी सोचनीय दशा का वर्णन भीष्म साहनी जी इस प्रकार करते हैं – "रिलीफ ऑफिस के आँगन में घूमता प्रत्येक व्यक्ति अपना विशिष्ट अनुभव लेकर आया था। लेकिन उसके अनुभव को जाँचने, परखने, उसमें से निष्कर्ष निकालने की क्षमता किसी में नहीं थी। शून्य में ताकते, सिर हिला-हिलाकर हर किसी की बात सुनते रहने के अलावा किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था। एक अफवाह उठती तो आँगन में लोग उठ-उठकर उसे सुनने के लिए जमा हो जाते। कोई नहीं जानता था कि क्या करना है, किधर

जाना है। आगे क्या होगा, उसकी धुँधली-सी रूपरेखा भी किसी की आँखों के सामने नहीं थी। लगता जैसे कोई अनिवार्य घटनाचक्र चल रहा है, जिस पर किसी का कोई बस नहीं, न किसी के हाथ में निर्णय है, न संचालन, न संचालन की क्षमता, कठपुतलियों की तरह सभी घूम रहे थे, भूख लगती तो उठकर इधर-उधर से कुछ खा लेते, याद आती तो रो देते, कान लगाए सुबह से शाम तक लोगों की बातें सुनते रहते।"[24] यह वर्णन निराशाजनक है। और तत्कालीन लोगों की मानसिकता को व्यक्त करता है। लोगों को किसी भी चीज में कोई विश्वास नहीं है। उन्हें खुद की जिंदगी का कोई भरोसा नहीं है। लोगों द्वारा फैल रही अफवाहों को सत्य मान कर वे चिंतित हैं। उन्हें ऐसा लगा रहा है जैसे इसका अब कोई समाधान नहीं है। राजनीतिज्ञों और सरकार से भी उनका मोहभंग हो गया है।

स्वतंत्रता पूर्व मोहभंग धार्मिक आधार पर था। लोगों का भरोसा सरकार से उठ गया था। और लगातार हो रहे दंगों ने हिंदू-मुस्लिम को एक दूसरे के प्रति संदेह के घेरे में लाकर खड़ा कर दिया था। लोगों का विश्वास एक दूसरे के प्रति टूटता जा रहा था। हिन्दू मुसलामनों के मुहल्ले में खुद को सुरक्षित नहीं समझ रहे थे वहीं मुसलमान भी हिंदू के मुहल्ले में खुद को सुरक्षित महसूस नहीं कर रहा था। एक प्रकार से मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। अपने सामने हुए मार-काट को देखकर लोग भयभीत हो गए थे। हिंदू मुस्लिम के टूटते विश्वास का वर्णन लेखक इस प्रकार करते हैं – "क्या बातें करते हो बाबूजी, अब यह ख्याल ही दिमाग से निकाल दो। अब हिंदुओं के मुहल्ले में न तो कोई मुसलमान रहेगा और न मुसलमानों के मुहल्ले में कोई हिंदू। इसे पत्थर पर लकीर समझो। पाकिस्तान बने या न बने, अब मुहल्ले अलग-अलग होंगे साफ बात है।"[25] धार्मिक उन्माद इतना बढ़ गया था कि लोगों का विश्वास एक दूसरे से टूटता जा रहा था।

मोहभंग की यही स्थिति आजादी के बाद भी देखने को मिली थी और वह आज भी देखने को मिल रही है। 'तमस' उपन्यास की घटना के तत्कालीन समय में लोगों के अंदर मोहभंग की स्थिति थी, जो अभी तक खत्म नहीं हुई है। उस समय यह मोहभंग सरकार एवं तत्कालीन राजनीतिक पार्टियों से थी। और वर्तमान में भी राजनीतिक सत्ताधारियों से लोगों का भरोसा उठता ही जा रहा है। लोगों के मोहभंग के संदर्भ में डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी कहते हैं –"स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद जन्म धारण करने वाली युवापीढ़ी ने अपने चारों ओर भ्रष्टाचार, घूसखोरी, चोरबाजारी, महँगाई, अंधकारपूर्ण भविष्य, जीवन की सुख-सुविधाओं का अभाव, राजनीतिज्ञों की अनैतिकता और आदर्शहीनता, स्वार्थपरता, भाई-भतीजावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, जीर्ण-शीर्ण शिक्षा पद्धति, बेरोजगारी आदि संक्षेप में जीवन की सारी विद्रूपताएँ, कुरूपताएँ और जीवन के अभाव आदि को

सुरसा की भांति मुँह बाए खड़ा देखा। उसने जीवन का खंडित रूप देखा और वह भटकी, साथ ही आक्रोश से पूर्ण हो गयी और उसने विद्रोह करने की ठान ली। उसने सामने स्वतंत्रता का भ्रष्ट रूप आया।"[26]

अंततः कह सकते हैं कि आजादी के समय से लेकर आज तक लोगों में मोहभंग की स्थिति बनी हुई है। स्वतंत्रता के बाद भारतीयों को एक अच्छी शासन व्यवस्था की उम्मीद थी। निम्न मध्यवर्ग बेकारी, गरीबी जैसी समस्याओं से लड़कर जिंदगी को आगे बढ़ाने की कोशिश में लगे थे। परिवर्तन तो उच्च वर्ग और राजनेताओं के जिंदगी में ही हुआ। लोग निराश बन गए। युवाओं में शासन के प्रति घृणा का भाव भी जागृत हुआ। भीष्म साहनी ने 'तमस' उपन्यास में इसी मोहभंग की स्थिति की पहली झलक दिखाई है। जो इक्कीसवीं सदी के भारतीयों में भी जारी है, केवल सत्ता में परिवर्तन होता है, आम जनता की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहती है।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि 'तमस' वर्तमान राजनीतिक समस्याओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। उसमें वर्णित तत्कालीन राजनैतिक समस्या आज भी समाज में मौजूद है। स्वतंत्र भारत भी अस्वतंत्र भारत के समान समस्याओं से ग्रस्त है। ये समस्याएँ राजनीतिक वातवरण से उत्पन्न हुई है। भारत विभाजन से लेकर आज इक्कीसवीं सदी तक भी भारत उन समस्याओं से मुक्ति नहीं पा सका है। इसका कारण राजनीति का भ्रष्ट होना और राजनीतिक मूल्यच्युति का होना है। देश की शासन व्यवस्था भी व्यवस्था रहित है। इन समस्याओं से उद्भूत निराशा की छाया सामाजिक प्रगति से रोकती है। राजनीति में गिरते मूल्यच्युति, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, चुनाव और कानूनी समस्या आदि के कारण वर्तमान राजनीति से मोहभंग हो गया है। भीष्म साहनी ने इन राजनीतिक समस्याओं का वर्णन तमस उपन्यास में किया है। ऐसे भी सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ता ही है। वातावरण का प्रभाव एक साहित्यकार की रचनाओं को कालजीय बनाता है। भीष्म साहनी जी का जीवन घटना बहुल भारत में व्यतीत हुआ था। इसलिए तमस इन समस्याओं का पूरित हैं।

4. ख. 'तमस' में सांप्रदायिकता के वर्तमान परिप्रेक्ष्य

इक्कीसवीं सदी पूरे विश्व में अपने परिवर्तन के लिए जाना जाता है। इस सदी में विज्ञान अपने चरम अवस्था पर है, आज दुनिया में औद्योगिकी और तकनीकी के उत्कृष्ट साधन मौजूद है। वर्तमान में लोग अधिक से अधिक मात्रा में शिक्षित हो रहे हैं। पूरे विश्व में भूमंडलीकरण, बाजारीकरण, नगरीकरण, औद्योगिकीकरण का दौर शुरू हो गया है। इस परिर्वतन की नींव को तैयार करने में बीसवीं शताब्दी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस

शताब्दी में भारतवर्ष में आधुनिकता का उन्मेष हुआ और पश्चिम के प्रभाव से यहाँ भी नये-नये विचारों से समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन हुई। इस परिवर्तन का प्रभाव भारतीय जनमानस पर पड़ा। लेकिन इतने परिवर्तन के बाद भी भारतीय समाज में सांप्रदायिकता अभी तक परिवर्तित नहीं हो सकी।

भारत की स्वतंत्रता भारतीय समाज के लिए एक निर्णायक मोड़ था। प्राचीन सांस्कृतिक, सामाजिक रूप में एक गौरवपूर्ण इतिहास भारत के पास है, वहीं दूसरी ओर आजादी के ठीक पहले विभाजन और सांप्रदायिक दंगे उसके वर्तमान को कालिख पोत रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद आधुनिकता का प्रभाव पूरे भारत में बढ़ता गया। लोग धीरे-धीरे शिक्षित होते गए, लेकिन धार्मिक मामलों में उनकी संकीर्णता बढ़ती गई। इस संकीर्णता को बढ़ावा देने में विभिन्न राजनीतिक दल और सांप्रदायिक संगठनों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्होंने अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए सांप्रदायिकता का इस्तेमाल हथियार के रूप में किया। इस संदर्भ में इतिहासकार असगर अली इंजीनियर ने कहा है "आधुनिक भारत में सांप्रदायिक हिंसा के स्वरूप को समझने के लिए विभिन्न वर्गों, सामाजिक संगठनों, सांप्रदायिक और धर्मनिरपेक्ष पार्टियों और इसमें शामिल संप्रदाय के अभिजात वर्गों की आकांक्षाओं को समझना जरुरी है।"[27]

स्वातंत्र्योत्तर भारत में सांप्रदायिक विचारधारा का प्रसार हुआ तो इसके पीछे विभिन्न कई कारण मौजूद है। स्वतंत्रता के बाद भी धर्म और संप्रदाय के नाम पर कई दंगे हुए। लोग शिक्षित हुए लेकिन फिर भी सांप्रदायिकता की छाया लोगों के मस्तिष्क से नहीं हटी। बल्कि उसका क्षेत्र धीरे-धीरे बढ़ता गया और बढ़ते-बढ़ते इतना बढ़ गया कि वर्तमान में केवल धर्म ही नहीं बल्कि अर्थ, राजनीति, भाषा, क्षेत्रीयतावाद, जातिवाद आदि मिलकर पूरे भारत में सांप्रदायिक विद्वेष का कारण बने हुए हैं। भारत धर्म, भाषा, क्षेत्र और जाति के नाम पर विभाजन के एक ऐसे ज्वालामुखी पर खड़ा है, जिसका विस्फोट कभी भी समूचे भारत को छिन्न-भिन्न कर सकता है।

आज एक भिन्न प्रकार के सभ्यता-संक्रमण की प्रक्रिया जारी है। सभ्यता-संक्रमण की प्रक्रिया कभी अंतर्विरोध से मुक्त नहीं होती है। संक्रमण की इस प्रक्रिया में सभ्यता की पुरानी जटिलताओं के अंतर्विरोध नये रूपों में सामने आ रही है। आज का हमारा समय पुनर्विचार का समय है। सीखे हुए को भूलने और भूलकर फिर नये सिरे से सीखने का समय है। जिस पर 'पुनर्विचार' और जिसका पुनर्निर्माण करना हो उसके पुनर्आविष्कार की भी जरूरत तो होती ही है। रचना और पाठ का यथार्थ से जितना गहरा नाता होता है, उससे कम गहरा नाता कल्पनाशीलता से नहीं होता है। हाँलाकि 'यथार्थ' और 'कल्पना' के अंतर्स्संबंधों को लेकर विवाद रहा है।

जीवन में और साहित्य में भी, 'यथार्थ' से 'कल्पना' तक की यात्रा होती है, या 'कल्पना' से शुरू कर हम 'यथार्थ' तक पहुँचते हैं? मानव-उद्यम के विभिन्न निकायों में जो होता है, साहित्य में क्या होता है ? अतः यथार्थ और कल्पना का सहारा लेकर भीष्म साहनी ने सांप्रदायिक नरसंहार का चित्रण 'तमस' में किया है।

तमस उपन्यास में धर्म, भाषा जाति के नाम पर बँट रहे भारतीय जनमानस का वर्णन है। घटना भले ही स्वतंत्रता पूर्व का है लेकिन उसमें वर्णित समस्या वर्तमान की सांप्रदायिक समस्या को व्यक्त करता है। वर्तमान में मौजूद सांप्रदायिकता को फैलने वाले कारकों के परिप्रेक्ष्य में 'तमस' उपन्यास को देखा जा सकता है। जो निम्नलिखित है –

क. आर्थिक परिप्रेक्ष्य

ख. भय एवं कुंठा

ग. धर्म और सांप्रदायिकता

घ. स्वायतशासी संस्थाओं का सांप्रदायिककरण

ड़. सांप्रदायिक दंगे के समय स्त्री की दशा

क. आर्थिक परिप्रेक्ष्य :-

अधिकतर विद्वानों का मानना है कि सांप्रदायिकता का मूल कारण आर्थिक विषमता, बेकारी, गरीबी और भुखमरी है। स्वतंत्रता के बाद हिंदुओं और मुसलमानों का मध्यम वर्ग पैदा हुआ जिसमें व्यापारी, ठेकेदार, शिक्षित मध्यम वर्ग और छोटे मिल मालिक शामिल थे, उसके व्यक्तिगत स्वार्थ टकराये जाने लगे। वहीं बढ़ती जनसंख्या के कारण अधिक से अधिक लोग बेरोजगार होने लगे। लोगों के सामने आर्थिक समस्या खड़ी हुई। विभिन्न धार्मिक संगठनों के लीडरों और वोट बैंक की राजनीति करने वाले राजनेताओं ने इसका फायदा उठाया। उन्होंने आर्थिक अवस्था से तंग हिंदू-मुस्लिम को यह कहकर भड़काया कि हिंदू के दयनीय स्थिति का जिम्मेवार मुसलमान और मुसलमानों की इस स्थिति का जिम्मेदार हिंदू है। इन लीडरों और नेताओं ने अर्थ का लालच देकर लोगों से सांप्रदायिक दंगे भी करवाएँ।

तमस में भी सांप्रदायिकता को फैलाने वाले आर्थिक कारण पर इशार किया गया है। सलोतरी साहब के कहने पर मुरादअली गरीब नत्थू को पाँच का नोट थमा कर सूअर मरवाता है। बाद में उस सूअर को मस्जिद की सीढ़ियों पर फेक दंगा करवाता है। बेचारा गरीब नत्थू उस पाँच रूपया और मुरादअली द्वारा उसे चमरे बंद करवा देने के भय से वह सूअर मारने के लिए तैयार हो जाता है। लेखक के शब्दों में "नत्थू के हाथ अभी भी बंधे थे लेकिन चरमराता पाँच का नोट जेब में पड़ जाने से मुँह से बात निकल नहीं पाती।"[28] यहाँ जो नत्थू की स्थिति है, वह आर्थिक विषमता के कारण से ही है। एक तो उसे पाँच रूपया कमाने के लिए काफी मेहनत करनी पड़ेगी दूसरा यह भी कि वह मुरादअली का काम नहीं करेगा तो मुरादअली उसे चमरे दिलवाना बंद कर देगा और उसकी रोजी-रोटी नहीं चलेगी। सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने वाले लोग इस तरह गरीब, बेबस आर्थिक रूप से कमजोर लोगों का फायदा उठाते हैं। आज भी धर्म और संप्रदाय के नाम पर पैसे का लालच देकर ही गरीबों और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों से गलत काम करवाया जाता है। नत्थू की गरीबी का ही फायदा मुरादअली ने उठाया।

बेरोजगारी की समस्या ने भी सांप्रदायिकता की बढ़ोत्तरी में बहुत योगदान दिया है। विभिन्न सांप्रदायिक दलों ने बेरोजगार युवकों को अपनी तरफ आकर्षित किया है। असगर अली इंजीनियर ने बेरोजगार युवकों का सांप्रदायिकता के प्रति आकर्षण पर कहा है "ये संगठन बेरोजगार युवकों को केवल काम ही नहीं देते बल्कि नेता बनने के अवसर भी प्रदान करते हैं। आगजनी और लूटपाट में बेरोजगार युवक मुख्य रूप से भाग लेते हैं।"[29] इस तरह बेरोजागर युवा आर्थिक प्रलोभन में आकर कट्टर पंथियों के हाथ का खिलौना बन कर रह जाते हैं। तमस में बेरोजगारी की इस विषम समस्या का चित्रण सीधे तौर पर नहीं हुआ लेकिन ऐसे युवकों और लोगों को अवश्य दिखाया गया है, जो आर्थिक रूप से तंग है और पैसे के लिए वह कुछ भी कर सकते हैं। लोग आर्थिक रूप से इतने मजबूर हैं कि अपनी मरी हुई पत्नी का सोने का कंगन निकलवाना चाहते हैं। दंगे के दौरान जब सत्ताइस औरतें कुएँ में कूद कर जान दे देती है और बाबू जान-माल का नुकसान का आकड़े लिख रहे होते हैं तो एक सरदार अपनी मरी हुई पत्नी के हाथों का कंगन निकलवाने के लिए कहता है, लेकिन आंकड़ा बाबू उसे मना करता है, इतने औरतों के सरे हुए लाशों के बीच में वह कंगन कैसे ढूंढेगा। उस पर सरदार जो कहता है वह आर्थिक महत्ता की दृष्टि से अत्यंत मार्मिक है "यह तुम हम पर छोड़ दो वीरजी, मैं कड़े देखकर ही पहचान लूँगा। पाँच-पाँच तोले का एक कड़ा है। गले में सोने की जंजीरी है। अब घरवाली डूब मरी, जो सबके साथ हुई

है, वह मेरे साथ भी हुई है, पर ये कड़े और जंजीर मैं कैसे छोड़ दूँ ? क्यों वीरजी ?"[30] यह पूरी स्थिति में व्यक्ति आर्थिक विषमता को दर्शाता है।

पूंजीवाद वर्ग भी धर्म और सांप्रदायिकता का इस्तेमाल अपने आर्थिक संकट के दौरान करता है। जहाँ तक आर्थिक स्तर पर हिंदुओ-मुसलमानों की तुलना का सवाल है, निश्चित रूप से उनके बीच आधुनिक प्रगति के स्तर पर गहरी खाई है। तमस उपन्यास में आर्थिक बढ़ती खाई के कारण सांप्रदायिकता का शिकार हो रहे लोगों की कथा है। यह कथा वर्तमान में भी उतनी ही प्रासंगिक है।

ख. भय और कुंठा :

भय और कुंठा सांप्रदायिकता से जन्म लेती है और जब लोगों में असंतोष की भावना फैलती है तो, वे सांप्रदायिक दंगे करने के लिए उतारू हो जाते हैं। आर्थिक और सामाजिक असुरक्षा के भाव ने लोगों के अंदर भय और कुंठा को जन्म दिया है। देश विभाजन में इस भय और कुंठा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जब जगह-जगह दंगे हो रहे थे तो मुसलमान अपने को हिन्दुओं के बीच असुरक्षित महसूस करने लगे और हिंदू मुसलमानों के बीच खुद को। इसी असुरक्षा के भाव ने भय और कुंठा को पैदा किया। और इस भय और कुंठा से ग्रसित हो कर लोग हिंसक प्रवृत्ति को अपनाने में मजबूर हो गए।

'तमस' में भी इस भय और कुंठा भरे दृश्य का वर्णन कई स्थानों पर होता है। सांप्रदायिक भावना की ताकत इतनी होती है कि जिसके अंदर सांप्रदायिक भावना नहीं है, वह भी इसमें शामिल होने के लिए मजबूर हो जाता है। तमस उपन्यास में शाहनवाज एक ऐसा ही पात्र है। लेखक ने पहले उसे एक ऐसा व्यक्ति के रूप में दर्शाता है, जो दंगे की स्थिति में भी अपने हिंदू दोस्त से मिलने जाता है। हिंदू-मुस्लिम के दंगे का उसके दोस्ती पर कोई असर नहीं पड़ता है, लेकिन अपने मुसलमान भाई के मरे लाश को देख कर उसके अंदर सांप्रदायिक भाव जाग उठता है और वह न चाहते हुए भी वह मिलखी को मार कर गिरा देता है। उपन्यासकार के शब्दों में "डिब्बे को दोनों हाथों में उठाए शाहनवाज पीछे-पीछे चला आ रहा था जब सहसा उसके अंदर भभूका-सा उठा। न जाने क्यों हुआ, मिलखी की चुटिया पर नजर जाने के कारण, मस्जिद के आँगन में भीड़ देखकर, या इस कारण कि जो कुछ पिछले तीन दिन से देखता-सुनता आया था वह विष की तरह उसके अंदर घुलता रहा था। शाहनवाज ने सहसा ही बढ़कर मिलखी की पीठ में जोर से लात जमाई। मिलखी लुढ़कता हुआ गिरा और सीढ़ियों के मोड़ पर सीधे दीवार से जा टकराया।.....शाहनवाज का गुस्सा, जिसका कारण वह स्वयं नहीं

जनता था, बराबर बढ़ता जा रहा था। पास से गुजरते हुए उसका मन हुआ पैर उठाकर उसके मुँह पर दे मारे, और कीड़े को कुचल दे, पर सीढ़ियों के मोड़ पर उसे अपना संतुलन खो देने का डर था।"[31] यह पूरी स्थिति कुंठा को दर्शाती है। शाहनवाज मिलखी को क्यों मारा यह स्वयं उसे पता नहीं है। यही सांप्रदायिकता की ताकत है। वर्तमान में भी जहाँ सांप्रदायिक दंगे होते हैं, जरुरी नहीं है वहाँ सब व्यक्ति सांप्रदायिक हो लेकिन अपने धर्मों के लोगों को मरता देख यह भाव उसके अंदर जागृत हो जाता है।

सांप्रदायिक दंगे अधिकतर भय के कारण होते हैं। यह भय एक समुदाय से दूसरे समुदाय का है। जब यह भय लोगों के अंदर उत्पन्न होता है, तो उसे ऐसा लगने लगता है कि अन्य समुदाय का व्यक्ति हम पर हमला कर देगा। दूसरे समुदाय का व्यक्ति भी यही भय में रहता है और दोनों एक दूसरे के खिलाफ साजिश रचने लगते हैं। अतः यही भय बाद में सांप्रदायिक दंगे का रूप लेता है। इस संदर्भ में प्रो. बिपिन चंद्र का कहना है कि "न केवल मुसलमान, सिख और इसाई जो धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक थे, अपितु हिंदू भी इस चिंता के उतने ही शिकार थे और भय तथा हिंसा की आशंका से आतंकित रहते थे। वंचित होने का, धमकायें जाने का, दबाये जाने का, हटाये जाने का, यहाँ तक कि समाप्त कर दिए जाने का, अपनी पहचान, यहाँ तक कि जीवन तक खो देने का भय व्याप्त था।"[32]

भीष्म साहनी ने 'तमस' में इस भय की स्थिति का वर्णन किया है। शहर में दंगे के कारण जब स्थिति बिगड़ती है तो, मुसलमानों को यह लगता है कि हिंदू और सिख मंदिरों और गुरुद्वारों में उनके लिए असला, हथियार इकट्ठा कर रहे हैं। हिन्दुओं और सिखों को लगता है कि मुसलमान उनके लिए मस्जिदों में हथियार और असला इकट्ठा कर रहे हैं। भय की स्थिति में दोनों एक दूसरे के खिलाफ हिंसक हो उठते हैं। उन्हें अपनी सुरक्षा का भय बार-बार परेशान करता है और इसी परेशानी में डूब कर वे सांप्रदायिक दंगे के लिए उतारू हो जाते हैं। मुसलमानों के भय से सिखों द्वारा हथियार इकट्ठा किए जा रहे थे इसका वर्णन भीष्म साहनी इस प्रकार करते हैं "असला पिछले बरामदे में तथा ग्रंथी की कोठारी में इकट्ठा किया जा रहा था। गाँव के साथ गुरुसिंघों के पास दोनाली बंदूकें थीं और पाँच बक्से कारतूसों के थे।"[33]

वर्तमान समाज में भी देखे तो भय और कुंठा की स्थिति कहीं न कहीं लोगों के अंदर विद्यमान है। आज भी बहुत से ऐसे हिंदू हैं जिन्हें मुसलमानों से घृणा है और बहुत ऐसे मुसलमान हैं जिन्हें हिंदुओं से घृणा है। घृणा के साथ-साथ इनके अन्दर एक भय भी है, कहीं कोई इन्हें कुछ कर न दे। इसी भय से कुंठा उत्पन्न हुआ है और कुंठा ने ही सांप्रदायिक हिंसा को जन्म दिया है। तमस में सांप्रदायिक हिंसा का कारण भय और कुंठा ही है।

ग. धर्म और सांप्रदायिकता के वर्तमान परिप्रेक्ष्य :-

वर्तमान में भी धार्मिक दंगे फैलाने में सांप्रदायिकता महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। धर्म को यह आज भी हथियार के रूप में इस्तेमाल कर रही है। यही कारण है कि निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा धर्मप्राण जनता को धर्म के नाम पर ही उकसाया जाता है। सांप्रदायिक दंगों में हमेशा ही धार्मिक उन्माद ने, धर्मान्धता ने प्रमुख भूमिका निभायी है। निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा धर्मोन्मद के कुहासे में धर्म के नाम पर अधर्म करने के लिए धर्मभीरु जनता को गुमराह किया जाता है। सांप्रदायिक शक्तियाँ धर्म की दुहाई देकर अशिक्षित और धर्मभीरु जनता को सांप्रदायिकता की आग में झोंक देती है। लेकिन यह भी निर्विवाद कहा जा सकता है कि धर्म और सांप्रदायिकता नितांत दो अलग-अलग अवधारणाएँ हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि सांप्रदायिक शक्तियाँ अपने निहित स्वार्थों के पूर्ति के लिए धर्म का चश्मा लगाकर हमारी धर्मभीरु जनता को गुमराह करते हैं जिसकी परिणति दंगों के रूप में होती है।

वर्तमान में भी धर्म के नाम पर सांप्रदायिक शक्तियाँ अपना दबदबा बनाए हुए हैं। तमस में धर्म के नाम पर सांप्रदायिक दंगे को फैलने वाले कारकों का वर्णन है। धार्मिक विद्वेष फैलने में उपनिवेशिक ताकतों के साथ हमारे धार्मिक संगठनों ने भी सक्रिय भूमिका निभाई है। वे अपने स्वार्थ के सिद्धि के लिए समाज को धर्म के नाम पर बाँटा है। और लोग बिना सोचे-समझे उनके झाँसे में आ गए। धर्म को सांप्रदायिक रूप देने का काम हमारे ही धार्मिक संगठनों के लीडरों ने किया। तमस में अपने हितों की रक्षा और धर्म की रक्षा के नाम पर सांप्रदायिकता की भावना को बढ़ावा देने में धार्मिक ताकतों का एक उदाहरण द्रष्टव्य है- "यही तो हम हिंदुओं की कमजोरी है। प्यास लगने पर कुआँ खुदवाते हैं। आज जब हालत बिगड़ रही है और मुसलमान जामा मस्जिद में असला इकट्ठा कर रहे हैं, हम लाठियाँ खरीदने जा रहे हैं।"[34] शहर में जब दंगा फैलने लगता है तो धार्मिक लीडर लोगों को दंगे के लिए और ज्यादा भड़काते है। वर्तमान में भी हमें धर्म का यही रुप देखने को मिल रहा है। आज भी धार्मिक संगठन दंगा रोकने के बजाय उसे बढ़ावा देने का काम करती है।

धर्म सांप्रदायिकता का कारण नहीं है, वह उसका माध्यम मात्र है। स्वार्थी राजनेता और धार्मिक लीडर धर्म को सांप्रदायिकता का रूप दे कर हमारा इस्तेमाल करते हैं। प्रो. बिपिन चंद्र इस संदर्भ में कहते हैं "संप्रदायवादी धर्म का इस्तेमाल इसलिए करते थे कि धार्मिक विभाजन की पहले से विद्यमान चेतना करके राजनीतिक विभाजन की एक अन्य ही प्रकार की चेतना को उत्पन्न किया जा सके। उन्होंने धर्म को केवल

अपने राजनीतिक लक्ष्यों के लिए एक समूह एवं विभाजक सिद्धांत के रूप में प्रयुक्त किया। इसके अतरिक्त उनके लिए धर्म का कोई उपयोग न था।"[35]

धर्मांतरण वर्तमान में प्रमुख समस्या के रूप में उभर रही है। आज कई जगहों पर धर्मांतरण की घटनाएँ सुनने को मिलती है। विभिन्न सांप्रदायिक भाव से ग्रसित लोग अपने शक्ति का प्रयोग कर धर्मांतरण करवाते हैं। 'तमस' में भी धर्म परिवर्तन का मार्मिक रूप दिखाई पड़ता है। हरनाम सिंह का पुत्र इकबाल सिंह दंगे के समय जब मुसलमानों द्वारा पकड़ा जाता है, तब उसे तरह-तरह से प्रताड़ित किया जाता है। उसे पिटा जाता है, धर्म परिवर्तन के लिए मजबूर किया जाता है। अपनी जान की रक्षा के लिए वह धर्म परिवर्तन के लिए मान जाता है। धार्मिक परिवर्तन के इस मार्मिक दशा का वर्णन भीष्म साहनी जी इस प्रकार करते हैं – "बाएँ हाथ से इकबाल सिंह का मुँह खोला और दाएँ हाथ में पकड़ा मांस का बड़ा-सा टुकड़ा, जिसमें से टप-टप खून की बूँदें चू रही थीं, इकबाल सिंह के मुँह में डाल दिया। इकबालसिंह की आँखे बाहर आ गई। उसका साँस रूक रहा था।"[36]

इक्कीसवीं सदी का यह दौर खुद को आधुनिक कहता है, लेकिन धार्मिक संकीर्णता आज भी उसमें वैसी की वैसी है। भीष्म साहनी ने इस संकीर्ण मानसिकता का उजागर तमस उपन्यास में किया। जब कोई व्यक्ति एकता और अमन की बात करता है तो मौलादाद कहता है "मुसलमान का दुश्मन हिंदू नहीं है, मुसलमान का दुश्मन मुसलमान है, जो दुम हिलाता हिंदुओं के पीछे-पीछे जाता है, उनके टुकड़ों पर पलता है।"[37] इस संकीर्ण मानसिकता ने वर्तमान को भी काफी प्रभावित किया। यही कारण है कि लोग शिक्षित होने के बावजूद इनके झाँसें में आ जाते हैं। आज भी प्रायः सांप्रदायिकता को धर्म का पर्याय बनाकर पेश किया जाता है। यही कारण है कि आज लोग धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर जान की बाजी लगा देंगे पर रोटी के सवाल पर नहीं।

घ. स्वायत्तशासी संस्थाओं का सांप्रदायिकीकरण :-

वर्तमान सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने में स्वायत्तशासी संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। धार्मिक रक्षा और देश की सेवा के नाम पर ये सांप्रदायिक संगठन सांप्रदायिकता को प्रखर करने का कार्य किया है। इन संस्थाओं ने युवकों को अपनी ओर आकर्षित किया है। साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में भी सांप्रदायिक विचार फैलाने की कोशिश की। इन स्वायत्तशासी संस्थाओं ने धर्म के नाम पर अपनी सांप्रदायिक शक्ति का विस्तार किया। तमस में इन धार्मिक संस्थाओं द्वारा आम-जन में फैलाए जा रहे सांप्रदायिकता का वर्णन था। चाहे हिंदू

सांप्रदायिकतावादी संगठन हो या मुस्लिम सांप्रदायिकतावादी संगठन दोनों ने आपसी वैमनस्य को बढ़ाने का ही काम किया। युवकों को अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें सांप्रदायिकता का पाठ पढ़ाया।

'तमस' में भी भीष्म साहनी ने ऐसे संगठनों का वर्णन किया है, जो सांप्रदायिक दंगे फैलाने में कम जिम्मेवार नहीं थे। जब शहर की स्थिति बिगड़ जाती है तो हिंदू संगठनों के लीडर माहौल को ठीक करने के बजाय और खराब करते हैं। युवकों को सांप्रदायिक दंगा करवाने के लिए तैयार करते हैं। जैसे- "युवक समाज का काम ठंडा पड़ा है। देवव्रतजी को आपने और कामों में लगा रखा है। मैं समझता हूँ युवकों को लाठी सिखाने का काम फौरन शुरू कर देना चाहिए। दो सौ लाठियाँ आज ही मंगवाकर बाँट दी जाएँ।"[38] इस प्रकार ये धार्मिक संस्थाएँ स्थिति को और अधिक बिगाड़ने का काम करते हैं। वर्तमान में सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने के लिए युवकों का बहुत ज्यादा इस्तेमाल किया जा रहा है। बेरोजगारी और आर्थिक तंगी का फायदा उठा कर धार्मिक संगठन युवकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और उनसे सांप्रदायिक नरसंहार करवाते हैं। भीष्म साहनी इस गंभीर समस्या पर चिंतन करते हैं। वे रणवीर के माध्यम से यह दर्शातें है कि धार्मिक संगठन किस प्रकार युवकों को अपने जाल में फँसा रहा है ? भोले-भाले बच्चे को सांप्रदायिक का जहर पिला रहे हैं। तमस में रणवीर भी एक ऐसा भोला-भला बच्चा है। जिसे हिंसा क्या होता है कुछ पता नहीं। मगर देवव्रत उसे हिंसक बनने की शिक्षा देता है। शिक्षा पाने से पहले उसे मुर्गी काटने को कहता है। रणवीर मुर्गी काटने में बहुत ज्यादा हिच-किचाता क्योंकि उसके अंदर हिंसक भाव दृढ़ नहीं थी। मुर्गी को न काट पाने से देवव्रत उसे थप्पड़ मार के कमरे में चला जाता है। और रणवीर दृढ़ प्रतिज्ञा लेकर मुर्गी को काटने में सफल हो जाता है। उपन्यासकार के शब्दों में "मास्टरजी ने कहा, और पास आने पर रणवीर की पीठ थपथपा दी। "शाबाश ! तुममें दृढ़ता है, संकल्प-शक्ति है, भले ही हाथ में ताकत अधिक नहीं है। तुम दीक्षा के आधिकारी हो। कहते हुए मास्टरजी जमीन की ओर झुका और पत्थर की सिल पर पड़े खून से अपनी उँगली भिगोकर रणवीर के माथे पर खून का टीका लगा दिया।"[39]

आगे चलकर रणवीर युवकों का लीडर बन जाता है। देवव्रत उसे पूरी तरह से सांप्रदायिक शिक्षा दे देता है। मुसलमानों के प्रति उसके अंदर जहर भर देता है। यह जहर इतना अधिक होता है कि रणवीर हत्या करने को तैयार है। रणवीर के लिए कल तक जो मुसलमान उसके पड़ोसी हुआ करते थे अब वह उसके लिए म्लेच्छ हो जाते हैं। जो कल तक एक मुर्गी काटने में घबरता था वह अपने साथियों को मुसलमान म्लेच्छों को कैसे मारा जाए इसकी शिक्षा दे रहा है "शत्रु की छाती अथवा पीठ को कभी भी निशाना नहीं बनाओ। वार हमेशा कमर में

करो या पेट में। और घुमावदार छुरा घोंपने के बाद उसे अंदर ही अंदर थोड़ा मोड़ दो, इससे अंतड़ियाँ बाहर आ जाएँगी। अगर तुम भीड़ में शत्रु पर वार करते हो तो छुरा बाहर खींचने की कोशिश नहीं करो, उसे वहीं रहने दो और भीड़ में खो जाओ।"[40]

वर्तमान में भी हम देखते हैं कि ये स्वायत्तशासी संस्था युवकों का इस्तेमाल ऐसे ही दंगे को फैलाने में करते हैं। युवकों का इनके तरफ आकर्षण एक गंभीर समस्या है। युवक देश का भविष्य निधारित करते हैं। परंतु स्वायत्तशासी संस्थाएँ इनके कमजोरियों का फायदा उठाकर इन्हें गलत दिशा में आकर्षित करते हैं। इस गंभीर समस्या पर चिंतन करने की आवश्यकता है और इसे जल्द से जल्द बदलने की भी अन्यथा पूरा देश सांप्रदायिक के तमस में खो जाएगा।

ङ. सांप्रदायिक दंगे के समय स्त्री की दशा :-

सांप्रदायिकता दंगा स्त्रियों के लिए सबसे भयावह बन कर आती है। इस पर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है। स्त्रियाँ दंगे के समय सर्वाधिक प्रभावित होती हैं क्योंकि दंगा उनके लिए शारीरिक एवं मानसिक यातना बन कर आती है और दीर्घकालिक यंत्रणादायी होती है। दंगे में जान-माल की हानि तो होती ही है, स्त्री के संदर्भ में यह यौन-दुराचार, छेड़खानी और बलात्कारयुक्त भी होती है। यौन हिंसा इतनी भयावह होती है कि इसका परिणाम पीढ़ियों तक भुगतना पड़ता है। इस संदर्भ में वृंद कारात लिखती हैं - "सांप्रदायिक हिंसा का सबसे आसान शिकार महिलाएँ ही होती हैं। किसी भी समुदाय में महिलाएँ दोयम दर्जे की स्थिति में होती हैं, एक गौण नागरिक होती है और समुदाय विशेष की 'मिल्कियत' होती हैं। उन्हें 'इज्जत' और 'सतीत्व' और 'शुचिता' के साथ जोड़कर देखा जाता है। यदि किसी समुदाय का वर्चस्व कायम करना होता है तो इसी पर सबसे पहले हमला किया जाता है।"[41] आज के परिप्रेक्ष्य में भी सांप्रदायिक दंगों के समय स्त्रियों की दशा देख तो उसमें कोई खास परिवर्तन नहीं आया है। सांप्रदायिक दंगे का फायदा उठाकर आज भी उससे बलात्कार किए जाते हैं, और उससे उनकी जिंदगी बद से बदतर बना दी जाती है।

'तमस' में स्त्रियों की इस दयनीय दशा का वर्णन है। जिसमें निर्दोष स्त्रियाँ सांप्रदायिक दंगे का शिकार बनती है। जब मुसलामनों द्वारा गुरुद्वारे पर हमला किया जाता है, तो 27 सिख स्त्रियाँ अपनी आबरू की रक्षा के लिए कुएँ में कूद कर जान दे देती है। भीष्म साहनी ने इस अति मार्मिक दशा का वर्णन इस प्रकार करते हैं "सबसे पहले जसबीर कौर कुएँ में कूद गई। उसने कोई नारा नहीं लगाया, किसी को पुकारा नहीं, केवल 'वाह

गुरु' कहा और कूद गई। उसके कूदते ही कुएँ की जगत पर कितनी स्त्रियाँ चढ़ गई। हरि सिंह की पत्नी पहले जगत के ऊपर जाकर खड़ी हुई, फिर उसने चार साल के बेटे को खींचकर ऊपर चढ़ा लिया, फिर एक साथ ही उसे हाथ से खींचती हुई नीचे कूद गई। देवसिंह की घरवाली अपने दूध पीते बच्चे को छाती से लगाए ही कूद गई। प्रेमसिंह की पत्नी खुद तो कूद गई, पर उसका बच्चा पीछे खड़ा रह गया। उसे ज्ञानसिंह की पत्नी ने माँ के पास धकेलकर पहुँचा दिया। देखते ही देखते गाँव की दसियों औरतें अपने बच्चे को लेकर कुएँ में कूद गई।"[42] मृत्यु से भी ज्यादा दुःखदायी बलत्कार होता है। क्योंकि जिन स्त्रियों का बलत्कार हुआ उसे पूरी जिंदगी इसी बदनामी से जीना पड़ता है। लोग उसे हर वक्त एक अलग नजरिए से देखते हैं। उन्हें पल-पल मरना पड़ता है। इस भय से स्त्रियाँ अपनी जान गवाँना ही सही समझती है क्योंकि पल-पल मरने से एक बार ही मर जाना वह सही है। इस विषय में यशपाल जी के उपन्यास 'झूठा-सच' की बंती सोचती है – "सब जुल्म के लिए हम स्त्रियाँ रह गई हैं। मर्द को काटकर टुकड़े भले ही कर दें, उनकी बेइज्जती तो नहीं करते।"[43]

सांप्रदायिक दंगे के समय स्त्री मानस के एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण गतिविधि को भी रेखांकित किया जा सकता है। यह सदैव देखा गया है कि दंगों में बलात्कार की शिकार महिलाओं और उसके परिवारवालों ने मामले को दबाने की यथा संभव कोशिश करते हैं। उन्हें अपने इज्जत का ख्याल रहता है। तमस में भी ऐसी एक घटना देखने को मिलता है। दंगे के समय एक ब्राह्मण चपरासी की बेटी को मुसलमान उठा कर ले जाता है। और वह दंगे शांत होने पर आँकड़ा बाबू से अपनी बेटी खोजने की बात करता है। लेकिन जब आंकड़ा बाबू उसे बेटी को ढूंढने के लिए जाने को कहता है, तो कुछ सोच कर वह मना कर देता है "अब नहीं मिलेगी जी, अब प्रकाशो कहाँ मिलेगी !" पर तुम तो कहते थे गाँव के किसी आदमी ने उसे घर में बिठा लिया है।" "भगवान जाने जी, क्या हुआ है उसके साथ।".....अब हमारे पास आकर क्या करेगी जी, बुरी वस्तु तो उसके मुँह में उन्होंने पहले से ही डाल दी होगी।"[44] सांप्रदायिक दंगे के स्थिति में स्त्रियों की यही दशा होती है।वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में भी कुछ बदला नहीं है। जहाँ कहीं भी सांप्रदायिक दंगे होते हैं वहाँ यौन शोषण सुनने को मिल ही जाता है। सांप्रदायिक की आड़ में ऐसे लोगों अपनी शारीरक भूख को मिटाते हैं। और गंभीर समस्या पर लोग ध्यान भी नहीं देते हैं।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी जी ने जिन समस्याओं का चित्रण 'तमस' में किया है वह आज भी मौजूद है। उसका क्षेत्र आज बढ़ता जा रहा है। 'तमस' का आकलन वर्तमान परिप्रेक्ष्य पर करने से यह साफ हो जाता है कि 'तमस' आज भी उतना प्रासंगिक है जितना कल था। 'तमस' में वर्तमान

सांप्रदायिकता का आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक सभी रूप देखने को मिलता है। अतः हम कह सकते हैं कि वर्तमान में जो सांप्रदायिकता के नए रूप उभर कर आये हैं, उन रूपों को व्यक्त करने में 'तमस' सक्षम है।

4.ग. तमस का शिल्प विधान

किसी भी साहित्य में शिल्प का विशेष महत्त्व होता है। शिल्प के अभाव में रचना की प्रभावोत्पादकता में कमी आती है। उपन्यासिक शिल्प में उन सभी नियमों, विधियों, प्रतिक्रियाओं और तरीकों का समावेश होता है, जिसकी सहायता से उपन्यासकार किसी घटना, पात्र, दृश्य और वार्तालाप को सजीव बनाता है। 'शिल्प' मूलतः अंग्रेजी के 'टेकनीक' शब्द का अनुवाद है। 'टेकनीक' शब्द की व्याख्या 'ऑक्सफोड डिक्शनरी' में इस प्रकार की गई है "कलात्मक कार्य विधि की वह पद्धति जो संगीत अथवा चित्रकला में प्राप्य है।"[45] डॉ. नगेंद्र शिल्प को अंग्रेजी के 'क्राफ्ट' शब्द का पर्याय मानते हैं।"[46] वृहत हिंदी कोश में शिल्प शब्द का अर्थ है "किसी चीज के बनाने या रचने के ढंग अथवा तरीका। किसी वस्तु को रचने की जो विधियाँ अथवा प्रक्रियाँ हैं उनके समुच्चय को शिल्प विधि के नाम से पुकारा जाता है।"47

'शिल्प' शब्द को परिभाषित करने का प्रयास अनेक विद्वानों ने किया है। डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल जी ने शिल्प शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है कि "शिल्प विधि कला के विभिन्न तत्वों एवं योजना का वह विधान, वह ढंग है जिससे कलाकार की अनुभूति अमूर्त्त से मूर्त्त हो जाये।"[48] यहाँ लाल जी मानते हैं कि किसी अमूर्त्त वस्तु को मूर्त्त रूप शिल्प के माध्यम से ही संभव है। डॉ. त्रिभुवन सिंह का मानना है कि "शिल्प के माध्यम से ही हम प्रबंध काव्य, महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, गीत, आख्यान, नाटक, एकांकी, कहानी और उपन्यास के अंतर को समझ पाते हैं।"[49] श्रीनारायण अग्निहोत्री शिल्प को रचनाकार का रचना कौशल मानते हुए कहते हैं कि "ज्ञान अपने में अखंड है और शाश्वत है पर उसे अपने ढंग से आत्मसात् करके नए सिरे से लोक चेतना के लिए ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करने के लिए लेखक द्वारा जो बौद्धिक नियोजन किया जाता है, उसी को लेखक का रचना-कौशल कहते हैं। अपने मंतव्य को दूसरों के लिए हम इस प्रकार प्रकाश में लाए कि लोग सहसा उसकी ओर उन्मुख हो जाएँ और इष्ट मंतव्य प्रकाश की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया पूर्ण होने तक उसी में रमे रहें तब यह रचनाकार का कौशल कहलाएगा।"[50]

उपर्युक्त कोशगत अर्थों और विद्वानों द्वारा दिये गए परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि शिल्प का अर्थ कहने का ढंग है अर्थात् विचाररूपी शरीर का श्रृंगार है या मेकअप है। किसी रचना की सफलता इस बात पर

बहुत अधिक निर्भर करती है कि उसके कथ्य को किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है । प्रेमचंद 'गोदान' महाकाव्यात्मक उपन्यास में जिस प्रकार ग्रामीण और शहरी जीवन के समानांतर का चित्रण किया है वह इस शिल्प के माध्यम से ही संभव हुआ है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने जिस प्रकार नया प्रयोग किया है और उन्होंने बाणभट्ट की आत्मा में प्रवेश किया, ये शिल्प से ही संभव हो पाया है। अज्ञेय ने 'शेखर एक जीवनी' में जिस प्रकार पूर्वदीप्ति और स्वछंद प्रवाह से लगभग 48 घंटे की कथा को समेटा है वह इस उपन्यास की अलग छवि बन गई है। अतः रचनाकार द्वारा अपनाये गए ये तकनीक शिल्प विधान कहलाता है।

अपने अनुभूति तथा भावों को अभिव्यक्त करने का तरीका ही शिल्प विधि कहलाती है। शिल्प का अभिप्राय एक ऐसी अभिव्यंजनात्मक प्रक्रिया से है जो जीवंत और सप्राण, समुच्चयपरक और संश्लेषणात्मक हो। आधुनिक युग की जटिलताओं, यांत्रिकता, वैयक्तिकता तटस्थता और संघर्षमयता ने औपन्यासिक शिल्प को प्रभावित किया है। जब कोई उपन्यास रचना का रूप धारण कर लेता है तो उसके कथ्य और शिल्प को अलग करना मुश्किल होता है। क्योंकि रचना का प्रमुख कार्य कथ्य को संप्रेषित करना है और इस संप्रेषण के लिए रचनकार किसी न किसी नई शिल्प का प्रयोग करता है।

शिल्प के समस्त तत्त्वों में भाषा का विशेष महत्त्व है। उपन्यास के प्रायः सभी तत्त्वों में जिस तत्त्व का महत्त्व सबसे अधिक माना जाता है वह तत्त्व है - भाषा शैली। जीवंत से जीवंत कथानक भाषा और शैली के अभाव में प्रभावशाली नहीं हो सकता। प्रभावशाली भाषा और शैली के अभाव में रचना नीरस और सारहीन हो जाता है। किसी उपन्यास की सफलता बहुत कुछ उसके भाषा शैली पर ही निर्भर करती है, क्योंकि यही वह तत्त्व है जो शुरू से अंत तक पाठक के मन में जिज्ञासा पैदा करता है। यदि उपन्यास की भाषा और शैली में किसी भी प्रकार की कलिष्टता अथवा दुरूह होगा तो पाठक उपन्यास की आत्मीयता स्थापित नहीं कर पाएगा।

साहित्य में शैली अथवा कला पक्ष और भाव पक्ष का समान महत्त्व है। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व प्रायः असंभव है। रूपगत और भावगत एक-दूसरे पर निर्भर हैं। विभिन्न साहित्य को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भाषा की प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है। यह आवश्यक नहीं है कि महाकाव्य,गीत, नाटक, एकांकी, कहानी और उपन्यास की भाषा का स्तर एक समान हो। निश्चित रूप से उसमें विषमताएँ होगी। उसके अनुरूप उसका अपना एक विशिष्ट ढंग बन जाता है। लेखक पर उसके व्यक्तित्व और समकालीन युग

का प्रभाव पड़ता है। तमस उपन्यास में में भी लेखक का व्यक्तित्व और समकालीन युग का प्रभाव उसके शिल्प में झलकता है।

'तमस' उपन्यास को जीवंत बनाने में उसके शिल्प का विशेष महत्त्व है। रचनाकार ने अपने समकालीन सांप्रदायिकता की समस्या को अपनी शिल्प के माध्यम से ही जीवंत और सर्वकालिक प्रासंगिक बनाया है। रचनाकार का किसी भी बात को रखने का अपना एक तरीका होता है। और यही तरीका उसकी एक विशिष्ट विधि बन जाती है। जिसके माध्यम से वह अपनी कृति में आद्यंत विचरण करता है, फिर भी, उसे भाषा शैली के कुछ सामान्य गुणों का निर्वाह करना पड़ता है, जिसके अभाव में उसकी कृति की कलात्मक सौष्ठव को आघात पहुँच सकता है। भीष्म साहनी ने भी तमस में अपनी रचना कौशल से स्वतंत्रता के कुछ समय पूर्व की घटना को समकालीन एवं अनंतकाल तक प्रासंगिक बना दिया है। शिल्प के अंतर्गत भी कई अपेक्षित गुण होते हैं, जो उसके रचनात्मक संगठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 'तमस' में भी इस प्रकार के गुण मौजूद है। इन्हीं गुणों ने तमस को और आधिक लोकप्रिय और जीवंत बनाया है।

शिल्प के अंतर्गत रचनात्मक संगठन के लिए कुछ अपेक्षित गुण होते हैं। जिसके आधार पर तमस का अध्ययन किया जाना आवश्यक है। ये अपेक्षित गुण निम्नलिखित हैं -

1. संवाद और नाटकीयता 2. भाषा और 3. रचनात्मक कौशल

1. संवाद और नाटकीयता

संवाद का जितना महत्त्व नाटकों में है उतना कहानी, उपन्यासों में नहीं। संवाद तत्त्व तो नाटकों का प्राण है, जिसके अभाव में न वह लिखा और न देखा-समझा जा सकता है। संवादों के द्वारा पात्रों के चरित्र व्यक्त करने में बड़ी सहायता मिलती है। संवाद पात्रों को गति देता है। उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का अपना विशेष महत्त्व होता है। उपन्यास को व्यक्तियों के चरित्र का कोष कहा जाता है। अतः उपन्यास लेखन में कृतकार्य होने के लिए संवादों के माध्यम से चरित्र को स्पष्ट करने की कला से उपन्यासकार को पूर्ण रूप से अवगत होना चाहिए।

'तमस' उपन्यास में संवाद चुटीले, सार्थक और पात्रानुकूल है। 'तमस' का कथानक संवाद के माध्यम से आगे बढ़ता है। इसमें संवाद ने चरित्र सृष्टि में काफी योगदान दिया है। संवाद कहीं कहीं बहुत लंबा बन गया है, लेकिन पाठक में बोझिलता को नहीं बढ़ाता है और पूरी तरह पाठक को बाँध देता है। कांग्रेस पार्टी के

कार्यकर्ता और मुस्लिम लीग के सदस्यों के बीच हुई बातचीत में लंबे संवाद और सार्थक बहस का एक उदाहरण हम देख सकते हैं – "कांग्रेस हिंदुओं की जमात है। इसके साथ मुसलमानों का कोई वास्ता नहीं है !...कांग्रेस सब की जमात है हिंदुओं की, सिखों की, मुसलमानों की। आप अच्छी तरह जानते हैं महमूद साहब, आप भी पहले हमारे साथ थे।...रूमी टोपीवाले ने अपने को बाँहों में से अलग करते हुए कहा, "यह सब हिंदुओं की चालाकी है, बख्शीजी, हम सब जानते हैं। आप चाहें जो कहे, कांग्रेस हिंदुओं की जमात है। कांग्रेस हिंदुओं की जमात है और मुस्लिम लीग मुसलमानों की। कांग्रेस मुसलमानों की रहनुमाई नहीं कर सकती।...वयोवृद्ध कांग्रेसी कह रहा था, वह देख लो, सिख भी हैं, हिंदू भी हैं, मुसलमान भी हैं। अजीज सामने खड़ा है, हकीम खड़े हैं।"[51] यहाँ पूरा संवाद लंबे होते हुए भी अपने सार्थकता से नहीं विचलित हुए हैं और सांप्रदायिक स्थिति को व्यक्त करने में सक्षम है।

उपन्यास में संवाद घटनाक्रम को आगे बढ़ाने का प्रमुख साधन है। संवाद में नाटकीयता एक प्रमुख तत्त्व है। जिससे कुतूहल पैदा होता है और पाठक कथानक में बंधा रहता है। उपन्यासों में कथानक को प्रवाह देने के लिए संवादों की सहायता लेने की अनिवार्यता नहीं हैं, यह सत्य है, परंतु कथानक को गतिशील बनाने एवं उसमें जीवंतता लाने का कार्य संवाद अवश्य करती है। संवाद के महत्त्व पर विचार करते हुए डॉ. त्रिभुवन सिंह जी कहते हैं "अभिव्यक्ति के साधनों का उपन्यास में अभाव नहीं है, जबकि नाटक साहित्य में हैं। आरंभिक उपन्यासों और कहानियों की स्थिति आज के उपन्यासों और कहानियों से बिल्कुल भिन्न थी, जिसमें संवाद मात्र सजावट का कार्य करते थे, पर नवीन प्रयोगों ने उपन्यासों को इस बिंदु पर ला दिया है कि वह कथा तत्त्व को नकार देने की स्थिति में आ जा रहा है। ऐसी स्थिति में स्वभावतः संवादतत्त्व की महत्त्व इस साहित्य रूप में भी स्थापित हुए बिना नहीं रहेगी।"[52]

भीष्म साहनी जी संवाद के माध्यम से कौतूहल पैदा करते चलते हैं। एक संवाद डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड और उसकी पत्नी लीजा के बीच का द्रष्टव्य है। जहाँ संवाद अपने चुटीले व्यंग के साथ कौतूहल पैदा करता है। लीजा जब रिचर्ड से कहती है "क्या गड़बड़ होगी ? फिर जंग होगी ?" "नहीं, मगर हिंदुओं और मुसलमानों के बीच तनातनी बढ़ रही हैं, शयाद फसाद होंगे।" "ये लोग आपस में लड़ेंगे ? लंदन में तो तुम कहते थे कि ये लोग तुम्हारे खिलाफ लड़ रहे हैं।" "हमारे खिलाफ भी लड़ रहे हैं और आपस में भी लड़ रहे हैं।" "कैसी बातें कर रहे हो ? क्या तुम मजाक करने लगे ?" "धर्म के नाम पर आपस में लड़ते हैं, देश के नाम पर हमारे साथ लड़ते हैं।" "बहुत चालाक नहीं बनो, रिचर्ड। मैं सब जानती हूँ। देश के नाम पर लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं, और धर्म के

नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो। क्यों, ठीक है ना ?" "हम नहीं लड़ाते, लीजा, ये खुद लड़ते हैं।" "तुम इन्हें रोक भी सकते हो आखिर हैं तो ये एक ही जाति के लोग।" "रिचर्ड को अपनी पत्नी का भोलापन प्यारा लगा। उसने झुककर लीजा को चूम लिया। फिर बोला "डार्लिंग, हुकूमत करनेवाले यह नहीं देखते प्रजा में कौन-सी समानता पाई जाती है, उनकी दिलचस्पी तो यह देखने में होती है कि वे किन-किन बातों में एक-दूसरे से अलग हैं।"[53]

सामान्यतः संवाद उपन्यास का एक ऐसा भाग है, जिससे वह परिपुष्ट होता है, पर संवाद की उपयोगिता उपन्यास में तभी तक है, जब तक कि वह उसकी मुख्य कथा के लिए सहायक सिद्ध होता है। यह अवश्य नहीं है कि संवाद मुख्य कथा तक ही सीमित रहे और इस ओर उसका झुकाव अवश्य होना चाहिए। उपन्यासकार जब कथा में चमात्कार एवं कलात्मक लाना चाहता है तो वह संवाद का सहारा लेता है। नाटकीयता उत्पन्न करने के लिए संवाद ही सर्वाधिक उपयोगी होती है, जिससे अन्य तत्त्व पाठक के लिए अत्यधिक प्रिय होती है। संवाद कथानक को बढ़ाने में मददगार होते हैं। कथानक को मोड़ देने में संवाद का विशेष योगदान रहता है। शहर में दंगा भड़क उठता है। इस दंगे की स्थिति का वर्णन भीष्म साहनी जी नत्थू और उसकी पत्नी के बीच हुए संवाद से करता है- "यह क्या है जी ?" दीवार की ओर देखते हुए पत्नी बोली, "वह देखो तो दीवार पर। यह कैसी रोशनी है ? लगता है जैसे आग की लपट हो। कहीं आग लागी है क्या ? सुनो तो, यह शोर कैसा है ?"[54]

'तमस' में संवाद पात्रानुकूल बन पड़े हैं। हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मावलम्बियों के पात्र अपने-अपने स्तर और तरीकों के संवाद बोलते हैं। प्रशासन वर्ग के संवाद इन दोनों से अलग है। नेताओं के संवाद आम-जतना के संवाद से अलग है। व्यापरी का संवाद भी अलग प्रकार का है। पढ़े-लिखे और अनपढ़ के संवाद में भी भिन्नता दिखाई पड़ती है। जो रचना को और अधिक जीवंत बनाती है। उपन्यासकार ने सांप्रदायिक भाव की अभिव्यक्ति के लिए भी संवाद का सहारा लिया है। हिंदू और मुसलमान के संवाद में भिन्नता है। मगर यह संवाद लोगों के अंदर व्याप्त सांप्रदायिकता के भाव को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। उदाहरण हिंदुओं द्वारा आपस में किया गया संवाद "सुना है एक गया भी काटी गई है। माई सत्तो की धर्मशाला के बाहर उसके अंग फेंके गए हैं। मैं नहीं जानता कहाँ तक यह खबर ठीक है, लेकिन सुनने में जरुर आया है।".....इतने में मंत्रीजी उत्तेजित होकर बोले "गो-वध हुआ तो यहाँ खून की नदियाँ बह जाएँगी।"[55] मुसलमानों में व्याप्त कट्टरता को भीष्म साहनी जी संवाद के माध्यम में दिखाते हैं "मुँह से बोल मादर...! बोल, नहीं तो देख यह पत्थर अभी तेरी

खोपड़ी पर पड़ेगा।" "कलमा पढ़ूँगा।"..तब भी गगन भेदी आवाज उठी "अल्लाह-हो-अकबर !" "नारा-ए-तकबीर ! अल्लाह-हो-अकबर !"[56] यह पूरा संवाद सांप्रदायिक मनोवृत्ति को बया करती है।

संवाद में जितनी सांकेतिकता होती है, उपन्यास में उतनी ही अधिक प्रभावान्वित आती है। इसलिए उपन्यासकार के संवाद सरल सांकेतिक और कौतूहल को जन्म देनेवाले हो। इस तरह संवाद अपने सारे तत्त्वों के साथ 'तमस' उपन्यास में उपस्थित है। उसकी रोचकता बराबर बनी रही है, जो पाठक को कथानक के साथ बाँधने में सफल है।

2. भाषा

भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा लेखक अपने विचारों और भावों को सहृदय तक प्रेषित करने में सफल होता होता है। उपन्यास में ही नहीं किसी भी साहित्यिक कृति की सफलता, उसकी भाषा शैली या रचनात्मक संगठन पर निर्भर करती है। साधारणतः जिन ध्वनि, चिन्हों के द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उनकी समष्टि को 'भाषा' कहते हैं। श्यामसुन्दर दास जी भाषा के संदर्भ में कहा है "भाषा ऐसे सार्थक शब्दों-समूहों का नाम है, जो एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर हमारे मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने और उसके द्वारा उसे प्रभावित करने में सामर्थ होती है। अतएव, भाषा का मूलाधार शब्द है, जिन्होंने उपयुक्त रीति से प्रयुक्त करने में कौशल को ही शैली का मूल तत्त्व समझना चाहिए। अर्थात्, किसी लेखक या कवि की शब्द योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उसके ध्वनि आदि का नाम ही शैली है।"[57] भाषा मनुष्य की मनोभावनाओं का अभिव्यंजन करनेवाले उन साधनों में प्रमुख है, जिनका आधार मानसिक है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास बाह्य की अपेक्षा मानसिक आधारभूमि पर स्थित होती हैं, जबकि यथार्थवादी उपन्यासों की स्थिति इसके ठीक विपरीत होती है।

भीष्म साहनी ने अपने साहित्य में सामान्यतः हिंदी भाषा की खड़ी बोली के प्रचलित रूप को अपनाया है। खड़ी बोली के कलिष्ट साहित्यक रूप की अपेक्षा उन्होंने पंजाबी, अरबी, फारसी, उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों से युक्त बोल-चाल की सरल, सहज भाषा का प्रयोग किया है। भीष्म साहनी का उद्देश्य रोचकता, मनोरंजकता और सरसता के साथ पाठकों के हृदय पर अपने विचारों का मनोवांछित प्रभाव डालना रहा है। भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए यथास्थान भाषा, अलंकृत भी है, सहज भी है, और सरस भी है। कृति की स्वभाविकता की रक्षा हेतु पात्रानुकूल भाषा के विभिन्न रूपों और बोलियों का भी व्यवहार किया गया है।

'तमस' उपन्यास की भाषा का स्वरूप हिंदी, उर्दू, पंजाबी, और अंग्रेजी का मिश्रित परिलक्षित होती है। 'तमस' उपन्यास में भाषा पात्रों के अनुसार प्रयोग में लाई गई है। यद्यपि पंजाब के धरती में हिंदू हो या मुसलमान या सिख हो, तीनों हिंदू, उर्दू और पंजाबी भाषा बोलते हैं, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि पंजाबी, हिन्दू और सिख ही प्रयोग करता है या उर्दू सिर्फ मुसलमान। लेकिन पढ़ा-लिखा व्यक्ति जब बोलता है तो उसकी भाषा उच्च स्तरीय अवश्य होती है, जो आम व्यक्ति से उसे पृथक बनाती है। सबसे पहले हम उपन्यास में शुद्ध और परिमर्जित हिंदी के प्रयोग का उदाहरण देखते हैं- "घृणा और द्वेष इतनी जल्दी प्रेम और सद्भावना में नहीं बदला सकते, वे केवल भौड़े हास्य और व्यंग्य में ही बदल सकते हैं। वे इकबाल सिंह को पीट नहीं सकते थे कम से कम उसे अपने क्रूर व्यंग्य का लक्ष्य तो बना सकते थे।"[58]

किसी भी भाषा को समृद्ध करने में लेखक अन्य भाषाओं के शब्दों को किस प्रकार अपनाया है, और उससे अपनी भाषा की प्रकृति में किस प्रकार सँजोया हैं, इसकी सफलता 'तमस' में देखी जा सकती है। पात्रों की भाषा के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। बहू अकरां और उसकी सास के बीच वर्तालाप का एक दृश्य- "काफराँ की पनाह देने ओ। बहु माड़ा करने ओ। मड़द तुदां पुछसन।"(काफिरों को पनाह दी है, बहुत बुरा किया है। मर्द आकर तुझसे पूछेंगे।)"[59] भाषा में विलक्षणता और विभिन्न गुणों की स्थापना के लिए लेखक ने तत्सम, तद्भव और ग्रामीण शब्दों का भी इस्तेमाल किया है।

'तमस' का परिवेश पंजाब होने के कारण जगह-जगह पंजाबी शब्द का प्रयोग हुआ है। पंजाबी का प्रयोग रचना के परिवेश और वातावरण को जीवंत करता है। आजादी की बात पर एक मजदूर पंजाबी में कहता है "आवे आजादी बाबूजी सानू के, असां हुण की पंड चक्कणी एं, पिच्छोवी पंड चक्कांगे।"[60] सामान्य जन द्वारा वहाँ की क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग रचना को जीवंत बनाता है।

'तमस' उपन्यास में अधिकतर हिंदी मिश्रित उर्दू का प्रयोग किया गया है। हिंदू से लेकर मुस्लिम पात्र मिश्रित हिंदी और मिश्रित उर्दू का प्रयोग करते हैं। हिंदी-उर्दू मिश्रित भाषा का एक उदाहरण – "हमारा अंग्रेजों ने क्या बिगाड़ा है ओए ? हिंदू-मुसलमान की अदावत पुराने जमाने से चली आ रही है। काफिर-काफिर है और जब तक दीन पर ईमान नहीं लाएगा वह दुश्मन है। काफिर को मारना सवाब है।"[61]

अंग्रेजी भाषा के शब्द वस्तुतः उस समय में भी लोगों की जबान में चढ़ने लगे थे, लेकिन तमस में रिचर्ड अंग्रेजी भाषा का प्रयोग कुछ इस प्रकार करता है- "देयर विल बी टाइम फार टी, मिसेज कपूर, बट नॉट नो, थैंक यू।"[62]

'तमस' उपन्यास में उर्दू, पंजाबी, देशज और अंग्रेजी भाषा के जो शब्द प्रयोग में लाए गए हैं, वे निम्नलिखित है –

उर्दू :- हुकम, शरीफ, तकरीर, पनाह, सलामत, मुराद, मुजाहिद, पेशाब, जालिम, रसूल, तबलीग, मुसल्लह, मशवरा, कारिन्दा, काफिर, मजहबी, इंसाफ, तौहीन, तजबीज, मसखरी, कलमा, नापाक, मजलिस, तनख्वाह, शख्सियत, पर्दाफाश, अलामत, रुसवाई और शरीफ आदि।

पंजाबी :- रब्ब, राखां, पंगी, सानु, जाणा, सुण भागे, पासे आग, तुसांडे, कड़ढ़, औखा, नी, किचोहन, भैण, कराड़ा, भरिय और सरबद आदि।

देशज :- दुःख, मसीत, खाट, धोती, सुआमी, भरम, नाहक, धुत्त, ताँगा, छकड़े, चिलम, भाड़, पल्लू, चूल्हा, बुहारने, और उपरि आदि।

अंग्रेजी :- फंड, राइट, लेफ्ट, स्कुटिनी, वालंटियर, ट्रक, हेल्थ, कैम्प, नाइस, ड्रेसिंग, लैम्प, हरीकेन, सेक्रेटरी, रिफ्यूजी, रिलीफ, म्युनिसिपल, थैंक यू, विल और टाइम आदि।

3. रचनात्मक कौशल

रचनात्मक कौशल यानी शैली या कहने का ढंग अंग्रेजी शब्द स्टाइल के रूप में शैली का प्रयोग हिंदी में पाश्चात्य साहित्य से जुड़ा। 'विशिष्ट पद रचना' के लिए प्रयुक्त 'रीति' शब्द शैली के मिलते-जुलते अर्थ के रूप में प्राचीन साहित्य शास्त्र में प्रचलित हुआ। ठीक इसी तरह की बात यूनानी विचारक प्लेटो की व्याख्या में मिलती है। प्लेटो कहते हैं "जब विचार को तात्विक रूपाकार दे दिया जाता है, तो शैली का उदय होता है।"[63] इस धारणा की पुष्टि करते हुए फ्रांसीसी उपन्यासकार स्तांथाल कहते हैं – "शैली का अस्तित्व इसमें निहित है कि दिए हुए विचार के साथ उन सब परिस्थितियों को जोड़ दिया जाय जो कि उस विचार के अभिमत प्रभाव को संपूर्णता में उत्पन्न करनेवाली है।"[64]

शैली के संदर्भ में विद्वानों के अपने-अपने मत है। किसी ने शैली को उचित शब्दों और उचित स्थान पर प्रयोग बताया है, तो किसी ने 'विचारों का सुंदर वेश, या 'विचारों का थामनेवाला चौखटा'। शैली का विशेष

प्रयोग 'तमस' उपन्यास में भी देखने को मिलता है। 'तमस' में अभिव्यक्त रचनात्मक कौशल को निम्नलिखित भागों में देखा जा सकता है :-

क. सरस, काव्यमयी, अलंकृत, मुहावरेदार, उक्ति-वैचित्र्य से युक्त शैली

ख. वर्णात्मक शैली

ग. मनोविश्लेषणात्मक शैली

घ. विश्लेषणात्मक शैली

ङ. चित्रात्मक शैली

क. सरस, काव्यमयी, अलंकृत, मुहावरेदार, उक्ति-वैचित्र्य से युक्त शैली

शैली का प्रयोग लेखक विशेषत: भाषा को सँवारने, सजाने अथवा पाठक को अत्याधिक अभिभूत करने के लिए करता है। वह अपने पात्रों के चरित्र को उभारने के लिए और अपने विचारों को अत्याधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इस प्रकार के शैली का प्रयोग करता है। 'तमस' उपन्यास की भाषा सरस, काव्यमयी, अलंकृत और मुहावरेदार है। इसकी भाषा बहुत सरस और पाठक के मन को प्रभावित करने वाली है। वैसे भी जिस भाषा की संप्रेषणीयता जितनी ज्यादा होती है, वह भाषा उतनी ही अच्छी मानी जाती है। भीष्म साहनी ने 'तमस' में जिस भाषा का प्रयोग किया है उसका गुण सर्वोपरि है। साहनी जी ने एक ओर भाषा को काव्यमयी बनाया है, वहीं उसे अलंकार एवं मुहावरे से भी सजाया है। भाषा के अलंकृत और मुहावरेदार रूप का एक उदाहरण "दिन के उजाले में शहर अधमरा-सा पड़ा था। मानों उसे साँप सूंघ गया हो। मंडी अभी जल रही थी, म्युनिसिपैलिटी के फायर ब्रिगेड ने उसके साथ जूझना कब छोड़ दिया था। उसमें से उठने वाले धुएँ से आसमान में कालिमा पुत रही थी, जबकि रात के वक्त आसमान लाल हो रहा था। सत्रह दूकानें जलकर राख हो चुकी थीं।"[65]

'तमस' में कहीं-कहीं काव्यात्मकता भी दिखाई पड़ती है। भाषा की काव्यात्मकता का एक उदाहरण "टीले के ऊपर पहुँचकर दोनों ने अपने घोड़े रोक लिए। सामने दूर तक चौड़ी घाटी फैली थी जो पहाड़ों के दामन तक चली गई थी। लगता दूर क्षितिज पर सतरंगी धूल उड़ रही है। विशाल मैदान, कहीं-कहीं छोटी-छोटी पहाड़ियाँ और उन पर स्वच्छ नीला आकाश जिसकी पारदर्शी ऊँचाई पश्चिम की ओर ढलते-ढलते इतनी कम

हो गई थी कि मैदान को छने लगी थी। दाई ओर दूरियों के धुंधलके में लाली-मायल की पहाड़ियाँ की धूमिल-सी आकृतियाँ नजर आ रही थीं।"[66]

'तमस' में भीष्म साहनी ने अलंकृत भाषा का भी उपयोग किया है। उदाहरण : "बरामदे के बाहर चिलचिलाती धूप सारे बाग़ को ढकी थी, लगता था जैसे काँच चमक रहा है। लगता, जैसे जमीन में से कोई चीज काँप-काँपकर निकल रही है, हवा में थरथरा रही है।"[67] भाषा की सरसता का एक उदाहरण देखते हैं "उस पहाड़ की तलहटी पर पानी के झरने हैं और घने पेड़ों के झुरमुट हैं। जल के सोते नीचे तक पहुँचकर पहाड़ में से फूटे हैं। बहुत सुंदर जगह है। हिंदुओं ने झरनों के आसपास पत्थर की चुनाई करके वहाँ ताल बना लिए हैं। एक-एक झरने को अलग-अलग नाम दे दिया है। राम और सीता और अपने मायथोलाजी के अन्य नामों पर।"[68]

'तमस' में भीष्म साहनी को मुहावरे के प्रयोग में भी बड़ी सफलता मिली है। जैसे- साँप सूँघना, बालू के ढेर, पैनी आँखें ढेर होना और इज्जत की रोटी आदि। 'तमस' में जगह-जगह गीत शैली का भी प्रयोग किया गया है। कहीं पंजाबी भाषा की पक्तियां तो कहीं उर्दू के शेर और कहीं हिंदी के गीत या भजन की पंक्तियों को व्यंग्य के रूप में प्रयोग किया गया है :-

1. "जरा वी लगन आज़ादी दी

   लग गई जिन्हाँ दे मन दे विच।"[69]

2. "सब पर दया करो भगवान

   सब पर कृपा करो भगवान।"[70]

3. "सर्वे भवंतु सुखिन: सर्वो संतु निरामयः

   सर्वे भद्राणि पश्यंतु या कश्चित् दुःख भाग भवेत।"[71]

4. "फैलाए घोर पाप यहाँ मुस्लिम ने

   नेअमत फलक ने छीन ली, दौलत ने।"[72]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी ने 'तमस' में सरस, काव्यमयी, अलंकृत, मुहावरेदार, गीत और उक्ति वैचित्र्य शैली का प्रयोग किया है, जिससे रचना और अधिक प्रभावशाली और जीवंत हो उठी है।

ख. वर्णनात्मक शैली

वर्णनात्मक शैली द्वारा उपन्यासकार विषय का विस्तार करता है । इसका प्रयोग करने से उसे कलात्मकता का उतना ध्यान नहीं रखना पड़ता है । इस शैली का प्रयोगकर उपन्यासकार इतिहास के भांति उपन्यास के चरित्रों तथा संबंधित घटनाओं का इतिवृत्तात्मक वर्णन अपनी कल्पना अनुभूति एवं जानकारी के आधार पर लिखता है । तमस में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग भी किया गया । तमस में वर्णनात्मक शैली संक्षिप्त और विस्तार दोनों रूप मर दिखाई पड़ता है । इस शैली का संक्षिप्त रूप देखिए "शंकर ने तीर छोड़ दिया । आम तौर पर शंकर इस ढंग से लगाकर बात नहीं करता था । मुँहफट आदमी था, जली-कटी मुँह पर सुनाता था । पर पचास हजार के बीमावाली चोट बहुत बुरी थी । मेहताजी ऐसे सहमे कि एक शब्द मुँह से कहीं कह पाए । मेहताजी छोटी हस्ती नहीं थे । कुल मिलाकर सोलह बरस जेलों में काटकर आए थे और जिला कांग्रेस-कमेटी के प्रधान थे । और सबसे उजली खाड़ी पहनते थे । उन पर आरोप लगाना बड़ी हिमाकत थी, पर अर्से से अफवाह चली आ रही थी कि सेठी ठेकेवाले का पचास हज़ार का बीमा उन्हें मिलनेवाला है, और इसके एवज मेहताजी सेठी को चुनावों में कांग्रेस का टिकट दिलानेवाले हैं ।"[73]

शिल्प की दृष्टि से देखा जाए तो 'वर्णन' कथानक के उन तत्त्वों को हटाता है या जोड़ता है, जिनकी तात्कालिक आवश्यकता समाप्त हो जाती है । कथानक को आराम देने, उसमें वास्तविकता तथा विश्वसनीयता लाने और चित्र-चित्रण के अस्पष्ट पहलुओं को उभारने में 'वर्णन; बड़ा महत्त्वपूर्ण रोल निभाता है । वर्णन सामान्य भी हो सकता है, सांकेतिक भी, विवरणात्मक भी हो सकता और प्रभावात्मक भी । तमस में कई स्थानों पर वर्णनात्मक शैली का विस्तार रूप भी देखने को मिलता है । दंगे के समय सिखों और मुसलमानों द्वारा गुरुद्वारों और मस्जिद में असला इकट्ठा करने का वर्णन वर्णनात्मक शैली का उदाहरण है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भीष्म साहनी जी ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग इस उपन्यास में सफलता पूर्वक किया है ।

ग. मनोविश्लेषणात्मक शैली

इस शैली के द्वारा लेखक दूसरों के मनोजगत् का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिस प्रकार विवरणात्मक शैली बाह्य वस्तुओं का सूक्ष्म चित्रण करके चित्रमयता उपस्थित करती है । उसी प्रकार मनोविश्लेषणात्मक शैली मन के भाव तरंगों, उहापोहों आदि का चित्रण करके मन के परतों को उभारती है । उदाहरण के तौर पर देख सकते हैं जब नत्थू की पत्नी को नत्थू द्वारा सूअर मारने की बात पता चलता है तो

उसकी मानसिक द्वंद का वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया -"नत्थू की पत्नी अनायास ही झाड़ू लेकर कोठरी बुहारने लगी। एक-एक कोना, एक-एक चीज उठाकर नीचे से झाड़ू लगाने लगी। उसे स्वयं मालुम नहीं था कि वह ऐसा क्यों कर रही है। जैसे झाड़ू से वह किसी छाया को कोठरी में से बुहारकर बाहर कर देना चाहती हो। देर तक वह कोठरी को बुहारती रही, फिर उसने कोठरी के फर्श को धोया, खूब पानी डाल-डालकर फर्श धोती रही। पर अंत में जब थककर खाट पर बैठी तो उसे लगा जैसे बंद दरवाजे की दरारों में से बड़ी छाया फिर कोठरी में लौट आई है, कोठरी अँधेरी पद गई, और छाया कोठरी के अंदर चारों ओर मुस्कराने लगी है।"[74] 'तमस' में इस शैली से नत्थू, हरनामसिंह जैसे पात्रों के मन का विश्लेषण किया गया है।

घ. विश्लेषणात्मक शैली

विश्लेषणात्मक शैली में किसी विषय के विभिन्न अवयवों का अलग-अलग तथा उनके पारस्परिक संबंधों का विवेचन करने के साथ विवेचनात्मक और तर्कता को स्पष्ट किया जाता है। 'तमस' में इस शैली के सर्वाधिक दर्शन होते हैं। 'तमस' उपन्यास में कम्युनिष्ट, क्रांतिकारी, कांग्रेस पार्टियों की विचारधारा, मुस्लिम लीग एवं संघ की विचारधारा नीति और कार्य-प्रणाली की व्याख्या और विवेचन किया गया है। राजनैतिक जन-जीवन की गतिविधियों के साथ-साथ समाज के विभिन्न पहलुओं पर भी उपन्यासकार ने विचार विमर्श किया है। इस शैली के अंतर्गत, गंभीर चिंतन, तर्क-वितर्क, व्यंग्यात्मक और आलोचनात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है। 'तमस' में इस शैली का प्रयोग जगह-जगह पर देखने को मिलता है। तर्क-वितर्क शैली का एक उदाहरण रिचर्ड और उसकी पत्नी के बीच का संवाद में देखने को मिलता है - "क्या यह वही जगह है जहाँ औरतें डूब मरी हैं?" "हाँ वही, कुएँ के साथ ही नदी बहती है और नदी के पार फलों का बाग़ है...।"...." तुम कैसे जीव हो रिचर्ड, ऐसे स्थानों पर भी तुम नए-नए पक्षी देख सकते हो, लार्क पक्षी की आवाज सुन सकते हो ?" "इसमें कोई विशेष बात नहीं है, लीजा, सिविल सर्विस हमें तटस्थ बना देती है। हम यदि हर घटना के प्रति भावुक होने लगें तो प्रशासन एक दिन भी नहीं चल पाएगा। "यदि 103 गाँव जल जाएँ तो भी नहीं?" "तो भी नहीं" रिचर्ड ने तनिक रुककर बोला, "यह मेरा देश नहीं है। न ही ये मेरे देश के लोग हैं।"[75] इस प्रकार के तर्क-विर्तक की पद्धति विषय को मजबूत करती है और लेखक ने इसे विश्लेषणात्मक शैली के माध्यम से स्पष्ट किया है।

उपन्यास को सफल बनाने में गंभीर चिंतन की आवश्कता है। गंभीर चिंतन का एक उदाहरण है। जैसे - "साहिबान, यह मौका इन बहसों में पड़ने का नहीं है। बाहर लोग मर रहे हैं, घर जल रहे हैं, सुनते हैं गाँव में भी

आग फैलनेवाली है। हमारा फर्ज है ? मैं गुजारिश करूँगा कि हम वक्त की नजाकत को समझते हुए इस आग को फैलने से रोके।"[76]

व्यंग्य से रचना में प्रभाव उत्पन्न होता है। भीष्म साहनी ने तमस में कई जगह व्यंग्यात्मक भाषा का भी प्रयोग किया है। शंकर मेहता जी के भ्रष्ट चरित्र पर व्यंग्य करता हुआ कहता है "आज आप अपना बैग नहीं लाए" "बैग की प्रभातफेरी में क्या जरूरत है ?" "वाह जी, बैग की सभी जगह जरूरत रह सकती है। बीमा का ग्राहक भी फँस सकता है।"[77] अतः कह सकते हैं कि 'तमस' में विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग बहुत अच्छा जान पड़ता है।

ङ. चित्रात्मक शैली

भीष्म साहनी की चित्रात्मक शैली अत्यंत ही प्रभावपूर्ण, आकर्षक और सामर्थ है। 'तमस' में भी चित्रात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। जो रचना को दृश्यात्मक बनाता है और एक चित्र उभारता है। तत्कालीन मुहल्ले का चित्रण भीष्म साहनी जी ऐसे करते हैं कि एक चित्र उभरकर सामने आता है "गली पार करने पर वह कुछ-कुछ उजाले में आ गया। यहाँ से ताँगा हाँकनेवाले गाड़ीवानों का मुहल्ला शुरू हो चला था। सड़क पर जाने पर भी दृश्य बहुत कुछ बदला नहीं था, केवल यहाँ उजाला हो चला था। सड़क के किनारे दो-तीन तांगें खड़े थे, जिनके बम आसमान की ओर उठे हुए मानो सबके लिए दुआ माँग रहे थे। लंबी दीवार के सामने खड़ा एक गाड़ीवान अपने घोड़े को 'खरहरा' कर रहा था। पास बैठी दो औरतें गोबर थापियाँ बना-बनाकर अभी से मिट्टी की दीवार पर लगा रही थीं। सड़क के बीचोबीच एक घोड़ा अपने-आप, अकेले ही सहज-स्वाभाविक गति से चहलकदमी कर रहा था। प्रातःकाल के शांत सुहावने समय में जगह-जगह हल्की-हल्की जीवन की गति अंगड़ाइयाँ ले रही थी।"[78] अतः ऐसे ही चित्रात्मक शैली का प्रयोग 'तमस' उपन्यास में कई स्थानों में देखने को मिलता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'तमस' का शिल्प विधान उत्कृष्ट है। भीष्म साहनी ने शिल्प के माध्यम से 'तमस' को और अधिक प्रभावशाली बनाया है। संवादों में नाटकीयता भी आकर्षक है। संवाद उत्कृष्ट होने के कारण ही इस पर फ़िल्म बन सकी है। भाषा में हिंदी के साथ उर्दू, पंजाबी, अंग्रेजी और ग्रामीण बोली का प्रयोग उपन्यास को और अधिक जीवंत बनाती है। रचना कौशल में सरसता, कव्यामयिता, अलंकार, मुहावरे उक्ति वैचित्र्य का प्रयोग साथ ही वर्णनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, विश्लेषणात्मक, और चित्रात्मक शैली

ने उपन्यास को जीवंत लोकप्रिय और सर्वकालिक प्रासंगिक बना दिया है। अतः 'तमस' उपन्यास में किया गया शिल्प का प्रयोग सांप्रदायिकता की समस्या को अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

संदर्भ :

1. मेरे साक्षात्कार, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 147
2. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 14
3. वही, पृ. सं.- 36
4. वही, पृ. सं.- 49
5. वही, पृ. सं.- 49
6. वही, पृ. सं.- 33
7. वही, पृ. सं.- 129
8. वही, पृ. सं.- 84
9. वही, पृ. सं.- 35
10. वही, पृ. सं.- 13-14
11. वही, पृ. सं.- 17
12. वही, पृ. सं.- 136
13. वही, पृ. सं.- 140
14. आजदी के 50 वर्ष : क्या खोया क्या पाया (भाग – 1), देवेंद्र उपाध्याय – पृ. सं.- 150
15. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 15
16. वही, पृ. सं.- 139
17. वही, पृ. सं.- 139
18. वही, पृ. सं.- 139
19. आजदी के 50 वर्ष : क्या खोया क्या पाया (भाग – 1), देवेंद्र उपाध्याय, पृ. सं.- 194-195
20. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 131

21. वही, पृ. सं.- 123

22. वही, पृ. सं.- 137

23. वही, पृ. सं.- 136

24. वही, पृ. सं.- 136

25. वही, पृ. सं.- 137

26. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृ. सं.- 9

27. सांप्रदायिकता : इतिहास और अनुभव, असगर अली इंजिनियर, पृ. सं.- 61

28. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 8

29. भारत में सांप्रदायिकता-इतिहास एवं अनुभव, असगर अली इंजिनियर, पृ. सं.- 12

30. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 134

31. वही, पृ. सं.- 80

32. आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, बिपिन चंद्र, पृ. सं.- 102-03

33. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 99

34. वही, पृ. सं.- 39

35. आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, बिपिन चंद्र, पृ. सं.- 128

36. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 121

37. वही, पृ. सं.- 50

38. वही, पृ. सं.- 39

39. वही, पृ. सं.- 43

40. वही, पृ. सं.- 87

41. भारतीय नारी : संघर्ष और मुक्ति, वृंदा कारात, पृ. सं.- 17-18

42. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 126

43. झूठा-सच, यशपाल, पृ. सं.- 120

44. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 135-36

45. ऑक्सफ़ोर्ड डिक्सनरी ऑफ़ करंट एंग्लिश, पृ. सं.- 1258

46. शैली विज्ञान, डॉ नगेंद्र, पृ. सं.- 15

47. वृहत हिंदी शब्द कोश, पृ. सं.- 1239

48. हिंदी कहानियों के शिल्पविधि का विकास, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, भूमिका

49. हिंदी उपन्यास : शिल्प एवं प्रयोग, डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृ. सं.- 241

50. उपन्यास :तत्व एवं रूप विधान, श्री नारायण अग्निहोत्री, पृ. सं.- 234

51. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.-20

52. हिंदी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग, डॉ.त्रिभुवन सिंह, पृ. सं.- 403

53. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 27-28

54. वही, पृ. सं.- 65

55. वही, पृ. सं.- 40

56. वही, पृ. सं.- 120

57. साहित्य लोचन, डॉ. श्यामसुंदर दास, पृ. सं.- 250

58. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 121

59. वही, पृ. सं.- 112

60. वही, पृ. सं.- 58

61. वही, पृ. सं.- 104

62. वही, पृ. सं.- 130

63. हिंदी साहित्य कोश पहला भाग, पृ. सं.-773

64. वही, पृ. सं.- 773

65. तमस, भीष्म साहनी, पृ. सं.- 73

66. वही, पृ. सं.- 21-22

67. वही, पृ. सं.- 51

68. वही, पृ. सं.- 24

69. वही, पृ. सं.- 18

70. वही, पृ. सं.- 37

71. वही, पृ. सं.- 37

72. वही, पृ. सं.- 38

73. वही, पृ. सं.- 13-14

74. वही, पृ. सं.- 94

75. वही, पृ. सं.- 131

76. वही, पृ. सं.- 84

77. वही, पृ. सं.- 13

78. वही, पृ. सं.- 19

उपसंहार

सांप्रदायिकता एक ऐसा विध्वंसात्मक रूप है, जो मनुष्य को उसकी मनुष्यता से काटकर उसके अंदर घृणा पैदा कर देती है। धर्म और संस्कृति का निर्माण मनुष्य ने अच्छे से जीने और एकजुट होकर, मिल बैठकर जीने के लिए किया था, वही आज दामन पकड़कर मनुष्य को मनुष्य के खून का प्यासा बना रही है। आज सांप्रदायिकता विघटन और विभाजन की ताकत बन चुकी है। संगठित धर्म और कर्मकांड इसकी सबसे बड़ी बैसाखी है। भारतीय समाज की बनावट ही ऐसी है, जिसमें इन्हें फलने-फूलने के सारे सरोकार प्राप्त हो जाते हैं। यद्यपि सांप्रदायिकता का धर्म से, धार्मिक शिक्षाओं से, दार्शनिक पहलुओं से कोई लेना-देना नहीं है बल्कि इन सांप्रदायिक शक्तियों का उद्देश्य धार्मिक आस्थाओं का दोहन करना रहता है। धर्म का सहारा इसलिए लिया जाता है कि धर्म के नाम पर लोगों को एकत्रित किया जा सके। धर्म, मनुष्य को आध्यात्मिक अनुशासन प्रदान करता है, जबकि सांप्रदायिकता का आधार केवल भौतिक जगत के स्वार्थ से है।

सांप्रदायिकता की समस्या विभिन्न कालखण्डों में अलग-अलग रूप धारण करती आई है। सांप्रदायिकता आज हमारे समाज की सबसे बड़ी समस्या है, जिसने संपूर्ण राष्ट्र की अस्मिता को छिन्न-भिन्न कर दिया है। भारत ऐसा देश है जहाँ विभिन्न संस्कृतियों को मानने वाले लोग एक साथ मिलकर रहते हैं, पर उसी भूमि को इस भावना ने रोगग्रस्त कर दिया है। इस समस्या से मुक्ति पाने के लिए विभिन्न स्तरों पर प्रयास किए गए, किंतु वे सभी प्रयास कारगर साबित नहीं हुए। साहित्य में इसके सामाजिक आधार, आर्थिक आधार, वैचारिक उत्स और राजनीतिक चरित्र के बीच गतिशील अंतःसंबंधों को पुनर्जीवित किया गया है और सौहार्द स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

वर्तमान समय में देश में व्याप्त सांप्रदायिकता पर विचार करे, तो हमें ऐसे बहुत सारे उदाहरण मिल जाएंगे जो सांप्रदायिक विचार को महत्त्व दे रहे हैं। कई राजनेता, धर्मगुरु या मौलवी यह कहता है कि हम 'जय हिंद', 'भारत माता की जय' नहीं बोलेगें। ऐसा कहने से सांप्रदायिकता का बोध होता है। वहीं कई लोग राष्ट्रवाद का नाम लेकर सांप्रदायिकता को बढ़ावा दे रहे हैं। 21वीं सदी में जब विज्ञान, तकनीकी एवं शिक्षा अपने चरम स्तर पर है और ऐसे समय में हम धर्म एवं संप्रदाय के बयान बाजी में फसें हैं। सत्ता एवं विपक्षी पार्टियाँ अपने स्वार्थ के लिए सांप्रदायिक मामले को भड़का रही हैं। लोगों को धर्म-संप्रदाय के नाम पर गुमराह किया जा रहा है। हमें यह समझने की आवश्यकता है कि हम सभी मनुष्य बराबर है। किसी हिंदू के 'अल्लाह् हो अकबर' या 'अली' कह देने से और किसी मुस्लिम के 'जय श्रीराम' या 'जय बंजरंग बली' कह देने से उसका धर्म परिवर्तन

नहीं हो जाता। भारत की संस्कृति समन्वयवादी रही है। सभी धर्म और संस्कृति को अपने में समाहित करने की क्षमता एक मात्र भारत की संस्कृति में है। अगर हम सांप्रदायिकता के इस गंभीर समस्या का जल्द से जल्द समाधान ढूंढेगे तो हमें भी पश्चिमी एशिया देशों की तरह आतंकवाद का रूप देखने को मिलगा। जब धर्म अपना कट्टर रूप धारण कर लेता है तो उसका परिणाम क्या होता है ? ISIS आतंकी संगठन इसका उदाहरण है। सांप्रदायिकता आज के समय में एक ऐसी समस्या बन चुकी है जिसका निदान जल्द से जल्द खोजना होगा वरना भारत का लोकतांत्रिक ढाँचा ढहने में ज्यादा देर नहीं लगेगी। यदि लोकतांत्रिक मूल्यों को बचाना है तो धर्मनिरपेक्ष छवि बचानी होगी। आपसी सद्भाव को बढ़ावा देना होगा, किसी प्रकार के दुष्प्रचार को नकारना होगा और उन तथ्यों की शिनाख्त करनी होगी, जो समाज में सांप्रदायिक विचारधारा का प्रचार-प्रसार कर विभाजन के बीज बो रहे हैं। मिथ्य तथ्यों को नकारना होगा तभी एक स्वस्थ समाज का स्वप्न पूरा हो सकेगा। "तमस' उपन्यास में साम्प्रदायिकता का अनुशीलन" विषय के अंतर्गत चारों अध्यायों का अध्ययन करने के पश्चात् अनेक तथ्य सामने आये हैं जिसका सार निम्नलिखित है -

प्रथम अध्याय : 'भीष्म साहनी : जीवन और रचना संसार' पर अध्ययन करने पर मिला कि भीष्म साहनी के जीवन का प्रभाव उनके साहित्य में पड़ा। उनके साहित्य को समझने के लिए उनके वास्तविक जीवन को समझना आवश्यक है। भीष्म साहनी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर देशकाल और वातावरण का असर देखने को मिलता है। भीष्म साहनी के जन्म के समय प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका चारों ओर व्याप्त थी। उसी समय वैश्विक परिदृश्य में पूँजीवाद और सामंतवाद के विरुद्ध सोवियत साम्यवाद का उत्थान होता है। उस वक्त महात्मा गांधी का प्रभाव सारे हिन्दुस्तान में व्याप्त था। इन्हीं घटनाओं से भीष्म साहनी विचलित, प्रभावित और प्रोत्साहित हुए। भीष्म साहनी अपने आस-पड़ोस के अलगाव से दूर रहकर समाज के यथार्थ से हमेशा एक कोण बनाए रखने में सफल रहे हैं। उनका व्यक्तित्व सशक्त, निर्भीक और साहसी है। उनका स्वभाव गंभीर एवं मृदु है और उनकी सोच अत्याधिक व्यापक है। भीष्म साहनी को भी अपने जीवनगत अनुभवों तथा परिस्थितियों से पूर्णरूपेण प्रेरणा प्राप्त हुई है।

भीष्म साहनी का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही एक दूसरे से मिला हुआ है। उनके व्यक्तित्व का प्रतिबिंब ही उनके रचनाधर्मिता में दिखाई पड़ता है। उनके साहित्य में आज के समाज का यथार्थ वर्णन है। भीष्म साहनी ने कथा साहित्य के लगभग सभी विधाओं में अपनी कलम चलाई है। कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध और आत्मकथा इनमें प्रमुख है। इनके कथा के केंद्र में भारत के नगरों और महानगरों में रहने वाले मध्य

वर्ग हैं। इस समाज में वर्णभेद, जातीय भेदभाव और साम्प्रदायिकता का मूल कारण क्या है ? धर्म के नाम पर कौन फायदा उठा रहा है ? संप्रदाय के नाम पर सामुदायिक कत्ल के कारण क्या है ? सभी धर्म भाई-भाई क्यों नहीं रह पाते हैं ? आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर चिंता भीष्म साहनी के कृतित्व में झलकती है। भीष्म साहनी सामाजिक जीवन यथार्थ को महत्त्वपूर्ण ढंग से उद्घाटित करते हैं। उनके साहित्य में सहानुभूति और वास्तविकता की झलक मिलती है। उनकी रचनाएँ भी उन्हीं की तरह शांत और शालीन व्यक्तित्व के समान है।

द्वितीय अध्याय : 'भारतीय समाज और हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिकता' का अध्ययन करने पर मिला कि संप्रदाय का प्रचलन प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में हो रहा है। धर्म, संप्रदाय और सांप्रदायिकता शब्द एक दूसरे से भिन्न है। धर्म को हमेशा सांप्रदायिकता से जोड़कर देखा जाता है। लेकिन धर्म एक ओर चिंतन प्रधान है तो दूसरी ओर कर्म प्रधान है। जहाँ यह एक ओर लौकिक जगत से संबंधित है, वहीं दूसरी ओर यह पारलौकिक या आध्यात्मिक जगत से भी उतना ही जुड़ा हुआ है। धर्म जहाँ प्रकृत स्वभाव है, वहीं वह अर्जित गुण भी है। परंतु धर्म मुख्य रूप से वैयक्तिक ही होना चाहिए। जहाँ विवेक की स्वतंत्रता बाधित होती है, वहाँ कट्टरता धीरे-धीरे पैर पसारने लगती है और धर्म में विकृति लाती है। धर्म का एक अंग संप्रदाय है। संप्रदाय से जुड़ा शब्द सांप्रदायिकता है। परंतु सांप्रदायिकता से संप्रदाय का सीधा संबंध नहीं है। जब एक व्यक्ति केवल अपने संप्रदाय अथवा समुदाय के हित-अहित के संबंध में सोचता है एवं अपने संप्रदाय या समुदाय को श्रेष्ठ समझता है और दूसरे समुदाय से द्वेष रखता है तो इस स्थिति को सांप्रदायिकता के दायरे में रखा जाता है। जब धर्म के अनुयायियों में श्रेष्ठता-बोध का भाव आ जाता है एवं जब वे दुराग्रही बन जाते हैं तब सांप्रदायिकता जन्म लेती है क्योंकि वहाँ किसी बहस या नये विचारों का कोई स्थान नहीं रहता वहाँ हठवादिता एवं अंधविश्वास अपनी जगह बना लेते है।

'भारतीय सांप्रदायिकता के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य' उपशीर्षक में मिला कि भारतीय समाज में संप्रदाय का प्रचलन वैदिक काल से ही चलता आ रहा है। सांप्रदायिकता का आरंभ मुख्य रूप से मुग़ल काल से माना जाता है लेकिन इसकी पृष्ठभूमि वैदिक युग से ही जान पड़ती है। वैदिक काल में कर्मकांड के विरोध में अनेक धर्मों का उदय हुआ, जिसके बाद अनेक संप्रदायों का विकास हुआ। बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव, शाक्त आदि संप्रदाय इसी की परिणति है। आगे चलकर वैष्णव संप्रदाय की भी अनेक शाखाएँ निकली जिनमें श्री संप्रदाय, ब्रह्म संप्रदाय, निम्बार्क संप्रदाय और रुद्र संप्रदाय प्रमुख है। भारत में सांप्रदायिक विचारधारा का प्रादुर्भाव प्रमुख रूप से मध्यकाल से माना जाता रहा है। भारत में इतिहास लेखन का कार्य पाश्चात्य विद्वानों ने शुरु किया,

उन्होंने भारत के इतिहास को न केवल काफी तोड़-मरोड़ कर लिखा, बल्कि सर्वप्रथम सांप्रदायिक आधार पर भारत के इतिहास का काल-विभाजन भी किया। इस तरह इतिहास की सांप्रदायिक व्याख्या को बल मिला, जिसके पीछे अंग्रेजों की साम्राज्यवादी और संप्रदायवादी दृष्टि काम कर रही थी। वर्तमान सांप्रदायिक शक्तियाँ अपने मध्यकाल का हवाला देती है और अपनी जड़े मध्यकाल में तलाशती है। जैसे- बाबरी मस्जिद पर इस आधार पर दावा किया गया कि विदेशी आक्रान्ता बाबर ने उस स्थान पर स्थित रामजन्मभूमि मंदिर को गिराकर उक्त मस्जिद का निर्माण करवाया। सांप्रदायिक शक्तियाँ यह मानती है कि मुस्लिम शासन का युग हिन्दुओं पर अत्याचार और अपमान का युग था। अतः आज जब हिन्दुओं के पास राजनीतिक अधिकार है तो उसे बदला लेना चाहिए। जबकि वास्तविकता यह है कि लगभग सभी शासक चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, अपने राजनैतिक हितों से प्रेरित होते हैं, उनके धार्मिक विश्वास या तो कोई महत्त्व नहीं रखती या फिर गौण होते हैं। मध्यकाल में किया गया संघर्ष केन्द्रीय सत्ता के लिए किया गया संघर्ष था। सांप्रदायिकता के जन्म के लिए मध्यकाल को जिम्मेदार मानना गलत होगा। मध्यकाल के लोग सांप्रदायिक की अपेक्षा धार्मिक अधिक थे। एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति सांप्रदायिक नहीं हो सकता और एक सांप्रदायिक व्यक्ति धार्मिक नहीं हो सकता। सांप्रदायिकता की उत्पत्ति के लिए केवल मध्यकाल को जिम्मेदार मानना एकपक्षीय दृष्टि होगी। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सांप्रदायिकता मध्यकाल से अपना खुराक अवश्य लेती रही, लेकिन इसे मध्यकाल की परिघटना नहीं कहा जा सकता।

मध्यकालीन पवित्र गंगा-यमुना हिंदू-मुस्लिम संस्कृति अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् विखंडित होने लगी। 19वीं शताब्दी में सांप्रदायिक संघर्षों का जो रूप प्रकट हुआ मूलतः वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद की देन है। 1857 ई. की क्रांति में हिंदू-मुस्लिम एकता देख अंग्रेज विचलित हो गए और उन्होंने इस एकता को तोड़ने के लिए बहुत से हथकंडे अपनाने लगे। ब्रिटिश सरकार ने भारत में सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने हेतु कई तरीके अपनाये जैसे हिंदुओं, मुसलमानों और सिखों को लगातार ऐसे अलग-अलग समुदायों का दर्जा दिया, जिनकी सामाजिक, राजनीतिक पहचान में कुछ भी साझा नहीं किया। बताया गया कि भारत न तो एक राष्ट्र है न राष्ट्र के रूप में उसका विकास हो रहा है और न वह विभिन्न जातियों का समुच्चय है। उसका गठन तो धर्म पर आधारित ऐसे समुदायों से हुआ है, जिनके हित आपस में टकराते हैं। सांप्रदायिकतावादियों को सरकारी संरक्षण और रियायतें दी गई। सांप्रदायिक पत्रों, व्यक्तिओं और आंदोलनों के प्रति असाधारण सहिष्णुता दिखलाई। सांप्रदायिक मांगों को तुरंत स्वीकार कर लिया जाता था और इस तरह सांप्रदायिक संगठनों को राजनीतिक मजबूती दी जाती थी

तथा लोगों पर उनकी पकड़ बनी रहती थी। आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता की वृद्धि के लिए ब्रिटिश शासन और ब्रिटिश नीति विशेष रूप से उत्तरदायी रही है। अंग्रजों ने सांप्रदायिकता से फायदा उठाया और भारत में अपना राज कायम रखने के लिए जनता में फूट डालकर सांप्रदायिकता को हमेशा बढ़ावा देकर अपनी विभाजन-नीति को साकार रूप दिया।

स्वतंत्रता के बाद सांप्रदायिकता सुधरने के जगह और बिगड़ती गई। हिंदू मुस्लिम की तर्ज पर भारत का विभाजन हुआ। विभाजन के बाद भी विभिन्न राजनैतिक कारणों से सांप्रदायिकता रूपी वृक्ष और फैलता गया। अंततः कहा जा सकता है कि सांप्रदायिकता आधुनिक विचारधारा है, जो अपने अतीत के विचारों, संस्थाओं और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर कुछ पहलुओं और तत्वों का इस्तेमाल अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए करती है। 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को अपनाते हुए इसका 'बीज' अंग्रेजों ने हमारे अंदर बोया। जो धीरे-धीरे हमारे ह्रदय में विशाल वृक्ष बनता गया। वर्तमान में सांप्रदायिकता इतना विकराल रूप धारण कर चुकी है कि इसके सामने इसकी विरोधी शक्तियाँ बौनी नजर आती है। सांप्रदायिकता रूपी कीड़ा राष्ट्रीयता की जड़ों में घुन की तरह लग गया है और दिन-प्रतिदिन उसे खोखला करती जा रही है। स्वतंत्रता के उपरांत दंगों की प्रकृति में बदलाव आया और सांप्रदायिक दंगे केवल हिंदू-मुस्लिम तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि वह हिंदू-सिख, हिंदू-इसाई, सवर्ण-हरिजन, शिया-सुन्नी और एक समुदाय से दूसरे समुदाय तक फैल गई है। अब ऐसा शायद कोई दिन जाता हो जब देश के किसी कोने में छोटे या बड़े पैमाने पर ऐसे सांप्रदायिक दंगे न होते हो। कहीं-कहीं तो स्थिति यहाँ तक हो गई है कि किसी अन्य समुदाय का व्यक्ति बहुताय समुदाय में रहता है तो वह अपने आपको असुरक्षित महसूस करता है। लोगों के अंदर यह असुरक्षा का भाव जल्द से जल्द दूर करने की आवश्यकता है।

तृतीय अध्याय : 'तमस में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता' पर अध्ययन करके मिला कि सांप्रदायिक विचारधारा की पृष्ठभूमि पर 'तमस' अत्यंत ही सफल उपन्यास है। देश-विभाजन के कुछ समय पहले की मानवीयता के विघटन की गाथा का चित्रण 'तमस' में किया गया है। यह उपन्यास देश-विभाजन और आजादी के लगभग तीन दशक के बाद लिखा गया है। देश आजादी के बाद भी अँधेरे में जी रहा है। इस देश में आज भी सांप्रदायिकता रूपी अंधकार नहीं हटा है। सांप्रदायिकता का जीता-जागता उदाहरण हमें आए दिन देखने को मिल जाते हैं। उपन्यासकार ने घटना-काल भले ही आजादी के कुछ समय पहले का लिया है, लेकिन उसका उद्देश्य वर्तमान में फैल रही सांप्रदायिकता की भावना को उजागर करना ही रहा है। इसकी पृष्ठभूमि को तैयार

करने में आजादी से कुछ समय पूर्व का वह माहौल सही है। समय विस्तार की दृष्टि से यह उपन्यास स्वतंत्रता से पूर्व मात्र पाँच दिनों की कहानी कहता है। परंतु कथा में जो प्रसंग, संदर्भ और निष्कर्ष उभरते हैं, वह केवल पाँच दिन की कथा न रहकर बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के हिंदुस्तान की अब तक की कथा है। उपन्यास में जाति-प्रेम, धर्म, संस्कृति, परंपरा, इतिहास और राजनीति जैसे सभी संकल्पनाओं की आड़ में अपना उल्लू सीधा करने वाली प्रतिगामी शक्तियों को खुले तौर में प्रस्तुत किया गया है।

'तमस में सांप्रदायिकता के विभिन्न रूप' उपशीर्षक में तमस में वर्णित सांप्रदायिकता को तीन रूपों में देखा गया है। हिन्दुत्ववादी, मुस्लिम और सिख सांप्रदायिकता। 'तमस' उपन्यास में हिन्दुत्ववादी सांप्रदायिकता की कट्टर मानसिकता का चेहरा सबके सामने दिखता है। ऐसी मानसिकता को बनाने में अंग्रेजों की कूटनीति का बहुत बड़ा हाथ है। लेकिन हिन्दुत्ववादी का यह सांप्रदायिक भाव मानव जाति के लिए घातक है। उपन्यासकार ने हिन्दुत्ववादी सांप्रदायिकता में प्रमुख स्थान युवकों का इसकी ओर झुकाव की समस्या को दिखाया है। ये सांप्रदायिक ताकतें युवकों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती है। जिससे इसके जड़ों को विस्तार मिलता है। वर्तमान में भी युवकों में फैल रही सांप्रदायिकता का भाव और सांप्रदायिक विचारों पर उनका झुकाव देखने को मिलता है। जिसका कारण हिन्दुत्ववादी लीडरों द्वारा फैलाये गए सांप्रदायिक विचार हैं। इसे जल्द से जल्द समझने और खत्म करने की आवश्यकता है। तमस उपन्यास में भीष्म साहनी ने मुस्लिम सांप्रदायिकता की कट्टरता को अभिव्यक्त किया है । सबसे पहले मुस्लिम लीग और अंग्रेजों के नीतियों द्वारा फैल रहे सांप्रदायिकता को स्पष्ट किया है तत्पश्चात् मुस्लिम समाज में विराजमान सांप्रदायिकता के भाव के स्वरूप को दर्शाया है। 'तमस' में सिख-मुस्लिम सांप्रदायिकता को दिखाया गया है। उसके जड़ को मध्यकाल में ढूढने का प्रयास लेखक करता है। सिखों में मुसलमानों के प्रति जो घृणा का भाव है, वही दंगे को तीव्रता देने का कार्य करता है। सिखों का मुसलमानों के प्रति अविश्वास का भाव स्थिति को बद से बदतर बना देता है। जिसमें सैकड़ों निर्दोषों की जानें जाती है। सिखों में सांप्रदायिक भाव इस प्रकार हावी होता है कि सोहनसिंह की आपसी बातचीत से समस्या का हल निकालने वाली बात कोई नहीं सुनता और परिणामतः सभी दंगे में झुलस जाते हैं।

चतुर्थ अध्याय : 'तमस में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता और वर्तमान राजनीति' विषय में तमस में अभिव्यक्त सांप्रदायिक राजनीति को वर्तमान समय में रखकर पड़ताल की गई है। 'तमस' वर्तमान राजनीतिक समस्याओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। उसमें वर्णित तत्कालीन राजनैतिक समस्या आज भी समाज में

मौजूद है । स्वतंत्र भारत भी अस्वतंत्र भारत के समान समस्याओं से ग्रस्त है । ये समस्याएँ राजनीतिक वातावरण से उत्पन्न हुई है। भारत-विभाजन से लेकर आज इक्कीसवीं सदी तक भी भारत उन समस्याओं से मुक्ति नहीं पा सका है। इसका कारण राजनीति का भ्रष्ट होना और राजनीतिक मूल्यच्युति का होना है। देश की शासन व्यवस्था भी व्यवस्था रहित है। इन समस्याओं से उद्भुत निराशा की छाया सामाजिक प्रगति को रोकती है । राजनीति में गिरते मूल्यच्युति, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, चुनाव और कानूनी समस्या आदि के कारण वर्तमान राजनीति से मोहभंग हो गया है। भीष्म साहनी ने इन राजनीतिक समस्याओं का वर्णन 'तमस' उपन्यास में किया है । ऐसे भी सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ता ही है । वातावरण का प्रभाव एक साहित्यकार की रचनाओं को कालजयी बनाता है । भीष्म साहनी जी का जीवन घटनाबहुल भारत में व्यतीत हुआ था। इसलिए 'तमस' में इन समस्याओं की पूर्ति हुई हैं। 'तमस' उपन्यास में धर्म, भाषा जाति के नाम पर बँट रहे भारतीय जनमानस का वर्णन है। घटना भले ही स्वतंत्रता से पूर्व की हो, लेकिन उसमें वर्णित समस्या वर्तमान की सांप्रदायिक समस्या को व्यक्त करती है । वर्तमान में मौजूद सांप्रदायिकता को फैलाने वाले कारकों के परिप्रेक्ष्य में 'तमस' उपन्यास को देखा जा सकता है । 'तमस' का आकलन वर्तमान परिप्रेक्ष्य पर करने से यह साफ हो जाता है कि यह उपन्यास आज भी उतना प्रासंगिक है जितना कल था।

'तमस' का शिल्प विधान उत्कृष्ट है । भीष्म साहनी ने शिल्प के माध्यम से इस उपन्यास को और अधिक प्रभावशाली बनाया है। संवाद और नाटकीयता भी आकर्षक है। संवाद उत्कृष्ट होने के कारण ही इस पर फ़िल्म बन सकी है। भाषा में हिंदी के साथ उर्दू, पंजाबी, अंग्रेजी और ग्रामीण बोली का प्रयोग उपन्यास को और अधिक जीवंत बनाती है । रचना-कौशल में सरसता, काव्यमयिता, अलंकार, मुहावरे उक्ति वैचित्र्य का प्रयोग साथ ही वर्णनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, विश्लेषणात्मक और चित्रात्मक शैली ने उपन्यास को लोकप्रिय और सर्वकालिक प्रासंगिक बना दिया है । अतः 'तमस' में किया गया शिल्प का प्रयोग सांप्रदायिकता की समस्या को अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

अंततः कहा जा सकता है कि 'तमस' के माध्यम से भीष्म साहनी ने भारतीय समाज के मनोजगत में व्याप्त धार्मिक रूढ़ता और उसकी जड़ता को बड़े ही तटस्थता और धैर्य के साथ प्रस्तुत किया है। 'तमस' में सांप्रदायिकता की समस्या के सूक्ष्म कारणों को परत दर परत खोला गया है। जो हमारे सामने सांप्रदायिक की विभीषिका को दिखाते हुए उसके प्रति हमें सचेत करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रंथ :-

1. साहनी, भीष्म, वर्ष – 2015, तमस, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन

सहायक ग्रंथ

1. अजिता, डॉ. के, वर्ष- 2004, नाटककार भीष्मसाहनी, मथुरा, जवाहर पुस्तकालय, हिन्दू पुस्तक प्रकाश एवं वितरक
2. अर्चना, जैन, वर्ष- 2004, भीष्मसाहनी की कहानी कला, अहमदाबाद, पार्श्व पब्लिकेशन
3. अब्दुलजलील, डॉ. वी. के, वर्ष- 2006, समकालीन हिंदी उपन्यास समय एवं संवेदना, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
4. आड़े, डॉ रमेश उमाजी, वर्ष- 2007, भीष्म साहनी के हिंदी उपन्यासों का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, दिल्ली, अतुल प्रकाशन
5. इंजीनिर, असगर अली, वर्ष-2005, भारत में सांप्रदायिकता – इतिहास बोध, इलाहाबाद, इतिहास बोध प्रकाशन
6. कुचेकर, डॉ. भारत, वर्ष- 2004, भीष्म साहनी व्यक्तित्व एवं कृतित्व, कानपुर, विनय प्रकाशन
7. कुमार, मनोज, वर्ष-2004, सांप्रदायिकता और हिंदी कथा साहित्य, नई दिल्ली, हिंदी बुक सेंटर
8. कमलेश्वर, वर्ष-2004, हिंदुत्व बनाम हिंदुत्व, नई दिल्ली, प्रकाशन कल्याणी शिक्षा परिषद दरियागंज
9. गुप्त, बालकृष्ण , वर्ष-1973, हिंदी उपन्यास सामजिक संदर्भ, कानपुर, युगवाणी प्रकाशन
10. गुप्ता, रमणिका, वर्ष-2004, सांप्रदायिकता के बदलते चेहरे, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
11. चंद्र, विपिन, वर्ष-1996, आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, दिल्ली, हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय
12. चंद्र, विपिन, वर्ष-2008, सांप्रदायिकता : एक प्रवेशिका, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
13. ठाकुर, राजेश्वर सक्सेना प्रताप, वर्ष-2005, भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
14. दिनकर, रामधारी सिंह, वर्ष-2003, संस्कृति के चार अध्याय, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन
15. दुबे, अभय कुमात, वर्ष- 2005, बीच बहस में सेकुलरवाद, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन

16. दुबे, अभय कुमार, वर्ष-2006, सांप्रदायिकता के स्रोत, दिल्ली, विनय प्रकाशन
17. दिवाकर, अनुवाद, वर्ष-1993, सांप्रदायिक समस्या, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट,इंडिया
18. द्विवेदी, विवेक, वर्ष-2009, भीष्म साहनी : उपन्यास साहित्य, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
19. देशवाल, डॉ. अंजू देशवाल, वर्ष- 2008, भारत विभाजन और हिंदी उपन्यास, दिल्ली, संजय प्रकाशन
20. दीक्षित, प्रभा, वर्ष-1980, साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ, नई दिल्ली, द मैकमिलन कंपनी ऑफ़ इंडिया लिमिटेड
21. पटेल, डॉ. कृष्ण, वर्ष- 2001, कथाकार भीष्म साहनी, कानपुर, चिंतन प्रकाशन
22. पुनियानी, राम, वर्ष- 2006, सांप्रदायिक राजनीति तथ्य एवं मिथक, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
23. प्रियंवद, वर्ष- 2009, भारत विभाजन की अंतः कथा, कानपुर, भारतीय ज्ञानपीठ
24. प्रसाद, कलिका, वर्ष- 1997, वृहत हिंदी कोश, वारणसी, ज्ञानमंडल प्रकाशन
25. मोहन, नरेंद्र, वर्ष-1975, आधुनिक हिंदी उपन्यास, दिल्ली, द मैकमिलन कंपनी ऑफ़ इंडिया लिमिटेड
26. मोहन, नरेंद्र, वर्ष-2006, धर्म और सांप्रदायिकता, दिल्ली, प्रभात प्रकाशन
27. मिश्र, शिवकुमार, वर्ष-2015, सांप्रदायिकता और हिंदी उपन्यास, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
28. यशपाल, वर्ष- 1967, झूठा सच, लखनऊ, विप्लव प्रकाशन
29. यादव, राजेंद्र, वर्ष-1981, अठारह उपन्यास, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन
30. राय, गोपाल, वर्ष- 2011, हिंदी उपन्यास का इतिहास, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन
31. वाजपेयी, नंददुलारे, वर्ष- 1965, आधुनिक साहित्य, इलाहाबाद, भारतीय भंडार, लेडी प्रेस
32. वर्मा, रामचन्द्र, वर्ष- 1996, लोकभारती प्रमाणिक हिंदी कोश, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन
33. विस्सा, कृष्णकुमार, वर्ष- 1984, साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना, दिल्ली, दिनमान प्रकाशन
34. सक्सेना, राजेश्वर, वर्ष- 1997, भीष्मसाहनी व्यक्ति और रचना, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
35. सारस्वत, डॉ आनंद प्रकाश, वर्ष-2002, सांप्रदायिकता और भारतीय समाज, मेरठ, स्वरूप एंड सन्ज
36. साहनी, भीष्म, वर्ष- 2003, आज का अतीत (आत्मकथा), नई दिल्ली,राजकमल प्रकाशन
37. साहनी, भीष्म, वर्ष- 1998, कड़ियाँ, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन
38. साहनी, भीष्म, वर्ष- 1993, कुंतो, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन

39. साहनी, भीष्म, वर्ष- 2003, नीलू नीलिमा निलोफर, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन

40. साहनी, भीष्म, वर्ष-1996, मेरे साक्षात्कार, नई दिल्ली, किताबघर प्रकाशन

41. साहनी, भीष्म, वर्ष- 1992, मैय्यादास की माड़ी, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन

42. त्रिपाठी, कमला, वर्ष-1991, सांप्रदायिकता और उसके बाद, दिल्ली, राजपाल एंड संज

पत्र – पत्रिकाएँ

1. आजकल, जुलाई, 2006
2. अक्षरा, मई-जून, 2004
3. आलोचना, अप्रैल, 2003
4. कथादेश, मार्च, 2005
5. दस्तवेज, अक्टूबर-दिसंबर, 1993
6. वर्तमान साहित्य, जनवरी-फरवरी, 2000
7. संचेतना, मार्च, 1983
8. समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी-फरवरी, 2003
9. सारिका, अगस्त, 1990
10. संवेद, सितंबर, 2008
11. हंस, अक्टूबर,1992, जून, 2008